भारतेन्दुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

(Poetic Trends in Age of Bharatendu)

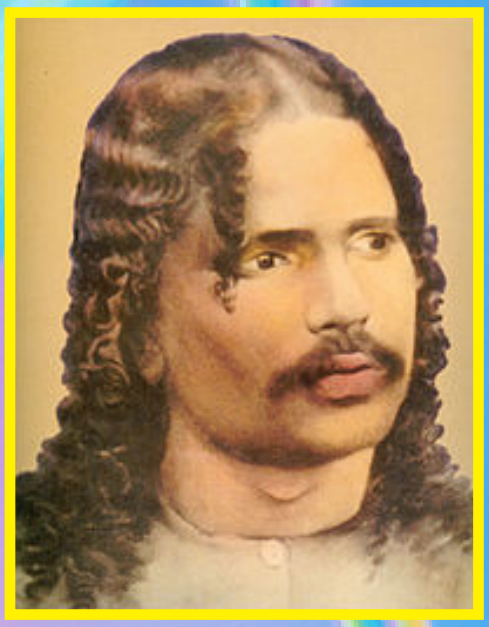

शिप्रा सिंह

भारतेन्दुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

शिप्रा सिंह

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली – 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5485-7

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली – 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**भारतेन्दु युग**	**1**
	भारतेन्दुकालीन कविता की मुख्य विशेषताएँ	2
	निबंध	7
	आलोचना	7
	आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युग"	12
2.	**नवजागरण की समस्याएँ**	**25**
3.	**भारतेन्दु युग के साहित्यिक महत्त्व**	**37**
	रचनाएँ	40
4.	**भारतेन्दु हरिश्चंद्र**	**41**
	जीवन परिचय	42
	साहित्यिक परिचय	43
	प्रमुख कृतियाँ	44
	प्रमुख निबंध	45
	महत्त्वपूर्ण कार्य	49
	प्रसिद्ध रचनाएँ-कविताएँ भारतेंदु हरिश्चंद्र	54
	साहित्यिक सन्दर्भ	79

बालकृष्ण भट्ट जीवनी 83
कार्यक्षेत्र 88
5. ठाकुर जगमोहन सिंह 92
जीवन परिचय 92
कृतियाँ 93
जन्म तथा शिक्षा 94
जगमोहन मण्डल 97
द्वापर कृष्णयुग तुम्हारा शुभचिंतक 147
सोरठा 192
तुम्हारा 198
राधाचरण गोस्वामी 217
देवकीनन्दन खत्री 225
व्यवसाय की शुरुआत 226
चन्द्रकान्ता 226
प्रमुख रचनाएँ 227

1

भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। भारतेन्दु का व्यकितत्त्व प्रभावशाली था, वे सम्पादक और संगठनकर्ता थे, वे साहित्यकारों के नेता और समाज को दिशा देने वाले सुधारवादी विचारक थे, उनके आस-पास तरुण और उत्साही साहित्यकारों की पूरी जमात तैयार हुई, अतः इस युग को भारतेन्दु-युग की संज्ञा देना उचित है। डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि 'प्राचीन से नवीन के संक्रमण काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतवासियों की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक थे, वे भारतीय नवोत्थान के अग्रदूत थे। जय भारत जय भारती जिस समय खड़ी बोली गद्य अपने प्रारिम्भक रूप में थी, उस समय हिन्दी के सौभाग्य से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने राजा शिवप्रसाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की आपस में विरोधी शैलियों में समन्वय स्थापित किया और मध्यम मार्ग अपनाया।

इस काल में हिन्दी के प्रचार में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष योग दिया, उनमें उदन्त मार्तण्ड, कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन अग्रणी हैं। इस समय हिन्दी गद्य की सर्वांगीण प्रगति हुई और उसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि विधाओं में अनूदित तथा मौलिक रचनाएं लिखी गयीं।

भारतेन्दु काल या नवजागरण काल (1869 से 1900)–हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के संक्राति काल के दो पक्ष हैं। इस समय के दरम्यान एक और प्राचीन परिपाटी में काव्य रचना होती रही और दूसरी ओर सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में जो सक्रियता बढ़ रही थी और परिस्थितियों के बदलाव के कारण जिन नये विचारों का प्रसार हो रहा था उनका भी धीरे-धीरे साहित्य पर प्रभाव पड़ने लगा था। प्रारंभ के 25 वर्षों (1843 से 1869) तक साहित्य पर यह प्रभाव बहुत कम पड़ा। किन्तु सन् 1868 के बाद नवजागरण के लक्षण अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे थे। विचारों में इस परिवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। इस लिए इस युग को भारतेन्दु युग भी कहते हैं। भारतेन्दु के पहले ब्रज भाषा में भक्ति और श्रृंगार परक रचनाएँ होती थीं और लक्षण ग्रंथ भी लिखे जाते थे। भारतेन्दु के समय से काव्य के विषय चयन में व्यापकता और विविधता आई।श्रृंगारिकता, रीतिबद्धता में कमी आई। राष्ट्र-प्रेम, भाषा-प्रेम और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम कवियों के मन में भी पैदा होने लगा। उनका ध्यान सामाजिक समस्याओं और उनके समाधान की ओर भी गया। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में गतिशील नवजागरण को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रोत्साहित किया।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850-1885), बाबा सुमेर सिंह, बदरी नारायण प्रेमधन (1855-1923), प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894), राधाकृष्ण दास (1865-1907), अंबिका दत्त व्यास (1858-1900) और ठाकुर जगमोहन सिंह(1857-1899) इस युग के प्रमुख कवि हैं। अन्य कवियों में रामकृष्ण वर्मा, श्री निवासदास, लाला सीताराम, राय देवी प्रसाद, बालमुकुंद गुप्त, नवनीत चौबे आदि हैं।

भारतेन्दुकालीन कविता की मुख्य विशेषताएँ

देश-भक्ति और राष्ट्रीय-भावना–इस काल की कविता की मुख्य प्रवृत्ति देश-भक्ति की है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारत का शासन कंपनी के हाथ ब्रिटिश सरकार ने ले लिया था, जिससे जनता को शांति और सुरक्षा की आश बँधी। इसलिए कविता में राज-भक्ति का स्वर सुनाई पड़ता है। इसमें ब्रिटिश शासकों की गुलामी के साथ-साथ देश की दशा सुधारने की प्रार्थना भी है। जैसे–

1. करहु आज सों राज आप केवल भारत हित,
2. केवल भारत के हित साधन में दीजे चित। (प्रेमधन)

इस युग के कवि देश की दयनीय दशा से उत्पन्न क्षोभ के कारण ईश्वर से प्राथना करते हैं-

1. कहाँ करुणानिधि केशव सोए?
2. जानत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए।(भारतेन्दु)
3. तो कहीं-कहीं उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए स्वतंत्रता का महत्व बताया है-
4. सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहिं चुप लातै खाव।
5. राजा करै सो न्याव है, पाँसा परे सो दाँव।।

2. जनवादी विचारधाराः भारतेन्दु युगीन कविता की दूसरी प्रमुख विशेषता है- जनवादी विचारधारा। डॉ. रामविलास शर्मा के मतानुसार भारतेन्दु युग की जनवादी भावना उसके समाज-सुधार में समायी हुई है। इस युग का साहित्य भारतीय समाज के पुराने ढाँचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार चाहता था। इस युग के कवियों ने समाज के दोष युक्त अंग की आलोचना की है-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

भारतेन्दु मेम-मेहरानी के बारे में कहते हैं-

का भवा, आवा है ए राम जमाना कैसा।
कैसी महरारू है ई, हाय जमाना कैसा।

भारतेन्दु युगीन कविता में सांप्रत समाज की दशा का, विदेशी सभ्यता के संकट का, पुराने रोजगार के बहिष्कार का स्वर दिखाई देता है।

इस युग में दो विचार-धाराएँ दिखाई देती हैं- 1.पुराणवादी परंपरा के समर्थकों की और 2. आधुनिक व्यापक दृष्टि वालों की, किन्तु भारतेन्दु ने मध्यम मार्ग अपनाया था। भारतेन्दु ने सामाजिक दोषों, रूढ़ियों, कुरीतियों का घोर विरोध किया है। उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले ढोंग की पोल खोल दी है। छुआछूत के प्रचार के प्रति क्षोभ के स्वर कवि में हैं। प्रतापनारायण मिश्र स्त्रियों की शिक्षा के पक्षपाती हैं, बाल-विवाह के विरोधी तथा विधवाओं के दुःख से दुःखी है।

3. प्राचीन परिपाटी की कविताः भक्ति और शृंगार- इस युग में प्राचीन परिपाटी का कविता का सृजन हुआ था। भक्ति औरशृंगार की परंपराएं इस युग तक चलती रही, परिणाम भारतेन्दु तथा अन्य कवियों ने इसका अनुसरण किया। कुछ कवियों ने नख-शिख वर्णन किया तो कुछ ने दान-लीला, मृगया की रीतिकालीन पद्धति अपनायी। इस प्रकार इस युग की कविता में भक्ति,शृंगार एवम् प्रेम-वर्णन के सुंदर नमूने मिलते हैं। जैसे-

अ.भक्ति-वर्णन- ब्रज के लता पता मोहि कीजै।
गोपी पद पंकज पावन की रव जायैं सिर घीजै।। (भारतेन्दु)

ब. शृंगार-वर्णन- साजि सेज रंग के महल में उमंग भरी।
पिय गर लागी काम-कसक मिटायें लेत।

उन्होंने रीति कालीन आचार्यों की तरह स्वरति, समरति, चित्ररति, वस्त्ररति, पपड़ीपन आदि यौन-विकृतियों के चित्र वर्णित किये हैं।

क. प्रेम-वर्णन- सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सों भये पराये, हरि सों जब सों जाइ जुरे।।
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक बुरे।।

4. कलात्मकता का अभाव– भारतेन्दु युगीन कविता की चौथी मुख्य प्रवृत्ति है- कलात्मकता का अभाव। नवयुग की अभिव्यक्ति करने वाली यह कविता कलात्मक न हो सकी। जिसके कारण हैं- 1. इस काल में विचारों का संक्रांति काल था, जिसके कारण में इसमें कलात्मकता का अभाव रहा। 2. इस युग में कवि समाचार-पत्रों द्वारा अपनी कविता का प्रचार करते थे, इसलिए उन्हें इसे काव्यपूर्ण बनाने की चिंता नहीं थी। 3. भाषा का अस्तित्त्व और नागरी आंदोलन के कारण भी कविता कलात्मकता धारण न कर सकी, क्योंकि इस आंदोलन के लिए कवियों को जनमत जागरित करना था जो कि जनवाणी से ही संभव था कहने का मतलब यह है कि इस युग के कवि तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवम् भाषा संबंधी समस्याओं में इतने व्यस्त थे कि वे नवयुग की चेतना को कलात्मक एवम् प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त न कर सके और उसमें सर्वत्र यथार्थ की अनुभूति की सच्चाई सरल भाषा-शैली में अभिव्यक्त हुई। जैसे–

खंडन-मंडन की बातें सब करते सुनी सुनाई।
गाली देकर हाय बनाते बैरी अपने भाई।।
हैं उपासना भेद न उसके अर्थ और विस्तार।
सभी धर्म के वही सत्य सिद्धांत न और विस्तारो।।

5. काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग– इस काल की भाषा प्रमुख रूप से ब्रज ही रही। खड़ीबोली गद्य तक ही रही थी, किन्तु इस युग के अंतिम दिनों में खड़ीबोली में कविता करने का आंदोलन प्रारंभ हो गया था। जिसके कारण द्विवेदी युग में कविता के क्षेत्र में खड़ीबोली का प्रयोग शुरू हो जाता है।

बद्रीनारायण चौधरी, अंबिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों ने भारतेन्दु काल में खड़ीबोली में कविता करने का प्रयास किया था। जैसे-

हमें जो हैं चाहते निबाहते हैं प्रेमधन,
उन दिलदारों से ही,मेल मिला लेते हैं। (प्रेमधन)
भारतेन्दु की खड़ी बोली का एक उदाहरण देखें-
साँझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब एक दिन उड़ जायेंगे यह दिन चार सबेरा है॥

इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग में खड़ी बोली में उच्चकोटि की रचना नहीं मिलती। इसका कारण स्पष्ट है कि इस युग ब्रज भाषा पर रिझे हुए थे। इस प्रकार भाव-व्यंजना का प्रधान माध्यम ब्रजभाषा ही रही।

6. हास्य-व्यंग्य एवम् समस्या पूर्ति– इस युग में हास्य-व्यंग्यात्मक कविताएँ भी काफी मात्रा में लिखी गई। सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों तथा पाश्चात्य संस्कृति पर करारे व्यंग्य किए गए। इस दृष्टि से प्रेमधन और प्रतापनारायण मिश्र की रचनाएँ सर्वोत्तम हैं।

समस्या-पूर्ति इस युग की काव्य-शैली थी और उनके मंडल के कवि विविध विषयों पर तत्काल समस्यापूर्ति किया करते थे। रामकृष्ण वर्मा, प्रेमधन, ब्रेनी ब्रज आदि कवि तत्काल समस्या-पूर्ति के लिए प्रसिद्ध थे।

7. प्राचीन छंद-योजना– भारतेन्दु युग में कवियों ने छंद के क्षेत्र में कोई नवीन एवम् स्वतंत्र प्रयास नहीं किया। इन्होंने परंपरा से चले आते हुए छंदों का उपयोग किया है। भक्ति और रीति काल के कवित्त, सवैया, रोला, दोहा, छप्पय आदि छंदों का इन्होंने प्रयोग किया। जब कि जातीय संगीत का सादारम लोगों में प्रचार करने के लिए भारतेन्दु ने कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, गजल, श्रद्धा, चैती, होली, सांझी,लावनी, बिरहा, चनैनी आदि छंदों को अपनाने पर जोर दिया था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस युग में परंपरा और आधुनिकता का संगम है। कविता की दृष्टि से यह संक्रमण का युग था। कवियों के विचारों में परिवर्तन हो रहा था। परंपरागत संस्कारों का पूर्ण रूप से मोहभंग हुआ भी न था और साथ में नवीन संस्कारों को भी वे अपना रहे थे। काशी नवजारण का प्रमुख केन्द्र था और यहां का साहित्यिक परिवेश भी सर्वाधिक जागरूक था। तत्कालीन परिवर्तनशील सामाजिक मूल्यों का भी उन पर प्रभाव पड़ रहा था।

इस युग की अधिकांश कविता वस्तुनिष्ठ एवम् वर्णनात्मक है। छंद, भाषा एवम् अभिव्यंजना पद्धति में प्राचीनता अधिक है, नवीनता कम। खड़ी बोली का आंदोलन प्रारंभ हो चुका था, किन्तु कविता के क्षेत्र में ब्रज ही सर्वमान्य भाषा रही।

भारतेन्दु मण्डल

बहुमुखी प्रतिभा के धनी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रभूत साहित्य रचा एवं अनेक साहित्यकारों को अपनी प्रतिभा से प्रभावित एवं प्रेरित किया। इन लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', राधाचरण गोस्वामी एवं रायकृष्णदास प्रमुख हैं। इन्होंने हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बनाया। यही भारतेन्दु का समकालीन एवं सहयोगी साहित्यकार मण्डल भारतेन्दु मण्डल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हिन्दी साहित्य में यह समय भारतेन्दु युग के नाम से अभिहित किया जाता है।

भारतेन्दुकालीन कथा

कथा साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास एवं कहानी को ग्रहण किया जाता है। भारतेन्दु काल में इन दोनों का लेखन प्रारम्भ हुआ, जिनके पृथक-पृथक विवेचन निम्नलिखित है।

उपन्यास

भारतेन्दु काल में हिन्दी की उप विधा का विकास हुआ। पण्डित बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' इस समय का उपदेश-प्रधान आदर्शवादी उपन्यास है। इसमें उस परिपूर्ण श्यामा-स्वप्न उपन्यास काव्य-सौन्दर्य से भरा हुआ है। अम्बिकादत्त व्यास का 'आश्चर्य वृत्तान्त', बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रहमचारी' और राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दू' इस काल के अन्य उपन्यास हैं।

कहानी

कहानी का क्रमबद्ध विकास भारतेन्दु युग से होता है। इस युग में केवल बंगला तथा अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद हुए। मौलिक रूप में जो कहानियां लिखी गई, उन पर इनका प्रभाव दिखाई देता है। भारतेन्दु जी ने एक अद्‌भुत

अपूर्व स्वप्न नामक कहानी लिखी, जिसे अधिकांश विद्वान हिन्दी की प्रथम साहित्यिक तथा मौलिक कहानी मानते हैं। सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियां प्रकाश में आयीं। सरस्वती के प्रारम्भिक कहानी लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी, पार्वतीनन्दन, बंग महिला, रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. भगवानदास आदि प्रमुख हैं।

भारतेंदु युग में नाटक विधा का विकास किस रूप में है सक्षेप में लिखो।

इस युग में मौलिक तथा अनूदित दोनों ही प्रकार के नाटक लिखे गये। भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में चन्द्रावली, नीलदेवी, भारत-दुर्दशा प्रमुख हैं। अनूदित नाटकों में कुछ बंगला से और कुछ संस्कृत से अनूदित हैं। इस काल में प्रतापनारायण मिश्र ने गौ संकट, कलि प्रभाव, ज्वारी-ख्वारी, हमीर-हठ, राधाकृष्णदास ने महारानी पद्मावती, महाराणा पताप, दुखिनी बाला, बाबू गोकुलचन्द ने बूढ़े मुंह मुहासे, लोग चले तमाशे, आदि नाटक लिखे। श्रीनिवास दास, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन, अम्बिकादत्त व्यास आदि इस काल के अन्य नाटककार हैं।

निबंध

हिन्दी में निबन्ध साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु युग की पत्र-पत्रिकाओं से होता है। प्राय: तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उनके सम्पादक उस समय की सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर लेख लिखा करते थे। भारतेन्दु ने सर्वप्रथम कविवचन सुधा तथा हरिश्चन्द्र मैगजीन में साहित्यिक ढंग से निबन्ध लिखे। इसके बाद पं प्रतापनारायण मिश्र तथा पं बालकृष्ण भट्ट तथा बद्रीनारायण-चौधरी प्रेमधन ने क्रमष: हिन्दी प्रदीप, ब्राहमण तथा आनन्द कादम्बिनी नामक पत्रिकाओं में निबन्ध लिखे, जिन्हें साहित्यिक कोटि के निबन्ध कहा जाता है। इसी समय पं.बालकृष्ण भट्ट ने विनोदपूर्ण तथा गम्भीर शैली में विवेचनात्मक, आलोचनात्मक तथा भावात्मक निबंध लिखे। बालमुकुन्द गुप्त, प्रेमधन, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी इस युग के अन्य प्रसिद्ध निबन्ध लेखक हैं।

आलोचना

भारतेन्दु युग में गद्य के अन्य अंगों के साथ-साथ आलोचना विधा भी नया रूप धारण कर आगे बढ़ी। उसके स्वरूप और प्रकार में नये तत्त्वों का समावेश हुआ। साहित्यिक विवेचना में बौद्धिकता की प्रधानता हो गयी। उपन्यास, कहानी,

निबन्ध, नाटक आदि के साथ-साथ उनकी आलोचनाएं भी लिखी जाने लगीं। इस नवीन आलोचना के विकास में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख हाथ रहा। इस समीक्षा के प्रवर्तकों में भारतेन्दु, प्रेमधन, बालकृष्ण भट्ट, श्री निवास दास, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, गंगाप्रसाद अगिनहोत्री आदि प्रसिद्ध हैं।

आनन्द कादम्बिनी नामक पत्रिका के द्वारा प्रेमधन ने पुस्तकों की विस्तृत तथा गम्भीर आलोचना प्रारम्भ की। इन्होंने श्रीनिवास दास के संयोगिता स्वयंवर नाटक की बड़ी विशद् और कड़ी आलोचना लिखकर प्रकाशित की।

भारतेन्दु-युग आधुनिक हिन्दी-गद्य साहित्य के बहुमुखी विकास का युग है। भारतेन्दु-युग में अर्थात् उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में पूरे देश में 'सांस्कृति-जागरण' एवं 'राष्ट्रीय-जागरण' की लहर दौड़ चुकी थी और सामंतीय सामाजिक ढांचा टूट चुका था। अंग्रेजी-शिक्षा के विकास की गति चाहे जितनी भी धीमी रही हो और उसके उद्देश्य चाहे जितने भी सीमित रहे हों, उसका व्यापक प्रभाव सम्पूर्ण देश के शिक्षित समाज पर पड़ रहा था, जिसके परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण देश में एक सशक्त मध्यमवर्ग तैयार हुआ, जो अत्यधिक संवेदनशील था। देश में यह वर्ग व्यापक 'राष्ट्रीय' एवं 'सामाजिक' हितों की दृष्टि से भी सोचने लगा तथा अनुभव करने लगा कि हमारा देश अत्यन्त 'हीनावस्था' में है तथा जीवन के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में परिवर्तन एवं सुधार की आवश्यकता है।

भारतेन्दु जी इसी प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि थे भारतेन्दु जी ने अपने हिन्दी-गद्य-साहित्य के माध्यम से ठीक समय पर उचित नेतृत्व प्रदान किया और अपने निबन्धों, नाटकों तथा भाषणों में 'राष्ट्रीय-जागरण' का संदेश दिया। जो संदर्भित समय की एक मूल आवश्यकता थी। जिससे देश में 'राष्ट्रीय भावना' का अद्घोष हुआ तथा देशवासी अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन कर 'राष्ट्रीयजागरण' के प्रति उत्तरदायी बनें, तथा इनके सहयोगी कवियों ने उनके द्वारा 'प्रशस्त-पथ' पर चल कर 'आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य, की जो सेवा अपने आलेखों, कृतियों, रचनाओं, इत्यादि के द्वारा की है, वह अविस्मरणीय है।

प्रस्तुत लघु शोध में शोधार्थी द्वारा आधुनिक हिन्दी-साहित्य में भारतेन्दु-युग के महत्व के बारे में संक्षेप में वर्णन किया है। जिसमें भारतेन्दु-युग में पुर्नजागरण, भक्ति-भावना, सामाजिक-चेतना, समस्यापूर्ति, काव्यशृंगारिता तथा विभिन्न काव्यधाराओं इत्यादि का संक्षेप में साहित्यिक महत्व प्रस्तुत किया गया है।

कूट शब्द

आधुनिक-काल, साहित्यक-विभाजन, भक्ति-भावना, सामाजिक-चेतना, प्रकृति-चित्रण,शृंगारिकता, समस्यापूर्ति।

प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य के विकासक्रम में भारतेन्दु-युग का महत्व और मूल्य असाधारण है। इसी युग में हिन्दी-प्रदेश में आधुनिक जीवन-चेतना का उन्मेश हुआ। मध्यमवर्गीय सामाजिक चेतना में साहित्य रचना का जो स्वरूप उभरा, उसमें कहीं-कहीं सामंतीय संस्कारों का अवशेष लक्षित भी अवश्य होता है, किन्तु वह टूटने के क्रम में है। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश-शासनकाल-व्यवस्था की दृढ़ता के बावजूद उसे प्रति विरोध का भाव आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य के 'भारतेन्दु-काल' के प्रत्येक साहित्यकार के मन में विद्यमान है। देश और समाज के हित की भावना से सभी आच्छादित हैं। साहित्य-सर्जन की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य की प्रायः सभी विधाओं का सूत्रपात इसी काल में हुआ। विशेषतः हिन्दी-साहित्य की निबन्ध और नाटक मुख्यतः इन दोनों ही विधाओं में लेखकों ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की तथा उपन्यासों के लेखन में भी इसी युग में सफलता के स्वर ध्वनित होते हैं।

अतः सबकुछ मिला-जुला कर भारतेन्दु-काल का साहित्य, व्यापक जागरण का संदेश लेकर आया और हिन्दी साहित्य में भाषा के स्वरूप में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस युग में न केवल आधुनिक हिन्दी-गद्य का स्वरूप स्थिर हुआ, वरन् इसके शुद्ध साहित्योपयोगी और व्यवहारोपयोगी रूपों की पूर्ण प्रतिष्ठा भी इसी युग में हुई। इस प्रकार 'भाषा' और 'साहित्य' दोनों आपस में जुड़ गये तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रचार की गति में भी तीव्र वृद्धि हुई। अतः किसी भी साहित्यिक-भाषा के इतिहास में इतनी अल्प अवधि में होने वाली संदर्भित काल की प्रगति, हिन्दी गद्य-साहित्य के इतिहास में हमेशा हमें गौरवान्वित ही समझी जाऐगी।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "आधुनिक-काल"

हिन्दी गद्य-साहित्य के इतिहास में काल का सीमांकन सबसे जटिल समस्या है। किसी काल-खण्ड का आरम्भ किस समय से प्रारम्भ होता है, इसे

वैज्ञानिक सत्य के आधार पर ही नहीं बतलाया जा सकता है, वरन् एक कालखण्ड, दूसरे कालखण्ड से बदलाव के कारण अलग-अलग होता है। बदलाव की यह प्रक्रिया तो एक अरसे से चली आ रही है, परन्तु नये कालखण्ड का निर्धारण तब होता है जब बदलाव के चित्र हमारी आर्थिक-सांस्कृतिक, स्थितियों, काल-रूपों, तथा भाषा में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। इसलिए साहित्येतिहास के लेखन में जो भी काल-निंधारण किया जाऐगा, वह वस्तुतः लचीला ही माना जाऐगा।

'हिन्दी गद्य-साहित्य के इतिहास' में 'आधुनिक-काल' के विकास का क्रम एक शताब्दी पहले से ही प्रारम्भ हो गया था तथा बदलाव के स्पष्ट चिन्ह उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दिखाई देने लगे थे। संयोगवश हिन्दी-साहित्य के आधुनिकतम् जीवन बोध के प्रर्वतक माने जाने वाले इतिहासकार 'भारतेन्दु-हरिशचन्द्र' जी का जन्म उन्नीसवीं सदी के ठीक मध्य में सन् 1850 में हुआ। अतः इतिहासकारों ने इस वर्ष को ही आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य के इतिहास में आरम्भ वर्ष मान लिया, किन्तु इतिहास की गतिमानता एवं बदलाव में यह वर्ष स्वयं किसी तरह की भूमिका अदा नहीं करता। इतिहास के काल-विभाजन की रेखा कम से कम दो विभिन्न प्रवृत्तियों को स्पष्टतः अलग करने वाली तथा इस अलगाव के लिए स्वयं भी बहुत कुछ उत्तरदायी हो ना चाहिए। यदि सन् 1857 को आधुनिक काल का प्रारम्भिक काल विन्दु मान लिया जाये, तो उपर्युक्त दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "आधुनिक-काल" का उपविभाजन–

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने 'आधुनिक-काल' का जो उप-विभाजन किया है। वह एकसूत्रता के अभाव में विसंगतिपूर्ण हो गया है। उन्होंने आधुनिक काल को दो भागों में बांटा है -

1. गद्य खण्ड
2. काव्य खण्ड

उपर्युक्त ये दोनों खण्ड एक-दूसरे से इतने पृथक हैं कि इनमें एकरूपता तथा एकतानता नहीं पायी जाती है। दोनों खण्डों को दो-दो प्रकरणों में बांटा गया है। गद्य-खण्ड के पहले प्रकरण में ब्रजभाषा-गद्य और खड़ी बोली-गद्य का विवेचन है। दूसरे प्रकरण में गद्य-साहित्य का आर्विभाव विश्लेषित है तथा इसे फिर से तीन उत्थानों में विभक्त किया गया है-प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान और तृतीय उत्थान। शुक्ल जी के गद्य-खण्ड और काव्य-खण्ड दोनों ही एक दूसरे

से सर्वथा अलग-अलग हैं। एक की प्रवृत्ति का दूसरे की प्रवृत्ति से कोई भी तालमेल नहीं है। ऐसा लगता है कि मानो गद्य-खण्ड में एक प्रवृत्ति क्रियाशील है, तो काव्य-खण्ड में दूसरी प्रवृत्ति क्रियाशील है।

उदाहरणार्थ– काव्य-खण्ड एक-दूसरे से सर्वथा अलग, दूसरे प्रकरण के तृतीय उत्थान (काव्य में जिसे 'छायावाद' के नाम से निरूपित किया गया है) तथा गद्य-खण्ड के द्वितीय प्रकरण के तृतीय उत्थान में कोई एकरूपता निरूपित नहीं की जा सकती है। शुक्ल जी के परवर्ती इतिहासकारों ने प्रायः शुक्ल जी का अनुगमन किया है तथा आधुनिक 'हिन्दी गद्य-साहित्य' में छायावादी-युग सर्वमान्य हो गया है। इसको केन्द्र-विन्दु मानकर इस काल का उपविभाजन करना अधिक सुविधाजनक हो गया। छायावाद काल के पूर्व हिन्दी-साहित्य परिष्कार की दो मंजिलों से गुजर चुका था-पुर्नजागरण-काल और सुधार-काल। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, आदि के कारण जो पुर्नजागरण आया वह ऐतिहासिक तथ्य हो गया इसका सीधा प्रभाव हिन्दी-साहित्य पर पड़ा। साहित्य अपने नवीन पर्यावरण से जुड़ कर मध्यकालीन प्रवृत्तियों से पृथक हो गया।

अतः आधुनिक-काल की पहली मंजिल को 'पुर्न जागरण-काल' कहना उचित है। दूसरी मंजिल पर साहित्यकार अपने कृत्य, रूपाकार, और भाषा के सुधार परिष्कार में संलग्न दिखायी पड़ते हैं। अतः इसे '' सुधार-काल'' की संज्ञा भी दी जानी चाहिए।

अतः संक्षेप में, आधुनिक काल के उप-विभाजन का प्रारूप निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है: -

1. पुर्नजागरण काल (भारतेन्दु काल) 1857-1900 ई.
2. जागरण-सुधार-काल (द्विवेदी काल) 1900-1918 ई.
3. छायावाद-काल
   1918-1938 ई.
4. छायावादोत्तर-काल
   क-प्रगति-प्रयोग-काल
   1938-1953
   -नवलेखन-काल
   1953 से वर्तमान तक

किसी भी साहित्यक-काल में कोई भी बदलाव यूँ ही नहीं आता, बल्कि कुछ कारण हो ते हैं। दो संस्कृतियों का अन्तरावलम्बन परिवर्तन के लिए उतना कारगर नहीं होता, जितने समाज के बुनियादी ढांचे को बदलने वाले आर्थिक कारण प्रभावशाली होते हैं तथा मुख्य कारण आर्थिक होता है, जो सांस्कृतिक कारण गौण होते हैं, पर इन दो नों को लाने का दायित्व जाने-अनजाने अग्रेजों पर ही रहा है। अत: आधुनिक काल का परिवर्तनमान प्रक्रिया को समझने के लिए शोधार्थी द्वारा इनका विवेचन करना अति आवश्यक है।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युग"

भारतेन्दु-युग अथवा पुनर्जागरण-काल का उदय आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में हिन्दी-कविता के लिए नवीन-जागरण के संदेशवाहक-युग के रूप में हुआ था, किन्तु इसके सीमाँकन के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885) के रचनाकाल को दृष्टि में रख कर सम्वत् 1925 से 1950 की अवधि को 'नयी-धारा' अथवा 'प्रथम-उत्थान' की संज्ञा दी है और इस काल को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगी लेखकों के कृतियों से समृद्ध माना गया है, किन्तु उनके द्वारा निर्धारित कालावधि से कुछ लेखकों का वैमत्य है। मिश्रबन्धुओं ने 1926 से 1945 वि 0 सम्वत् तक, डॉ . रामकुमार वर्मा ने 1927 से 1957 वि . सम्वत् तक, डॉ , केसरी नारायण शुक्ल ने 1922 से 1957 वि , सम्वत् तक और डॉ . रामविलास शर्मा ने 1925 से 1957 वि . सम्वत् तक 'भारतेन्दु युग' की ब्याप्ति मानी है।

उल्लेखनीय यह है, कि भारतेन्दु द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन 1868 ई . में प्रारम्भ हुआ था, अत: भारतेन्दु युग का उदय 1968 ई . (1925 वि 0 सम्वत्) से मानना उचित है। तथा इसी तर्क का अनुसरण करते हुए 'सरस्वती' नामक पत्रिका का प्रकाशन-वर्ष 1900 ई . को भारतेन्दु-युग की समाप्ति का सूचक भी माना जा सकता है। यह ठीक ही है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के देहावसान के साथ ही भारतेन्दु-युग की समाप्ति न मान कर उनके समकालीन कवियों के द्वारा बाद में रचित-कृतियों को ध्यान में रखते हुए इस काल की ब्याप्ति 1900 ई . तक स्वीकार की गयी, क्यों कि इस समय तक हिन्दी साहित्य -क्षेत्र में अनेकों नवीन प्रवृत्तियो का उदय होने लगा था, किन्तु यह जिज्ञासा प्रासंगिक हो गी कि रीतिकाल के समापन से ले कर

भारतेन्दु-युग का पूर्वकाल (1843 से 1867 ई .) तक की रचनाओं का अनुशीलन किस संदर्भ में किया जाना चाहिए ?

वस्तुत: इतिहास का कोई भी काल सहस्र ही समाप्त नहीं हो सकता है और प्राय: अगले एक-दो दशक तक उसकी रचना, प्रवृत्तियाँ किसी न किसी रूप में ब्यक्त होती रहती हैं। इसी भाँति किसी नये युग का सुभारम्भ भी सहसा नहीं होता है, उसके स्वरूप -निर्माण की प्रक्रिया के बीज, दस-बीस साल तक के पहले साहित्य में विद्यमान रहते हैं। 1843 से 1867 ई . तक का कृतित्त्व न तो पूर्णत: रीतिकाल के प्रभावक्षेत्र में आता है और न ही इसमें भारतेन्दु-युग की पुर्नजागरण-मूलक प्रवृत्तियाँ विद्यमान होती हैं। अत: इसका अनुशीलन "भारतेन्दु -युग "की पृष्ठभूमि के रूप में किया जाना चाहिए।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में 'भारतेन्दु' पूर्व साहित्यिक 'काव्यधारा':

भारतेन्दु के पूर्ववर्ती कवियों की ब्रजभाषा-रचनाओं को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. भक्ति काव्य,
2. श्रृंगार रस का काव्य,
3. रीति-निरूपण काव्य

भक्तिकाव्य के रचियताओं में रीवा-नरेश रघुराजसिंह (1823 से 1879) का प्रमुख स्थान है, उन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों में लगभग अठ्ठाइस कृतियों की रचना की थी, जिनमें कुछ 'भारतेन्दु-युग' की परिधी में आती हैं।

उदाहरणार्थ– 'सुंदर शतक', 'पत्रिका', 'रूक्मिणी-परिणय,' 'आनन्दाम्बुनिधि,' और 'श्रीमद्भागवत महात्म्य,' भारतेन्दु-पूर्व काल की कृतियाँ हैं। जबकि 'रामस्वयं वर,' 'भक्तिविलास,' 'रामरसिकावली,' आदि की रचना सन् 1869 अथवा इसके बाद की हैं। वे मुख्यत: 'रामभक्त' थे, किन्तु कृष्ण लीलाओं का गान भी उन्होंने पूर्ण मनोयो गपूर्वक किया है। भक्ति के साथश्रृंगारिकता भी उनके काव्य में विद्यमान है। सूर और तुलसी जैसी भक्ति भावना, केशव जैसा प्रबन्ध-कौशल, और ब्रजभाषा की रमणीयता उनके कृतित्त्व की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। कृष्णभक्त कवियों में लखनऊ के वैश्य बंधुओं 'साह कुंदनलाल' तथा 'साह फुंदनलाल' का उल्लेख अपेक्षित है, जिन्हों ने वृंदावन में निवास कर क्रमश: 'ललित किशोरी' तथा 'ललित माधुरी' नामों से माधुर्य भक्तिपरक पदों की रचना की। इनमें ललित किशोरी

(रचनाकाल-1856 से 1873) का स्थान प्रमुख है। उनकी काव्यशैली भी अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़, मधुर व मार्मिक है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गोपालचन्द्र 'गिरिधरदास' (1833 से 1860) द्वारा लिखित 'राधास्तोत्र,' 'गोपालस्तोत्र,' 'जरासन्धवध महाकाव्य' और 'बलराम-कथामृत' भी 'कृष्ण-कथा' पर आधारित रचनाएँ हैं। यूँ तो उन्हों ने 'रामकथामृत' की भी रचना की है। भाषा-परिष्कार और अलंकार-नियो जन पर उनका विशेष ध्यान रहा है।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युग" का नवीन-परिवेश-

आलोच्य-युग में जनचेतना पुर्नजागरण की भावना से अनुप्राणित थी फलस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्रों में न केवल अतिरिक्त सक्रियता थी, अपितु इन सब में गहन अन्तः सम्बन्ध विद्यमान था। भारतेन्दु-युगीन कवि-कर्त्तव्य पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसकी परणति विशय-चयन में ब्यापकता और विविधता के रूप में हुई।श्रृंगारिक रसिकता, अलंकार-मोह, रीति-निरूपण, प्रकृति उद्दीपनात्मक चित्रण, प्रभृति रीतिकालीन प्रवृत्तियों का महत्व क्रमशः कम होता गया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जनता को उद्‌बोधन प्रदान करने के उद्देश्य से 'जातीय-संगीत' अर्थात् 'लोक-गीत' की शैली पर सामाजिक कविताओं की रचनाओं पर बल दिया। मातृ-भूमि प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार, गौरक्षा, बालविवाह-निषेध, शिक्षा-प्रसार का महत्व, मद्य-निषेध, भ्रूण हत्या की निंदा, आदि विषयों को कविगण शोधार्थी के अनुसार इस युग में अधिकाधिक अपनाने लगे थे। 'राष्ट्रीय-भावना' का उदय भी हिन्दी साहित्य के इस काल की अनन्य विशेषता है"।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं में 'देशभक्ति'-

भारतीय वीरों में प्रताप, छत्रसाल, शिवाजी आदि ने क्षेत्र विशेष (चित्तौड़, बुन्देलखण्ड, और महाराष्ट्र) की रक्षा के लिए जिस तत्परता और दृढ़ता का परिचय दिया था, उसका स्तवन करने वाले भूषण प्रभृति कवि क्षेत्रीय भावना अर्थात संकीर्ण राष्ट्रीयता से ऊपर नहीं उठ सके थे। 'भारतेन्दु -युगीन' कवियों ने भारतीय इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों की स्मृति तो अनेक बार दिलायी, पर उनकी 'राष्ट्रीय-भावना' केवल यहीं तक सीमित नहीं रही। अंग्रेजों की विचारधारा और उनकी देशभक्तिपूर्ण कविताओं से भी उन्होंने यथेष्ट प्रेरणा ली, जिसका फल यह हुआ कि क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर वे सम्पूर्ण राष्ट्र की नब्ज

को टटोलने लगे। 'हमारो उत्तम भारत देश' (राधाचरण गोस्वामी) और 'धन्य भूमि भारत सब उतननि की उपजाबनि' (प्रेमधन) आदि काव्य पंक्तियाँ शोधार्थीनुसार इसी तथ्य को प्रकट करती हैं।

'देशभक्ति' की भावना बाद में मैथलीशरणगुप्त कृत 'भारत-भारती', में देखने को मिलती है। उसकी प्रेरणा-भूमि भारतेन्दु, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास आदि की कविताएँ ही हैं। भारतेन्दु की 'विजयिनी विजय वैजयन्ती', प्रेमधन की 'आनन्द अरूणो दय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व' और 'नया सम्वत्' तथा राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा 'और 'विनय' शीर्षक कविताएँ 'देशभक्ति' की प्रेरणा से युक्त हैं। इस संदर्भ में उन्हों ने अपने प्रतिपाद्य को कहीं ब्यंग्योक्तियों के माध्यम से भी प्रकट किया तो कहीं, अतीत के प्रेरणदायी प्रसंगों की चर्चा द्वारा नवयुवकों को पुर्नजागरण का मन्त्र दिया है। अंग्रेजों की 'शोषण-नीति' का भारतेन्दु जी द्वारा प्रत्यक्ष उल्लेख शोधार्थीनुसार, प्रस्तुत निम्न पंक्ति में इस भावना की चरम परिणति है-

भीतर-भीतर सब रस चूसै, हँसि-हँसि के तन-मन-धन मूसै।
जहिर बातन में अति ते ज, क्यों सखि सज्जन ! नहीं अंगरेज॥

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं में 'सामाजिक-चेतना'-

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में 'भारतेन्दु-युग' की मुख्य विशेषता यह रही है कि कवियों ने सामाजिक जीवन की उपेक्षा न कर जनता की समस्याओं के निरूपण की ओर पहली बार व्यापक रूप में ध्यान दिया। इससे पूर्व रीतिकाल में राजाओं और सामन्तों के आश्रय में लिखित दरबारी काव्य में सामाजिक परिवेष के चित्रण की ओर नगण्य रूप में ध्यान दिया। इसलिए भारतेन्दु-युग में नारी-शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा, अस्पृश्यता-छुआछूत आदि को लेकर जो सहानु भूतिपूर्ण कविताएँ लिखी गयीं। उनके प्रतिपाद्य की नवीनता ने स:हृदय सामाजिक-समुदाय को विशेष अकृष्ट किया। उपरोक्त संदर्भित इन समस्याओं को रूपायित करने के लिए कवियों ने एक-दूसरे के साथ और मध्यमवर्गीय सामाजिक परिस्थतियों का चित्रण किया तो दूसरी ओर रूढ़िवादिता का विरोध कर सामाजिक-विकास-चेतना की आंकाक्षाओं का भी अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति की, किन्तु फिर भी आर्यसमाज, ब्राह्मसमाज आदि के प्रभाव से इस युग में जो नवीन सामाजिक-चेतना उभरने लगी थी और भारतेन्दु, प्रेमधन,

प्रतापनारायण मिश्र, आदि की रचनाओं में जिस सुधारवादी मनोवृत्ति की प्रमुखता रही, उसके प्रति सभी कवियों का दुष्टिकोण उदारता-समन्वित नहीं था।

'भारत-धर्म' कविता में अम्बिकादत्त व्यास द्वारा वर्णाश्रम-धर्म का दृढ़तापूर्वक अनुमादन और रामचरण गोस्वामी द्वारा विभिन्न कविताओं में प्राचीन शास्त्र-नीतियों का समर्थन एवं विधवा-विवाह का विरोध ऐसे ही उदाहरण हैं, जिनमें भारतेन्दु-युगीन समस्याओं की जानकारी ऐसे कवियों को भी पूरी तरह थी, किन्तु उनके सामाधान के लिए वे परम्परागत धर्म शास्त्र को ही आधार बनाना चाहते थे। इसके विपरीत भारतेन्दु जी ने 'भारत-दुर्दशा' नाटक में वर्णाश्रम धर्म की संकीर्णता का विरोध प्रस्तुत निम्नार्थ शब्दों में किया-

"बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

'मन की लहर' में प्रताप नारायण मिश्र की दृष्टि बाल-विधवाओं की करूण दशा की ओर गयी जिसका उदाहरण निम्नवत है -

"कौ न करेजो नहि कसकत सुनि बिपति बालबिधवन की"

(प्रतापनारायण मिश्र)

भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की कामना से संदर्भित इस युग के कवियों ने स्वदेशी उद्यो गों का प्रो त्साहन देने के लिए और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने पर भी बल दिया। जिसका उदाहण भारतेन्दु जी ने 'प्रबोधिनी' नामक कविता में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार करने की प्रत्यक्ष प्रमाण कवि की निम्न रचना में मिलता है -

"जीवन बिदेस की वस्तु लै तो बिन कछु नहि करि सकत"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

प्रेमधन की 'आर्याभिनन्दन', प्रतापनारायण मिश्र की 'होली है' तथा अम्बिकादत्त व्यास की 'भारतधर्म' शीर्षक नामक रचनाओं में भी विदेशी वस्त्रों और अन्य वस्तुओं के आयात को भारत की आर्थिक दुर्गति का मूल कारण माना गया है। यद्यपि प्रेमधन ने 'स्वागत' शीर्षक कविता में, अम्बिकादत्त व्यास के 'जटिल वणिक्' में और राधाकृष्णदास ने 'जुबिली' में बिजली, यातायात के सुगम साधनों, सिंचाई की सुविधाओं में, शिक्षा-प्रसार आदि का अलभ्य लाभ प्रदान करने के लिए ब्रिटिश शासन की भी प्रशंसा की है, परन्तु इसके साथ भी वह यह नहीं भूले कि सामान्य जनता और किसानों की दरिद्रता घटने के स्थान पर बढ़ती ही गयी, अर्थात् इसीलिए पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में देश के

सांस्कृतिक पुन:त्थान की आवश्यकता का अनुभव करते हुए भी उन्होंने शासक वर्ग द्वारा देश के आर्थिक शोषण का घोर विरोध अपनी रचनाओं, कृतियों के माध्यम से किया। प्रतापनारायण मिश्र की 'एक गजल' रचना में 'भारत-दुर्दशा' पर गहरी चिंता शोधार्थी के अनुसार निम्नवत प्रकट की गयी है-

"अभी देखिए क्या दशा देश की हो, बदलता है रंग आसमां कैसे-कैसे।"

(प्रतापनारायण मिश्र)

कहाँ तो प्राचीन भारत की भौतिक और सांस्कृतिक समृद्धि और कहाँ अकाल, महँगाई, महामारी तथा करों के बोझ से त्रस्त जन-जीवन ! परिवार, समाज और देश की क्रमश: बढ़ती हुई हीन भावना के चित्रण में भी रचनाकारों की वाणी अनायास करूणा से भीग उठी। अत: भारतेन्दु जी ने और प्रतापनारायण मिश्र जी ने समाज की सम्पूर्ण पीड़ा का सहतार्थ वर्णन निम्नवत् किया-

"रोवहू सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा ! हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

"तबहि लख्यो जहं रह्यो एक दिन कंचन बसरत।
तहं चौथाई जन रूखी रोटिहुं को तरसत।।
जहं आमन की गुठली अरू बिरछन की छालैं।
ज्वार चून महं मेलि लोग परिवारहिं पालैं।।
नौन तेल लकरी घासहु पर टिकस लगे जहं।
चना चिरौंजी मोल मिलैं जहं दीन प्रजा कहं।।"

(प्रतापनारायण मिश्र)

अभिप्राय यह है कि 'सामाजिक-परिवेश' के चित्रण में कुछ कवियों की दृष्टि सुधारवादी थी, तो कुछ कवियों की दृष्टि यथास्थितिवादी भी थी। जिनका उदाहरण प्रस्तुत उपरोक्त वर्णन में निहित है।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" लेखन में 'भक्ति-भावना'-

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में भारतेन्दु-युग में परम्परागत धार्मिक और भक्ति-भावना का अपेक्षाकृत गौण स्थान प्राप्त हुआ है। फिर भी इस काल के भक्तिकाव्य को तीन वर्गों में विभावजित किया जा सकता है-

1. निर्गुण भक्ति काव्य,
2. वैष्णव भक्ति काव्य,

3. स्वदेशानुराग-समन्वित ईश्वर-भक्ति।

उक्त प्रथम दो में किसी उल्लेखनीय नवीनता का परिचय न हुआ, बल्कि मध्ययुगीन परिपाटी का अनुसरण मात्र ही किया गया, किन्तु भक्ति और देश-प्रेम को एक ही समकोण पर प्रतिष्ठित करना, किसी सीमा तक संवेदन की 'मौलिकता' का परिचायक है। निर्गुण-भक्ति इस काल में मुख्य साधना-दिशा नहीं थी, फिर भी कुछ कवियों ने परम्परा के प्रभावस्वरूप संसार की नश्वरता, माया-मोह, की व्यर्थता, विषयाशक्ति की निंदा, आदि विषयों पर तो उपदेशात्मक ढंग से विचार व्यक्त किये हैं।

किन्तु ब्रह्म-चिंतन और हठयोग जैसे विषयों पर काव्य-रचना उन्हें अभीष्ट नहीं करती। इसके विपरीत वैश्णव-भक्ति के अंतर्गत भगवान श्री-राम, भगवान श्री-कृष्ण और अन्य देवी-देवताओं का वर्णन अनेकों कवियों द्वारा किया गया।

उदाहरणार्थ– बिहार के अल्पज्ञात कवि हरिनाथ पाठक (1843-1904) की कृति "ललित रामायण"(1893), वहीं बिहार के ही दूसरे कवि अक्षय कुमार द्वारा प्रणीत "रसिकविलास रामायण"(1886) और बाबू तो ताराम (1848-1902) की "राम-रामायण" भगवान श्री राम-भक्ति के संदर्भ में उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। हरिनाथ पाठक की रचना से राम-काव्य की सुपरिचित श्रृंगार-पद्धति के अनुसरण में शोध फलस्परूप निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य है-

मुरूगवा बोले बिपिन में भोरे।
सुखद सेज सोवत रघुनन्दन, जनक लली संग कोरे।
प्रीतम अंक लगी महाराणी शापति सुनि खग सो रे॥
बन में अवरन जागे खग सब, शब्द करत झकझोरे।
जन हरिनाथ समय सुखदायक, नहि भावत मन मोरे॥
(हरिनाथ पाठक)

राम-काव्य की तुलना में कृष्णभक्ति-काव्य की रचनाओं का अधिक परिमाण इसी युग में हुआ। इस दिशा में सबसे अधिक योगदान भारतेन्दु जी का है। भारतेन्दु जी राधा-कृष्ण के भी अनन्य भक्त थे। जिसका जीवन्त उदाहरण निम्नलिखित पंक्ति में दिया जा रहा है-

"सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के"

उक्त पंक्ति की भावना के अनु कूल संख्या और विनय भाव की भक्ति का दर्शन मिलता है। वात्सल्य भक्ति के भी कुछ पद उन्होंने लिखे हैं। अन्य धर्मो

के प्रति उनका दृष्टिकोण उदारतापूर्ण था। इसीलिए उन्हों ने निम्न पंक्ति में धार्मिक मतभेदियों की भर्त्सना की है-

"अपुनो मत लै लै सब झगरत ज्यों भठिहारे"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

इसी प्रकार उन्हो ने अपनी भक्ति-भावना को उर्दू-पद-शैली में भी निम्नवत व्यक्त की -

ढूँढ फिरा मैं इस दुनिया में पश्चिम से ले पूरब तक।
कहीं न पायी मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक।
मसजिद मन्दिर गिरजों में देखा मतवालों का जो दौर।
अपने अपने रंग में रंगा दिखाया सब का तौर।
सिवा झूठी बातों व बनावट के न नजर आया कुछ और।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं मेंश्रृंगारिकता की अभिव्यक्ति'-

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य में भारतेन्दु और उनके समकालीन कवियों ने रस को काव्य की आत्मा मान कर अपनी रचनाओं में विविध रसानुभूतियों का भावन किया है, जिनमेंश्रृंगार रस सर्वप्रमुख है। प्रतापनारायण मिश्र के अतिरिक्त प्राय: सभी मुख्य कृतिश्रृंगार-वर्णन' की ओर उन्मुख रहे हैं। रीतिकालीन कवियों का अनुसरण करते हुए सामान्यत: उन्हों ने कृष्णकथा के संदर्भ में प्रेम और सौंदर्य का वर्णन किया है, किन्तु राधाकृष्णदास की 'राम-जानकी' कविता में मर्यादितश्रृंगार और हरिनाथ पाठक की 'श्री ललित रामायण' आदि में 'रामकथा' की रसिकतायुक्त अवधारणा भी मिलती है।श्रृंगार-वर्णन के लिए इनके सामने चार विकल्प थे -

भक्तिकालीन कृष्णकाव्य की परम्परा में माधुर्य भक्तिपरकश्रृंगार-चित्रण, रीतिकालीन पद्धति पर नखशिख, शड्ऋतु और नायिकाभेद का वर्णन, उर्दू-कविता से सम्पर्क के फलस्वरूप प्रेम की वेदनात्मक व्यंजना, और अंग्रेजी की प्रेम-कविताओं से प्रभाव-ग्रहण। इनमें से अन्तिम को छोड़ कर शेष तीनों की परिव्याप्ति इस युग में मिलती है, विशेष रूप से भारतेन्दु और प्रेमधन की रचनाओं में प्राय: ये तीनों विद्यमान हैं। भारतेन्दु ने 'प्रेम-सरोवर', 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-तरंग', 'प्रेम-फुलवारी', आदि में "भक्ति-श्रृंगार" और "विशुद्ध-श्रृंगार" दोनों का समावेश किया है। प्रेमधन की 'युगलमंगल-स्तोत्र' तथा 'वर्षा-विन्दु'

भी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। सौंदर्य प्रेम और विरह की व्यंजना में कहीं-कहीं ये दोनों ही कवि उर्दू-काव्य-शैली से भी प्रभावित हुए हैं, किन्तु नखशिख और नायिकाभेद पर पारम्परिक शैली में काव्यरचना इन्होंने नहीं की वैसे, भारतेन्दु के प्रेमदशा-वर्णन सम्बन्धी अनेक सवैयों में घनानन्द जैसी सरसता विद्यमान है। जिसका उदाहरण निम्नवत है-

टाजु लौं न मिले तो कहा हम तो तु मरे सब भाँति कहावैं।
मेरौ उराहनौ है कछु नाहिं सबै फल आपुने भाग को पावैं॥
जो हरचन्द भई सो भई अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति बिदा की समैं सब कंठ लगावैं॥

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन' रचनाओं में 'प्रकृति-चित्रण'-

प्राकृतिक सौंदर्य का स्वच्छंद वर्णन आधुनिक हिन्दी-साहित्य में 'भारतेन्दु-युगीन' कविता की अंगभूत विशेषता है, किन्तु अधिकतर कवियों ने परम्परा-निर्वाह ही किया है। भारतेन्दु-कृत 'बसंत होली' अम्बिकादत्त व्यास की 'पावस-पचासा', गोविन्द गिल्लाभाई की 'शड्ऋतु' और 'पावस-पयोनिधि' आदि कृतियों में 'वसंत ऋतु' और 'वर्षा काल' का आलम्बनात्मक चित्रण मिलता है। ऋतु सौंदर्य के स्थान पर कवियों ने ऋतु विशेष में नायक-नायिका की मनो दशाओं के वर्णन में अधिक रूचि ली है। सौंदर्यबोध में सहायक स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण का श्रेय किसी स्तर तक ठाकुर जगमोहन सिंह का दिया जा सकता है। भारतेन्दु ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में गंगा-वर्णन और 'चन्द्रावली' नाटिका में यमुना-वर्णन किया है, किन्तु अलंकार-भार के कारण इनमें उनकी स्वतन्त्र अनुभूति की क्षमता बहुत-कुछ दब सी गयी है। उनकी रचना 'प्रात समीरन', प्रेमधन की 'मयंक-महिमा' और प्रतापनारायण मिश्र की 'प्रेम-पुष्पांजलि' शीर्षक नामक कविताओं में विषय के स्वतन्त्र उपस्थान का यत्किंचित् प्रयास भी हुआ है, तो उसमें कवियों को उतनी सफलता नहीं मिली, क्योंकि प्रकृति को श्रृंगारिक मनो दशाओं, सामाजिक उद्बोधन, नीति-कथन आदि से सम्बद्ध करने की अनीवार्यता अभी उनके मन में बनी हुई थी। जगमोहन सिंह की कविताओं में इस प्रवृत्ति का अभाव नहीं था पर इनके साथ ही प्रकृति के शूक्ष्म नैसर्गिक सौंदर्य से प्रेरणा ली है। विंध्य-प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा का सजीव और वैविध्यपूर्ण चित्रण उनके काव्य की अनन्य विशेषता है जिसका उदाहरण निम्नवत शोधार्थी द्वारा दिया जा रहा -

पहार अपार कैलास से काटिन ऊँची शिखा लगि अम्बर चूम।
निहारत दीठि भ्रमै पगिया गिरि जात उतं गता ऊपर झूम॥
प्रकाश पतंग सों चोटिन के बिकसै अरबिन्द मलिन्द सुझूम।
लसै कटि मेखला के जगमोहन कारी घटा घन घोरत धूम॥

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं में 'हास्य-व्यंग्य' का वर्णन–

भारतेन्दु युग में हास्य-व्यंग्यात्मक रचनाओं की भी प्रचुर परिमाण में रचना हुई। पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों आदि पर व्यंग्य करने के लिए कवियों ने विषय और शैली की दुष्टि से अनेक नये प्रयोग किये। इस दिशा में भारतेन्तु जी का योगदान सर्वाधिक है। अपने नाटकों के प्रगीतो में कहीं-कहीं शिष्ट हास्य को स्थान देने के अतिरिक्त उन्होंने व्यंग्यगीतियों और मुकरियों की भी रचना की है। उनकी व्यंग्यगीतियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1- पैराडी, 2- स्यापा, 3- गाली।

' बन्दसभा' के गीतों की रचना उन्होंने उर्दू-नाटक, 'इंदरसभा' के गीतों की पैरोडी के रूप में की है। 'उर्दू का स्यापा' उर्दू-फारसी के 'स्यापा' नामक काव्यरूप की शैली में लिखित है, उदाहरण निम्नवत है -

"है है उर्दू हाय-हाय, कहाँ सिधारी हाय-हाय"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

उपरोक्त पंक्ति में भारतेन्दु जी ने 'बनारस-अखबार' के समाचार-शीर्षक में 'उर्दू मारी गयी' पर व्यंग्य किया है। इसके साथ ही 'समधिन मधुमास' की रचना "गाली" नामक व्यंग्यगीत की शैली में की गयी है। तथा इसी प्रकार 'नये जमाने की मुकरी' नामक शीर्षक से उन्होंने समकालीन सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों को ले कर कुछ मनोहारिणी मुकरियों की भी रचना की है। जिन पर अमीर खुसरो की शैली की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। जिसमें मद्यपान के संदर्भ में उन्होंने शोधार्थी के अनुसार निम्नलिखित व्यंग्योक्ति रचना लिखी है-

मुँह जब लागै तब नहिं छूटे, जाति मान धन सब कुछ लू टे।
पागल करि मोहिं करे खराब, क्यों सखि सज्जन ? नहीं शराब॥

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

उपरोक्त संदर्भित काल में भारतेन्दु जी के अतिरिक्त भी अन्य हास्य-व्यंग्यकार रचनाकार हुए हैं, जिनमें प्रेमधन एवं प्रतापनारायण मिश्र प्रमुख हैं। 'प्रेमरमघन-सर्वस्व' का 'हास्य-बिंदु' शीर्षक प्रकरण में समसामयिक स्थितियों के विनोदपूर्ण वर्णन

और तज्जनित उद्‌बोधन की दृष्टि से सभी का हास्य-व्यंग्यकार रचनाकार के रूप में ध्यान आकृष्ट करता है। तथा प्रतापनारायण मिश्र जी की 'तृप्यन्ताम्', 'हरगंगा', 'बुढ़ापा' और 'ककराष्टक' शीर्षक नामक रचनाएँ भी अपनी नयी तर्ज एवं हास्य-व्यंग्यकार रचना के लिए प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रकार अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त युवकों द्वारा भारतीय रीति-नीति को त्याग कर पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने पर प्रतापनारायण मिश्र जी ने शोधार्थी नुसार अत्यन्त मार्मिक व्यंग्य किया है -

जग जानैं इंगलिश हमैं, वाणी वस्त्रहिं जोय।
मिटै बदन कर श्याम रंग-जन्म सुफल तब होय॥

(प्रतापनारायण मिश्र)

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं में 'समस्या-पूर्ति'-

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक इतिहास में भारतेन्दु-युग में गृहीत रीतिकालीन, काव्यशैलियों में "समस्यापूर्ति" पर्याप्त लोकप्रिय काव्यपद्धति प्रचलित हुई। कवियों, लेखकों की प्रतिभा और लेखनी कौशल का परखने के लिए कवि-गोष्ठियों और कवि-समाजों में कठिन-से-कठिन विषयों पर समस्यापूर्ति करायी जाती थी। इसमें भारतेन्दु जी द्वारा काशी में स्थापित "कविता-वद्धिनी-सभा", कानपुर का "रसिक-समाज", बाबा सुमरसिंह द्वारा निजामाबाद (वर्तमान आजमगढ़) में स्थापित "कवि-समाज" आदि ऐसे ही मंच थे। जहाँ नियमित रूप से कवि गोष्ठियाँ हो ती थी और किसी भी संदर्भित विषय में "समस्यापूरण" (समस्यापूर्ति) की प्रतियोगिता के रूप में प्रोत्साहित किया जाता था तथा प्रतिष्ठित कवि इनमें प्रतिभाग करने में संकोच नहीं करते थे तथा नये नौजवान कवियों-लेखकों का इससे उत्साहवर्ध न होता था। कानपुर के प्रतापनारायण मिश्र द्वारा 'पपीहा जब पूछिहै पीव कहाँ' शीर्षक नामक रचना की अधोलिखित पंक्तियाँ कितनी हृदयस्पर्शी बन पड़ी हैं, उदाहरणार्थ -

बन बैठि है मान की मूरति-सी, मुख खोलत बालै न 'नाहीं' न 'हाँ'।
तुम ही मनुहारि कै जारि परे, सखियान की कौन चलाई तहाँ।
बरषा है 'प्रतापजू' धीर धरौ, अब लौं मन को समझायो जहाँ।
यह ब्यारि तबै बदलेगी कछु, पपीहा जब पूछिहै 'पीव' कहाँ ?

(प्रतापनारायण मिश्र)

समस्यापूर्ति के लिए उस समय परम्परागत शृंगारिक विषयों का ही अधिक प्रचलन था, लेकिन यह दूसरी बात है कि नवीन सामाजिक परिवेश में हिन्दी

साहित्य के इस काल में जिन नये-नये विषयों को स्थान प्राप्त हाने लगा था, कभी-कभी उनकी झलक उपर्युक्त समस्यापूर्तियों में भी दिखाई दे जाती थी। श्रृंगार रस की ललित समस्यापूर्ति के लिए प्रेमधन, लछिराम, विजयानन्द त्रिपाठी, गोविन्द गिल्लाभाई, रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर', बेनी द्विज, ब्रजचन्द वल्लभीय आदि रचनाकारों को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। 'चरचा चलिये की चलाइए ना' की में शोधार्थी के अनुसार प्रेमधन द्वारा अधोलिखित पंक्तियाँ प्रासंगिक हैं-

बगियान बसन्त बसेरो कियो, बसिए तेहि त्यागि तपाइए ना।
दिन काम कुतूहल के जो बने, तिन बीच बियोग बुलाइए ना।।
' घन प्रेम' बढ़ाय कै प्रेम अहो ! बिथा बारि बृथा बरसाइए ना।
चित चैत की चाँदनी चाह भरी, चरचा चलिबै की चलाइए ना।

(प्रेमधन)

समस्यापूरण का वैशिष्ट्य कवियों की सूझ-बूझ, उक्ति-वैचित्य और और आशुकवित्व में होता है। तत्कालीन कवि समाज में समस्यापूर्ति के लिए वाहवाही प्राप्त करना गौरव की बात समझा जाता था। अंबिकादत्त व्यास ने अपने कवि-जीवन का आरम्भ कविता-वद्धिनी-सभा में 'पूरी अमी की कटोरिया सी', 'चिरजीवी रहौ विक्टोरिया रानी' समस्या-की-पूर्ति करके किया था और इस पर उन्हें "सुकवि" की 'उपाधि' भी प्राप्त हुई थी। इनके पिता दुर्गा दत्त व्यास भी ब्रजभाषा के रसिक कवि थे, इनके द्वारा संकलित 'समस्यापूर्ति-प्रकाश' उस समय संदर्भित काल की प्रसिद्ध रचना है। इस प्रकार के अन्य संग्रहों में अम्बिकादत्त व्यास जी का 'समस्यापूर्ति-सर्वस्व', गोविन्द गिल्लाभाई का 'समस्यापूति-प्रदीप' और सीतापुर-निवासी गंगाधर 'द्विजगंग' का 'समस्या-प्रकाश' उल्लेखनीय है। नर्म देवेश्वर प्रसाद सिंह जी के कविता-संग्रह 'पंचरत्न' में उनकी समस्यापूर्तियाँ भी संगृहीत हैं।

इसी प्रकार से "भारतेन्दु-ग्रन्थावली" में भारतेन्दु जी की समस्यापूर्तियों का भी संग्रह किया गया है। संदर्भित-शोध के फलस्वरूप उदाहरणस्वरूप 'पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अंखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं' में भारतेन्दुकृत प्रतिपूर्ति निम्नवत है -

यह संग में लागिये डोलैं सदा बिन देखे न धीरज आनती हैं।
छिनहू जो वियोग परै 'हरिश्चन्द' तो प्रलै की सु ठानती हैं।।
बसनी में थिरैं न झपैं उझपैं, पल में न समाइबौ जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं।।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

निष्कर्ष

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य के विकासक्रम में 'भारतेन्द्र-युग' के हिन्दी गद्य-साहित्य का महत्व और मूल्य हिन्दी-साहित्य में असाधारण है। इसी युग में हिन्दी-प्रदेश और देश में आधुनिक जीवन-चेतना का उद्घोष हुआ। मध्यमवर्गीय सामाजिक चेतना के परिवेश में साहित्य रचना का जो रूप उभरा, उसमें कहीं-कहीं सामन्तीय संस्कारों का अवशेष लक्षित होता है, किन्तु वह टूटते के क्रम में है। रचनागत पतिपाद्य की दृष्टि से यह बहुत बड़ा परिवर्तन था तथा हिन्दी-साहित्य सृजन की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी-गद्य साहित्य की प्रायः सभी विधाओं का सूत्रपात इसी युग में हुआ। विशेषतः निबन्ध तथा नाटक इन दोनों विधाओं में लेखकों को अभुतपूर्व सफलता प्राप्त हुई, उपन्यासों में सामाजिक जीवन के स्पंदन का स्वर भी इसी युग में सुनायी पड़ने लगा। सब कुछ मिलाकर 'भारतेन्दु-काल' का साहित्य व्यापक जागरण, राष्ट्रीय-जागरण का संदेश लेकर आया तथा भाषा के अभूतपूर्व विकास में भी प्रगति हुई। इस युग में न केवल "हिन्दी-गद्य साहित्य" का स्परूप स्थिर हुआ, वरन् उसके शुद्ध साहित्योपयोगी और व्यवहारोपयोगी रूपों की पूर्ण प्रतिष्ठा भी हुई।

अतः अन्त में प्रस्तुत शोध में निष्कर्ष निकलता है कि भारतेन्दु-युग राष्ट्रीयजागरण, देशभक्ति की भावना, एवं कृतियों में श्रृंगारिकता, लोकधर्म, सामाजिक भावना, सांस्कृतिक विकास इत्यादि लेकर आया।

2

नवजागरण की समस्याएँ

भारतेंदु हरिश्चंद्र के उदय के साथ हिंदी में एक नए युग का आरंभ हुआ, यह मान्यता तो बहुत पहले से प्रचलित रही है, किंतु इस नए युग को 'नवजागरण' नाम देने का श्रेय हिंदी में डॉ. रामविलास शर्मा को है। 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' (1977) नामक पुस्तक के द्वारा उन्होंने 'नवजागरण' की नहीं बल्कि 'हिंदी नवजागरण' की संकल्पना प्रस्तुत की। इससे पहले भारत में नवजागरण की चर्चा प्राय: 'बंगाल नवजागरण' के रूप में ही होती रही है। शब्द के प्रयोग पर प्रकाश डालते हुए डॉ. शर्मा ने कुछ वर्ष बाद 'भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, (1984) नामक एक अन्य पुस्तक के तीसरे संस्करण की भूमिका में लिखा है कि 'नवजागरण' यह शब्दबंध नया था, धारणा पुरानी थी। पुरानी धारणा से तात्पर्य संभवत: 'रिनेसांस' से है।

हिंदी साहित्य के पुराने इतिहास ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि पादरी एफ.ई. के ने 1920 ई. में ही इस 'रिनेसांस' की चर्चा की थी। अपनी छोटी-सी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिट्रेचर' के पहले अध्याय में लिखा है–'उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में यूरोप की संस्कृति के संपर्क के द्वारा हिंदी साहित्य में एक नया प्रभाव आया।... इसी समय के आस-पास भारत में एक सशक्त साहित्यिक नवजागरण शुरू हुआ, जो अब तक प्रगति पर है।'

कहते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय स्वयं भी उस समय की नई सांस्कृतिक चेतना को एक 'रिनेसांस' समझते थे। पादरी अलेक्जेंडर डफ से एक बार उन्होंने कहा था–'मुझे ऐसा लगने लगा कि यहाँ भारत में यूरोपीय रिनेसांस से मिलता-जुलता कुछ घटित हो रहा है।'

लेकिन उसी नवजागरण की एक अन्य महान विभूति बंकिमचंद्रचट्टोपाध्याय की दृष्टि में 'रिनेसांस' पंद्रहवीं शताब्दी के भारत का सांस्कृतिक जागरण था। अपने निबंध 'बाङ्लार इतिहास संबंधे कयेकटि कथन' (1980) में उन्होंने लिखा है–'यूरोप कितना पहले सभ्य हुआ? सिर्फ चार सौ साल पहले पंद्रहवीं सदी तक यूरोप हमसे अधिक असभ्य था। सभ्यता यूरोप में एक घटना से आई। अकस्मात् यूरोप ने चिर-विस्मृत ग्रीक संस्कृति का पुनराविष्कार किया।... पेट्रार्क, लूथर, गैलिलियो, बेकनय अकस्मात् यूरोप का भाग्योदय हो गया। हमारे यहाँ भी एक बार वही दिन आया था। अकस्मात् नवद्वीप में चैतन्य चंद्रोदय, उसके बाद रूप सनातन प्रभूति असंख्य कवि धर्मतत्त्वविद् पंडित। दर्शन में रघुनाथ शिरोमणि, गदाधर, जगदीश: स्मृति में रघुनंदन एवं उनके अनुयायी। फिर बंगला काव्य का जलोच्छ्वास। विद्यापति, चंडीदास, चैतन्य के पूर्वगामी। किंतु उसके बाद जो चैतन्य परवर्तिनी बंगला कृष्णविषयक कविता लिखी गई, वह अपरिमेय तेजस्विनी और जगत में अतुलनीय है। यह सब कहाँ से आया? हमारा यह 'रिनेसांस' कैसे घटित हुआ? सहसा जाति की यह मानसिक उद्दीप्ति कहाँ से हुई।

प्रसंग बंगाल के इतिहास का था, इसलिए बंकिम के सारे उदाहरण भी स्वभावत: बंगाल तक ही सीमित हैं। फिर भी इस कथन का विस्तार पूरे भारत के व्यापक संदर्भ में किया जा सकता है, जिससे स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि यूरोप के 'रिनेसांस' के समान भारत में भी पंद्रहवीं शताब्दी में नवजागरण की लहर उठी थी। सामान्यत: इसे अपने यहाँ भक्ति आंदोलन कहा जाता है। सवाल यह है कि 'रिनेसांस' किसे कहा जाए-पंद्रहवीं शताब्दी के भक्ति आंदोलन को या उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक नवजागरण को?

यदि केवल शब्द के स्तर पर ही देखें तो स्वयं यूरोप में भी समस्या इतनी स्पष्ट न थी। 'प्रकृति का द्वंद्ववाद' नामक पुस्तक में 'महान रिनेसांस' का वर्णन करते हुए एंगेल्स ने लिखा है–'प्रकृति की आधुनिक खोज हाल के समूचे इतिहास की भाँति उस महान युग से आरंभ होती है, जिसे हम जर्मन अपने ऊपर

आई राष्ट्रीय विपदा के नाम पर 'रिफार्मेशन' का काल कहते हैं और फ्रांसीसी लोग 'रिनेसांस' कहते हैं तथा इतावली लोग 'चिंक्वेचेंती' कहते हैं, यद्यपि इनमें से कोई भी नाम उसके सार को पूर्णत: अभिव्यक्त नहीं करता। यह वह युग था जिसका उदय पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय भाषाओं में भी उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के लिए पुनरुत्थान, नवजागरण, प्रबोधन, समाज सुधार आदि अनेक शब्द प्रचलित हैं। निस्संदेह इनमें से प्रत्येक शब्द के साथ एक निश्चित अर्थ, एक निश्चित प्रत्यय जुड़ा है। किंतु मुख्य प्रश्न तो यह है कि यदि भारत का उन्नीसवीं शताब्दी का सांस्कृतिक नवजागरण 'रिनेसांस' था तो पंद्रहवीं शताब्दी का सांस्कृतिक नवजागरण क्या था?

उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण को 'रिनेसांस' कहने में एक कठिनाई तो यही है कि इस युग के भारतीय विचारकों और साहित्यकारों के प्रेरणा-स्त्रोत यूरोप के पंद्रहवीं शताब्दी के चिंतक और साहित्यकार न थे, बल्कि इसके विपरीत प्रेरणा-स्त्रोत के रूप में अधिकांश विचारक उस काल के थे, जिसे यूरोप में 'एनलाइटेनमेंट' का काल तथा उसके बाद का काल कहा जाता है। स्वयं बंकिम की सहानुभूति रूसो और प्रूधों के साथ थी और वे कोन्त, जान स्टुअर्ट मिल तथा हर्बर्ट स्पेंसर से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। कमोबेश यही स्थिति बंगाल में राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, देरोजियो आदि की दिखती है और हिंदी में महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा रामचंद्र शुक्ल की भी। उल्लेखनीय है कि महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' ज्ञान की पत्रिका कही गई है और उनका गद्य हिंदी साहित्य का ज्ञानकांड। इस प्रकार भारत का उन्नीसवीं शताब्दी का नवजागरण यूरोप के 'एनलाइटेनमेंट' अथवा 'ज्ञानोदय' की चेतना के अधिक निकट प्रतीत होता है और पंद्रहवीं शताब्दी का नवजागरण 'रिनेसांस' के तुल्य। अब यदि यह अंतर प्रत्यय के स्तर पर स्पष्ट हो तो दोनों के लिए अलग-अलग नाम निश्चित करने में विशेष कठिनाई नहीं रहती। संभवत: इस अंतर को ध्यान में रखकर ही डॉ.रामविलास शर्मा ने पंद्रहवीं शताब्दी के भक्ति आंदोलन के लिए 'लोकजागरण' और उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक जागरण के लिए 'नवजागरण' शब्द का प्रयोग किया है। इन शब्दों के बदले और नए शब्द गढ़ने की अपेक्षा इन्हीं शब्दों को प्रचलित करना बेहतर है और सुविधाजनक भी। 'लोक जागरण' और 'नवजागरण' से पंद्रहवीं शताब्दी और उन्नीसवीं शताब्दी की सांस्कृतिक प्रतिक्रियाओं के बीच परंपरा का संबंध भी बना रहता है और अंतर भी स्पष्ट हो

जाता है। इसके अतिरिक्त यूरोपीय इतिहास के अनावश्यक अनुषंग से मुक्ति भी मिल जाती है। क्या अपने इतिहास की व्याख्या के लिए हम हमेशा अंग्रेजी प्रत्ययों का अनुवाद ही करते रहेंगे?

उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण पर ठीक से विचार करने के लिए पंद्रहवीं शताब्दी के लोकजागरण के बारे में भी स्पष्टता आवश्यक है। नवजागरण, लोकजागरण का पुनरुत्थान मात्र नहीं है, किंतु एक में दूसरे की चेतना अंशत: विद्यमान है। बंकिमचंद्र ने ब्राह्मों विचारकों को वेदों और उपनिषदों तक दौड़ लगाते देखकर साफ शब्दों में कहा था कि 'समतावादी और आधुनिक मूल्यों के लिए वेदों और उपनिषदों की दूरी तक दौड़ लगाना क्यों जरूरी है, जबकि बंगाल ने चैतन्य जैसे समाज-सुधारक को जन्म दिया, जिन्होंने अभी सोलहवीं शताब्दी में ही जातिगत असमानता और धार्मिक असहिष्णुता की भर्त्सना की है।' हिंदी से उदाहरण लें तो भारतेंदु की वैष्णव-निष्ठा सर्वविदित ही है। सन् 1884 ई. में जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने 'वैष्णवता और भारतवर्ष' शीर्षक एक लंबा लेख लिखकर सप्रमाण सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि' वैष्णव मत ही भारतवर्ष का मत है और वह भारतवर्ष की हड्डी, लहू में मिल गया है।' ऐसे उदाहरण उन्नीसवीं शताब्दी के अंतर्गत अन्य भाषाओं के साहित्यकारों में भी मिल जाएंगे।

उन्नीसवीं शताब्दी का नवजागरण भक्तिकालीन लोकजागरण से भिन्न इस बात में है कि यह उपनिवेशवादी दौर की उपज है, इसलिए इसकी ऐतिहासिक अंतर्वस्तु भी भिन्न है। यह उस लोकजागरण से इसलिए भी भिन्न है कि इसके पुरस्कर्ता और विचारक नए शिक्षित मध्यवर्ग के हैं, जिन्हें बंगाल में 'भद्रलोक' की संज्ञा दी गई है। यह नया भद्रलोक भक्त कवियों की तरह न तो सामान्यलोक के बीच से आया था और न लोकजीवन के साथ घुल-मिल पाने में ही सफल हो सका। इनमें से कुछ विचारों में लोकोन्मुख अवश्य थे, लेकिन आचार में लोक के साथ तादात्म्य स्थापित न कर पाए। इसलिए भक्तिकालीन लोकजागरण की तुलना में इस नवजागरण का प्रसार भी सीमित था। इसका प्रभाव बहुत कुछ नए नगरों तक ही सीमित था।

उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण की चर्चा के क्रम में यूरोपीय 'रिनेसांस' का जिक्र इतना आया है कि उसे एकदम स्मृति-पटल से मिटा देना मुश्किल है, और उसे शाश्वत-सार्वभौम मान लेने का एक प्रलोभन भी है, किंतु हमारे नवजागरण की एक देन वह 'आलोचनात्मक' दृष्टि भी है, जो यूरोप के

'प्राच्यविद्यावाद' (ओरिएंटलिज्म) के इस उपनिवेशवादी मायापाश को छिन्न करने की चेतावनी देती है।

भारतीय नवजागरण की मूल समस्या है भारतेंदु के शब्दों में 'स्वत्व निज भारत गहै।' यह 'स्वत्व' वही है जिसे आजकल 'अस्मिता' कहते हैं। राजनीतिक स्वाधीनता इस 'स्वत्व' की पहली शर्त है। नवजागरण के उन्नायक इस आवश्यकता का अनुभव करते रहे होंगे, यह सोचना कठिन है, फिर भी तथ्य यही है कि नवजागरणकालीन प्रकाशित साहित्य में राजनीतिक स्वाधीनता का स्पष्ट स्वर कम ही सुनाई पड़ता है। पहले ईस्ट इंडिया कंपनी और फिर महारानी विक्टोरिया के शासन-काल में राज के विरुद्ध निश्चय ही किसानों के छिटपुट विद्रोह बराबर होते रहे, जिनमें सबसे संगठित और सशक्त सन् सत्तावन की राजक्रांति है, फिर भी समकालीन शिष्ट साहित्य में उसकी गूँज सुनाई नहीं पड़ती-लोक साहित्य भले ही प्रचुर मात्रा में मौखिक रूप में रचा गया हो। यह स्थिति सन् सत्तावन के पहले तो थी ही, उसके बाद भी कम-से-कम तीन दशकों तक बनी रही। आर्थिक शोषण के खिलाफ जरूर लिखा गया, पुलिस तथा अन्य अफसरों के अत्याचार और अन्याय की भी शिकायत की गई, पर राजसत्ता पलटने के विचार को जैसे अंतर्गुहावास दे दिया गया। निश्चय ही इसका एक कारण-और बहुत बड़ा कारण था राजा का दमन से पैदा होनेवाला आतंक। भारतेंदु के शब्दों में 'जेहि भय भय सिर न हिलाय सकत कहुँ भारतवासी।' फिर भी देशभक्ति के साथ राजभक्ति् नवजागरण का अभिन्न स्वर है-इतना अभिन्न कि इससे किसी प्रदेश और किसी भाषा का कोई भी लेखक अछूता नहीं है। यह कटु सत्य है और इसके लिए किसी प्रकार की क्षमायाचना आज आवश्यक नहीं है और न कोई सफाई ही जरूरी है। सच तो यह है कि अधिकांश लेखक सुरक्षा, सुशासन, शिक्षा, उन्नति और शांति के लिए ब्रिटिश राज के प्रति उपकृत अनुभव करते हैं-विशेष रूप से मुगलों के शासन की तुलना में। इस प्रवृत्ति के अवशेष बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' जैसी राष्ट्रीय कही जानेवाली काव्य-कृति में भी मिलती है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो नवजागरण के अनेक उन्नायक राजसत्ता के साथ सहयोग करते भी दिखाई पड़ते है। अब इसे कोई चाहे तो नवजागरण के उन्नायकों का मध्यवर्गीय अथवा भद्रलोक चरित्रकह ले, अथवा किसी संगठित राजनीतिक प्रतिरोध के अभाव के द्वारा इस निरुपायता की व्याख्या कर ले, किंतु हर हालत में यह तथ्य विस्मृत न हो कि कुल मिलाकर था यह मूलतः नवजागरण

ही-सांसकृतिक नवजागरण, जिसे राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष का पूर्व रंग भले कह लें किंतु उसका पर्याय न समझें।

जैसा कि सच्चिदानंद वात्स्यायन ने मैथिलीशरण गुप्त के प्रसंग में एक जगह कहा है, 'हम यह तो कह सकते हैं कि अंग्रेजी सरकार का विरोध किए बिना भारतीयता की प्रतिष्ठा चाहने वाले हेतु और हेतुमत् का सही रिश्ता नहीं पहचान पाए थे। ... पर आर्थिक-राजनीतिक आधार को स्वीकार कर लेने पर भी यह बात नहीं कटती कि बिना एक जीवंत और प्रेरणाप्रद आत्म-बिंब के वह लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती थी जो लड़ी गईय न वैसे लड़ी जा सकती थी जैसे लड़ी गई।'

यह बात कम मूल्यवान नहीं है कि राजनीतिक मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध पाकर नवजागरण के उन्नायक हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ नहीं गए, बल्कि उन्होंने स्वत्व-रक्षा के अन्य मोर्चों पर संघर्ष जारी रखा। यह संघर्ष था सांस्कृतिक मोर्चे का-सांस्कृतिक मोर्च पर औपनिवेशक मानसिकता और दिमागी गुलामी के खिलाफ संघर्ष। कहना न होगा कि यह संघर्ष राजनीतिक संघर्ष से कम कठिन न था। उपनिवेशवाद की छाया में भारतीय संस्कृति के लोप का खतरा था। इसलिए अपनी संस्कृति की रक्षा का प्रश्न स्वत्व-रक्षा का प्रश्न बन गया था। 1840 में अक्षयकुमार दत्त ने एक ब्राह्मों सभा में भाषण देते हुए कहा था-'हम एक विदेशी शासन के अधीन हैं, एक विदेशी भाषा में शिक्षा प्राप्त करते हैं, और विदेशी दमन झेल रहे हैं, जबकि ईसाई धर्म इतना प्रभावशाली हो चला है और कि वह इस देश का राष्ट्रीय धर्म हो। 3मेरा हृदय यह सोचकर फटने लगता है कि हिंदू शब्द भुला दिया जाएगा और हम लोग एक विदेशी नाम से पुकारे जाएँगे।'

इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय नवजागरण धार्मिक रूप लेने के लिए क्यों विवश हुआ। नवजागरण काल का शायद ही कोई लेखक या विचारक हो, जिसने धार्मिक प्रश्नों पर न लिखा हो। जब स्वयं उपनिवेशवादी राजसत्ता का दमन ही धार्मिक रूप ले रहा था तो प्रतिरोध का धार्मिक रूप में प्रकट होना अनिवार्य था। माक्स म्यूलर ने इस धार्मिक दमन के आँकड़े देकर बताया था कि 1885 तक भारत में 38 ईसाई मिशन-समाज काम कर रहे थे, जिनके विदेशी सदस्यों की संख्या 887 थी और देशी प्रचारक 751 तथा गैर-ईसाई सहायक 2856 थे। ये ईसाई मिशन अन्य साधनों के अतिरिक्त स्कूलों और अस्पतालों के जरिए भी धर्मपरिवर्तन करवा रहे थे। ऐसे वातावरण में स्वत्त्व का प्रश्न धर्म का प्रश्न बन गया था।

भारतीय अस्मिता समाप्त करने के लिए अंग्रेजी सरकार की ओर से भारत के इतिहास को भी तोड़-मरोड़कर पेश करने की कोशिश की गई। उपनिवेशवाद ने एक ओर तो भारत के प्राचीन इतिहास की सामग्री को खोज-खोदकर एकत्र किया और दूसरी ओर उसका उपयोग अपनिवेशवादी सत्ता के हक में किया। यह था उपकार के आवरण में अपकार का षड्यंत्र। भारतीय अस्मिता को एक बड़ा खतरा इस 'प्राच्य-विद्या' (ओरिएंटलिज्म) से था, जिसने पश्चिम से भिन्न एक ऐसे 'पूर्व' का मिथक गढ़ा जो अनंत काल तक गुलाम रहने के लिए अभिशप्त था। इस 'प्राच्य-विद्यावाद' के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए भारतीय नवजागरण ने इतिहास की प्रतिदृष्टि विकसित की। बंकिमचंद्र ने एक जगह लिखा है कि-'कोई राष्ट्र अपने इतिहास में अस्तित्व ग्रहण करता है, इसलिए अपने इतिहास का ज्ञान ही किसी जाति का आत्मज्ञान है।' आकस्मिक नहीं है कि नवजागरण के अधिकांश लेखक किसी-न-किसी स्तर पर इतिहासकार भी थे। नवजागरण की एक बहुत बड़ी देन संभवतः वह इतिहास दृष्टि है, जिससे अपने अतीत को शत्रु से मुक्त करके उसके विरुद्ध वर्तमान में इस्तेमाल करने की कला आती है और भविष्य के लिए एक स्वप्नदृष्टि भी मिलती है।

स्वत्व-संघर्ष में उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण का सबसे निर्णायक कदम भाषा के क्षेत्र में उठा। यह आकस्मिक नहीं है कि जिस भारतेंदु ने 'स्वत्व निज भारत गहै' की आवाज बुलंद की उन्हीं ने 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल' की भी घोषणा की। भारतीय भाषाओं को नवजागरण की सबसे मूल्यवान देन गद्य है और निराला के शब्दों में 'गद्य जीवन-संग्राम की भाषा है।' विदेशी भाषा के विरुद्ध अपनी भाषा की रक्षा और विकास विदेशी सत्ता के विरुद्ध स्वदेशी का जातीय अस्त्र है। वस्तुतः भाषा-विकास का स्तर वह कसौटी है, जिस पर भारत के किसी प्रदेश के नवजागरण की गहराई और व्यापकता जाँची जा सकती है। उदाहरण के लिए, हिंदी की तुलना में बंगला और मराठी गद्य का विकास चार-पाँच दशक पहले हो गया तो इसलिए कि वहाँ नवजागरण भी पहले हुआ। बंगला को उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ही ईश्वरचंद्र विद्यासागर मिल गए और उत्तरार्ध में पहले बंकिमचंद्र, फिर रवींद्रनाथ। मराठी एक तो मराठा राज के जमाने से ही राजकाज की भाषा थी, दूसरे 1840 तक मराठी माध्यम से शिक्षा देनेवाले सत्तावन स्कूल खुल गए थे। इसके अतिरिक्त मराठी का मानक रूप स्थिर करने में बंबई सरकार ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस प्रक्रिया में कोश-निर्माण का स्थान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। मराठी-मराठी 'पंडित कोश'

1829 में, मोल्सवर्थ का मराठी-अंग्रेजी कोश 1831 में सरकारी सहायता से छप चुका था। आगे चलकर मराठी को विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, महात्मा ज्योतिबा फुले, आगरकर, रानाडे और लोकमान्य तिलक-जैसे प्रश्स्त गद्यकार मिले। यदि बंकिम का गद्य बंगला नवजागरण के वर्चस्व का दर्पण है तो चिपलूणकर का गद्य मराठी नवजागरण की प्रखरता का प्रमाण।

यदि हिंदी गद्य बंगला और मराठी का पिछलगुआ रहा तो इसकी जड़ें जितनी प्रतिकूल राजनीतिक परिस्थिति में है उतनी ही हिंदी प्रदेश के विलंबित नवजागरण में। स्वयं भारतेंदु के अनुसार 1873 में हिंदी 'नए चाल में ढली'। एक तो पाँच शताब्दियों तक राजभाषा के रूप में फारसी का दबाव, फिर अंग्रेज सरकार द्वारा उर्दू को बढ़ावा,हिंदी को अस्मिता के लिए सबसे लंबा संघर्ष करना पड़ा। बिहार में हिंदी 1881 ई. में कचहरियों की भाषा स्वीकृत हुई और यू.पी. में 1900 ई. में। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पाँच दशक भाषा तो भाषा, नागरी लिपि के स्वत्व की रक्षा के संघर्ष में खप गए। इन बाधाओं के बावजूद उन्नीसवीं शताब्दी में जैसा जानदार हिंदी गद्य लिखा गया, वह आज भी स्पर्धा का विषय है।

भाषा के क्षेत्र में भारतीय नवजागरण के स्वत्व के लिए जो संघर्ष किया उसका सबसे शानदार पहलू है प्रत्येक जातीय भाषा के विकास के साथ आपसी आदान-प्रदान के लिए एक अखिल भारतीय भाषा का विकास। बंगला नवजागरण के उन्नायकों ने, चाहे वे ब्राह्म हो या गैर-ब्राह्म सनातनी, बंगला के साथ ही हिंदी को भी बढ़ावा दिया, यहाँ तक कि संस्कृत के पंडित और गुजराती दयानंद सरस्वती को संस्कृत छोड़ हिंदी में बोलने और लिखने की नेक सलाह कलकत्ते में केशवचंद्र सेन से ही मिली।

हिंदी प्रदेश के नवजागरण की अपनी विशिष्टता का निरूपण नवजागरण के इस अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही समीचीन है। यदि हिंदी नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु बंगाल नवजागरण से प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे तो उसके समर्थ सार्थवाह महावीरप्रसाद द्विवेदी की निष्पलक दृष्टि मराठी नवजागरण के अंतर्गत चलनेवाले 'संशोधन' पर थी। प्रसंगवश यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी प्रदेश में नवजागरण का कार्य मुख्यत: स्वयं लेखकों और साहित्यकारों को ही संपन्न करना पड़ा, क्योंकि यहाँ बंगाल और महाराष्ट्र की तरह प्रखर समाज-सुधारक और विचारक अगुआई करने के लिए नहीं मिले। हिंदी प्रदेश को मिले भी तो दयानंद सरस्वती जिनकी भूमिका का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि

उन्नीसवीं शताब्दी के बड़े हिंदी लेखकों में से एक भी उनसे प्रभावित न हो सका। स्वयं भारतेंदु दयानन्द की अपेक्षा बंगाल के केशवचंद्र सेन को श्रेयस्कर समझते थे। 1885 ई. में लिखित 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' शीर्षक लेख में भारतेंदु दयानंद के बारे में यह निर्णय देते हैं कि उन्होंने 'जाल, को छुरी से न काटकर जाल ही से काटना चाहा,' जबकि केशव ने इनके विरुद्ध जाल काटकर परिष्कृत पथ प्रकट किया।' केशवचंद्र सेन के महत्तर होने का कारण यह है कि भारतेंदु के मन के अनुकूल केशव ने 'अपनी भक्ति की उच्छलित लहरों में लोगों का चित्त आर्द्र कर दिया।'

बंगाल नवजागरण से हिंदी नवजागरण को अलगाते समय यह न भूलना चाहिए कि भारतेंदु का सीधा संपर्क ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, बंकिमचंद्र, राजेंद्रलाल मित्र और सुरेंद्रनाथ बैनर्जी से था। भारतेंदु ने बँगला नवजागरण की मनपसंद रचनाओं से छाया ग्रहण तो की ही, अपने नाटकों में जहाँ उन्हें क्रांतिकारी विचारो को व्यक्त करना होता था, प्रायः बंगाली चरित्रों की अवतारणा करते थे और उन्हीं को प्रवक्ता भी बनाते थे।

इन तथ्य को देखते हुए हिंदी नवजागरण की विशिष्टता बतलाने के लिए सन् सत्तावन की राजक्रांति को उसका बीज मानना कठिन है। भारतेंदु तथा उनके मंडल के लेखक सन् सत्तावन की राजक्रांति की अपेक्षा बंगाल के उस नवजागरण से प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे, जो उससे पहले ही शुरू हो चुका था। कारण यह कि भारतेंदु और उनके मंडल के लेखकों की दृष्टि में अंग्रेजी राज की चुनौती राजनीतिक से अधिक सांस्कृतिक थी और इस सांस्कृतिक संघर्ष में बंगाल नवजागरण से अस्त्र-शस्त्र मिलने की संभावना अधिक थी।

सन् सत्तावन की राजक्रांति को हिंदी नवजागरण का गोमुख मानने में एक कठिनाई यह भी है कि राजक्रांति के नितांत असांप्रदायिक पक्ष का संदेश हिंदी नवजागरण तक पूरा-पूरा नहीं पहुँच सका। हिंदी प्रदेश के नवजागरण के संमुख यह बहुत गंभीर प्रश्न है कि यहाँ का नवजागरण हिंदू और मुस्लिम दो धाराओं में क्यों विभक्त हो गया। जिस प्रदेश में हिंदू-मुस्लिम दोनों धर्मों के लोग एक साथ मिलकर सन् सत्तावन में अंग्रेजी राज के खिलाफ लड़े वहाँ दस वर्ष बाद ही जो नवजागरण शुरू हुआ वह हिंदू और मुस्लिम दो अलग-अलग खानों में कैसे बँट गया? यह प्रश्न इसलिए भी गंभीर है कि बंगाल और महाराष्ट्र का नवजागरण इस प्रकार विभक्त नहीं हुआ। हैरानी की बात यह है कि हिंदी प्रदेश का नवजागरण धर्म, इतिहास, भाषा सभी स्तरों पर दो टुकड़े हो गया। स्वत्व रक्षा

के प्रयास धर्म तथा संप्रदाय की जमीन से किए गए।

यदि हिंदी नवजागरण को सन् सत्तावन की राजक्रांति का उत्तराधिकारी कहने का अर्थ यह है कि वह अंग्रेजी राज का विरोध करने में सबसे आगे थे तो इसके लिए भी पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते। इस दृष्टि से वस्तुतः बंगला और महाराष्ट्र की तरह हिंदी प्रदेश के भी उन्नीसवीं शताब्दी के लेखकों में दो वर्ग दिखाई पड़ते हैं। एक वर्ग उन लेखकों का है, जो अंग्रेजी राज का घोर विरोधी है तो दूसरा वर्ग इस मामले में कुछ नरम दिखाई पड़ता है। विचित्र बात यह है कि अंग्रेजी राज का घोर विरोध करनेवाला वर्ग धर्म-संस्कृति आदि नैतिक-सामाजिक मान्यताओं में या तो मूलगामी है या फिर सुधारवादी। प्रथम भारतीय होने का दावा करता है तो दूसरा पश्चिमोन्मुख है। यह ढाँचा लगभग समूचे भारतीय नवजागरण का है। यदि हिंदी नवजागरण में पश्चिमोन्मुख लोग कम दिखते हैं और इस कारण अंग्रेजपरस्तों की संख्या कम है तो उसका एक कारण वह अंग्रेजी शिक्षा हो सकती है, जो इस प्रदेश में देर से पहुँची और उसका प्रसार भी बहुत सीमित रहा। किंतु एक बात तय है कि हिंदी नवजागरण के अंग्रेज-विरोध का स्त्रोत सन् सत्तावन की राजक्रांति में स्पष्ट नहीं है।

इसी प्रकार हिंदी नवजागरण में प्रखर बुद्धिवाद की प्रधानता भी संदिग्ध ही दिखाई पड़ती है। इस नवजागरण के अग्रदूत स्वयं भारतेंदु में वैष्णव भावुकता कहीं अधिक है। निश्चय ही उनमें बौद्धिकता भी है, जो व्यंग्य-रचनाओं में पूरी प्रखरता के साथ व्यक्त होती है, किंतु पद्य के साथ ही उनके अधिकांश गद्य में कृष्ण-भक्ति की भावुकता अधिक मुखर है और कहना न होगा कि यह स्त्रोत बंगाल से अधिक स्वयं हिंदी के अपने कृष्ण-भक्ति काव्य में है। भारतेंदु की यह भावुकता यदि उनकी दुर्बलता है तो उससे अधिक उनके मानवतावाद का उत्स है और साथ ही उस मस्ती और स्वाभिमान का भी सुदृढ़ आधार है, जो उन्हें अंग्रेजों के कोप की उपेक्षा करने का साहस प्रदान करता है। भारतेंदु की इस वैष्णव भावुकता ने उन्हें दयानंद के आर्यसमाजी खंडन-मंडनवाले बुद्धिवाद से दूर रखा था। भावुकता की यह प्रधानता भारतेंदु-मंडल के प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमधन, जगमोहन सिंह आदि अन्य सदस्यों में भी दिखाई पड़ती है।

निश्चय ही एक विशेष प्रकार की बौद्धिकता महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके मंडल के मैथिलीशरण गुप्त सदृश कवियों में अधिक है, जिसका दुःखद परिणाम 'इतिवृत्तात्मकता' है। लेकिन द्विवेदी मंडल समूचा हिंदी नवजागरण नहीं है और न उसकी मुख्य धारा है। श्रीधर पाठक से रामनरेश त्रिपाठी तक जो

तथाकथित स्वच्छंदवादी कवियों की धारा है तथा सरदार पूर्णसिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकुंद गुप्त–जैसे विदग्ध गद्यलेखकों की जो लंबी परंपरा है वह कोरी बौद्धिकता की कोटि में नहीं आती।

इसी प्रकार जिस रहस्यवाद को हिंदी नवजागरण पर बंगाल के प्रभाव के रूप में निरूपित किया जाता है वह भी एक तरह से समूचे भारतीय नवजागारण का अभिन्न अंग है। यह रहस्यवाद उस नववेदांत की देन है, जिसका एक रूप रवींद्रनाथ में विकसित हुआ तो दूसरा रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद में। हिंदी के प्रमुख छायावादी कवियों में कितनों ने रवींद्रनाथ से रहस्यवाद ग्रहण किया, इस विषय में संदेह भले ही हो पर इसमें संदेह की गुंजाइश कम ही है कि निराला के रहस्यवाद का आधार विवेकानंद का नववेदांत था और प्रसाद के रहस्यवाद का आधार शैवागम। यह सच है कि यह नववेदांत हिंदी में उसी तरह बंगाल से आया जैसे हिंदी नवजागरण में और भी बहुत–सी बातें बंगाल से आईं। किंतु इस नववेदांत के सहारे निराला और प्रसाद ने जिस प्रकार सामंत–विरोधी और साम्राज्य–विरोधी संघर्ष का साहित्य रचा वह रहस्यवाद–विरोधी बौद्धिकता द्वारा रचे हुए साहित्य से घटकर है, ऐसा कहने का साहस कम ही लोग करेंगे।

वास्तविकता यह है कि भावबोध और विचारबोध की दृष्टि से समूचा भारतीय नवजागरण एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है, जिसमें बौद्धिकता के साथ भावुकता है, ऐहिकता के साथ आमुष्मिकता भी है और यथार्थवाद के साथ ही रहस्यवाद के भी तत्त्व घुले–मिले हैं। यूरोप के 'एनलाइटेनमेंट' अथवा 'ज्ञानोदय' दौर के विचारकों से प्रेरणा लेने के बावजूद भारत का उन्नीसवीं शताब्दी का नवजागरण नितांत बुद्धिवादी न हो सका, क्योंकि स्वयं यूरोपीय 'ज्ञानोदय' भी इतना इकहरा न था। अंतर्विरोध इस नवजागरण की प्रक्रिया में भी थे और कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अनिवार्यतः नवजागरण की दुर्बलता नहीं बल्कि एक तरह से उसकी समृद्धि का सूचक है।

आज उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण के इस संश्लिष्ट रूप पर बल देने की आवश्यकता विशेष रूप से इसलिए आ पड़ी है कि इकहरे साँचे में ढालकर तरह–तरह से हस्तगत करने की कोशिश की जा रही है। नव–उपनिवेशवादी प्राच्यविद्याविद् इसे एकदम 'अंग्रेजी राज का सबसे मूल्यवान उपहार' बता रहे हैं तो आधुनिकतावादियों की दृष्टि में यह मुख्यतः आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का श्रीगणेश है, जिसमें विज्ञान, औद्योगीकरण, बुद्धिवाद, प्रगति, धर्मनिरपेक्षता आदि मूल्य प्रधान हैं। दूसरी ओर भिन्न पक्ष के विचारक इन्हीं बातों

के लिए इस नवजागरण को तिरस्कृत करने की कोशिश कर रहे हैं। अति वामपंथी दृष्टि में यह नवजागरण एक परजीवी और वर्ग-सहयोगी मध्य वर्ग कारनामा होने के कारण ऐतिहासिक 'धोखा' है तो उत्तर-आधुनिकतावादी विचारकों के लेखे 'छद्मचेतना' है-ऐसी 'छद्मचेतना' जो यूरोप की ऐतिहासिक चेतना के प्रभाव में देश को एक अमानुषिक केंद्रीकृत राजसत्ता की ओर ठेल रही है। तात्पर्य यह है कि आज की समस्त समस्याओं के लिए यदि कोई जिम्मेदार है तो उन्नीसवीं शताब्दी का नवजागरण। यदि आज के बुद्धिजीवियों में औपनिवेशिक मानसिकता है तो नवजागरण के फलस्वरूपय अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, अंधविश्वास आदि में वृद्धि हो रही है तो वह भी उसी के कारण। हिंदू-मुस्लिम-सिख सांप्रदायिकता के विष-बीज भी वहीं के हैं और भाषायी झगड़ों और क्षेत्रीय अलगावाद की जड़ें भी ढूँढ़कर उन्नीसवीं शताब्दी में बतायी जा रही हैं।

अंतत: ये तमाम बातें उन्नीसवीं शताब्दी के अंतर्गत अंग्रेजी उपनिवेशवाद और भारतीय सभ्यता के बीच चलनेवाले उस वस्तुगत संघर्ष की जटिलता और संश्लिष्टता की ओर संकेत करती हैं। इस विषम युद्ध में मुख्य प्रश्न स्वत्व रक्षा का था, जिसे बचाने की छटपटाहट में परंपरा के वे प्रेत भी जग गए जो आगे चलकर खतरनाक साबित हुएय फिर प्रगति की आकांक्षा से हड़बड़ी में पश्चिम से ऐसे भी उपकरण लिए गए, जिनके दूरगामी परिणामों की समझ न थी। आज उस रंगभूमि में उतरनेवाले पूर्व सूरियों पर राय देते समय अपने गरेबाँ में मुँह डालकर देख लेना भी जरूरी है। वैसे इस नवजागरण से भी अपनी-अपनी पसंद के मूल्य अथवा व्यक्ति चुनने के लिए हर कोई स्वतंत्र है, लेकिन शर्त यह है कि खंड को ही समग्र न कहने का आग्रह न किया जाए। न इतिहास कल्पवृक्ष है और न नवजागरण कामधेनु।

3

भारतेन्दु युग के साहित्यिक महत्त्व

आधुनिक हिंदी काव्य के प्रथम चरण को भारतेन्दु युग की संज्ञा प्रदान की गई है। यह नामकरण सुकवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के महिमा मण्डित व्यक्तित्त्व को ध्यान में रखकर किया गया। भारतेन्दु युग के पूर्व कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। अतिशय श्रृंगारिकता, अलंकार मोह, रीति निरुपण एवं चमत्कारप्रियता के कारण कविता जन-जीवन से कट गई थी। देशी रियासतों के संरक्षण में रहने वाले कविगण रीतीकाल के व्यामोह से न तो उबरना चाहते थे और न ही उबरने का प्रयास कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में भारतेन्दु जी का काव्य-क्षेत्र में पदार्पण वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य के लिये वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने काव्य क्षेत्र को आधुनिक विषयों से संपन्न किया और रीति की बँधी-बँधायी परिपाटी से कविता-सुन्दरी को मुक्त करके ताजी हवा में साँस लेने का सुअवसर प्रदान किया।

भारतेन्दु युग में परंपरागत धार्मिकता और भक्ति भावना को अपेक्षतया गौण स्थान प्राप्त हुआ, फिर भी इस काल के भक्ति काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं-निर्गुण भक्ति, वैष्णव भक्ति और स्वदेशानुराग-समन्वित ईश्वर-भक्ति। इस युग में हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं की भी प्रचुर परिणाम में रचना हुई।

काव्य-रूप की दृष्टि से भारतेन्दुयुगीन कवियों ने प्रधानत: मुक्तक काव्य की रचना की है। खड़ी बोली की कविताओं में व्यावहारिकता पर बल होने के फलस्वरुप ब्रजभाषा के कवि अन्य भाषाओं से शब्द चयन के विषय में क्रमश: अधिक उदार होते गए, अत: भोजपुरी, बुंदेलखंडी, अवधी आदि प्रांतीय भाषाओं के अतिरिक्त उर्दू और अंग्रेजी की प्रचलित शब्दावली को भी अपना लिया गया। दोहा, चौपाई, सोरठा, कुंडलिया, रोला, हरिगीतिका आदि मात्रिक छंद और कवित्त, सवैया, मंदाक्रांता, शिखरिणी, वंशस्थ, वसंततिलका आदि वर्णिक छंद कवि-समुदाय में विशेष प्रचलित रहे।

भारतेन्दु युग के कवियों की सबसे बड़ी साहित्यिक देन केवल यही मानी जा सकती है कि इन्होंने कविता को रीतिकालीन परिवेश से मुक्त करके समसामयिक जीवन से जोड़ दिया। भारतेन्दु आधुनिक काल के जनक थे और भारतेन्दु युग के अन्य कवि उनके प्रभामंडल में विचरण करने वाले ऐसे नक्षत्र थे, जिन्होंने अपनी खुली आँखों से जन-जीवन को देखकर उसे अपनी कविता का विषय बनाया। इस काल में कविता और जीवन के निकट का संबंध स्थापित हुआ और यही इस कविता का महत्व है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हिंदी लेखक अमरकांत और श्रीलाल शुक्ल जी को बधाईयाँ देते हुए श्रीलाल शुक्ल का जीवन एवं रचना का संक्षिप्त परिचय देना चाहता हुँ। श्रीलाल शुक्ल जी हिंदी साहित्य के प्रमुख साहित्यकार है। श्रीलाल शुक्ल का जन्म लखनऊ की मोहनलाल गंज बस्ती के पास अतरौली ग्राम में 31 दिसम्बर, 1925 में हुआ। उनके परिवार गरीबों का था, पर पिछली दो-तीन पीढ़ियों से पठन-पाठन की परम्परा थी। इनके पिता का नाम व्रजकिशोर शुक्ल है। उनके पिता गरीब थे,पर उनके संस्कार गरीबी के न थे। उनके पिता को संस्कृत, हिन्दी, उर्दू का कामचलाऊ ज्ञान था। गरीबी और अभावों की स्थिति श्रीलाल शुक्ल के बचपन से हैं। उनके पिता का पेशा न था। उनके जीवन कुछ समय तक खेती पर, बाद में श्रीलाल शुक्ल के बडे भाई पर निर्भर रहे। श्रीलाल शुक्ल की माँ उदारमन और उत्साही थी। प्रेमचंद और प्रसाद की कई पुस्तकें श्रीलाल शुक्ल आठवीं कक्षा में ही पढी थी। वे इतिहास साहित्य और शास्त्रीय संगीत के प्रेमी है। उनकी मिडिल स्कूल की शिक्षा मोहनलाल गंज, हाईस्कूल की शिक्षा कान्यकुब्ज वोकेशनल कॉलेज, लखनऊ और इन्टरमीडिएट की शिक्षा कान्यकुब्ज कॉलेज, कानपुर में हुई। इन्टरमीडिएट होने के बाद उन्होंने सन् 1945 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.ए में प्रवेश लिया। बी.ए के बाद लखनऊ

विश्वविद्यालय में एम.ए और कानून की शिक्षाओं में प्रवेश लिया। सन् 1948 में घर जाकर शादी कर ली, पत्नी का नाम गिरिजा थी। गिरिजा जी बहुत अच्छी श्रोता थी, साहित्य और संगीत की अच्छी जानकारी थी। उनके तीन पुत्रियाँ और एक पुत्र है। सन् 1949 में उत्तरप्रदेश सिविल में नियुक्ति पाया, बाद में आई.ए. एस में प्रोन्नत, सन् 1983 में सेवानिवृत्त। सरकारी नौकरी में आ जाने के बाद लेखन से वास्ता रहा।

श्रीलाल शुक्ल का व्यक्तित्त्व बड़ा पारदर्शी है। वे बहुत परिश्रमी, ईमानदार, शीघ्र निर्णय लेने वाले आदमी है। काम में उनका प्रैक्टिकल एप्रोच है। वे सबके प्रति समान आदरभाव रखते हैं। उनके गाँव के जो मित्र हैं, उनके साथ अवधी में बातें करने का अटूट आकर्षण है। अनेक साहित्य सम्मेलन में भी ये सभी शामिल होते हैं। व्यावहारिक होने के नाते उनके दोस्तों के साथ भी गहरी मित्रता बन गयी है। उनके रचनाओं के आधार पर समझते हैं कि श्रीलाल शुक्ल व्यावहारिक, साथ ही सहानुभूति भी है। श्रीलाल शुक्ल के बारे में लीलाधर जगूडी समझाते हैं कि "श्रीलाल शुक्ल के लिए अपना समय, अपना समाज और अपने लोग ही महत्वपूर्ण है। एक उपन्यासकार के रूप में वे आजादी के बाद के समाजशास्त्री और इतिहासकार है। वे तरह-तरह से आजादी के बाद के समाज की मूल्यहीनता और आधुनिकता के संकट के साथ-साथ राजनीति के हाथों पराजित होते समाज को इतिहास में प्रवेश दिलाते हैं"।

साहित्य के प्रति श्रीलाल शुक्ल जी की रूचि अनेक रचनाएँ लिखने में सफल हुई। हास्य, व्यंग्य उपन्यास, अपराध कथाएँ, अनेक कहानियाँ, व्यंग्य निबंध, टिप्पणियाँ, जीवनी, आलोचना, अनुवाद में सफलता पाई। इसके साथ "हिन्दी हास्य-व्यंग्य संकलन" का सम्पादन भी किये। उनके प्रसिद्ध यंग्य उपन्यास "राग दरबारी" का सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया। सन् 1969 में "राग दरबारी" पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। सन् 1979 में "मकान" पर मध्य प्रदेश साहित्य परिषद का देव पुरस्कार मिला। सन् 1988 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान व्दारा साहित्य भूषण सम्मान मिली। सन् 1994 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का अतिविशिष्ट लोहिया सम्मान मिली। सन् 1996 मध्य प्रदेश शासन व्दारा शरद जोशी सम्मान मिली। सन् 1997 में मध्य प्रदेश शासन व्दारा मैथिलीशरण गुप्त सम्मान भी मिली। श्रीलाल शुक्ल को भारत सरकार ने 2008 में पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया है। देश के सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 45वाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार से वरिष्ठ साहित्यकार श्री लाल शुक्ल को भारत

सरकार ने सितम्बर, 2011 में सम्मानित किया है। ऐसे महान साहित्यकार के बारे में शोध प्रबंध प्रस्तुतकर, पी.एच.डी उपाधि पाकर एक शोधार्थी के रूप में मेरा जन्म भी सार्थक हुई। इसलिए श्रीलाल शुक्ल जी को बधाईयाँ देते हुए आप सब को धन्यवाद।

रचनाएँ

उपन्यास

1. सूनी घाटी का सूरज, अज्ञातवास, रागदरबारी, आदमी का जहर, सीमाएँ टूटती हैं, मकान, पहला पड़ाव, ।
2. विश्रामपुर का सन्त, राग विराग।
3. कहानी संग्रह:
4. यह घर मेरा नहीं है,सुरक्षा तथा अन्य कहानियाँ।
5. इस उम्र में।
6. व्यंग्य संग्रह:
7 अंगद का पांव,यहाँ से वहाँ, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, उमरावनगर में कुछ दिन, कुछ जमीन पर कुछ हवा में, आओ बैठ लें कुछ देर।
8. आलोचना:
9. अज्ञेय: कुछ राग और कुछ रंग
10. जीवनी:
11. भगवती चरण वर्मा ऽ अमृतलाल नागर
12. बाल साहित्य:
13. बब्बर सिंह और उसके साथी।

4

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोए। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में प्रसिद्ध भारतेन्दु जी ने देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण का चित्रण को ही अपने साहित्य का लक्ष्य बनाया। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिंदी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। हिंदी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे, किन्तु नियमित रूप से खड़ीबोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। उन्होंने 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका', 'कविवचनसुधा' और 'बाला बोधिनी' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार, जागरूक

पत्रकार तथा ओजस्वी गद्यकार थे। इसके अलावा वे लेखक, कवि, संपादक, निबंधकार, एवं कुशल वक्ता भी थे। भारतेन्दु जी ने मात्र चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। उन्होंने मात्र और गुणवत्ता की दृष्टि से इतना लिखा और इतनी दिशाओं में काम किया कि उनका समूचा रचनाकर्म पथदर्शक बन गया।

जीवन परिचय

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितंबर, 1850 को काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता गोपालचंद्र एक अच्छे कवि थे और 'गिरधरदास' उपनाम से कविता लिखा करते थे। 1857 में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय उनकी आयु 7 वर्ष की रही होगी। ये दिन उनकी आँख खुलने के थे। भारतेन्दु का कृतित्त्व साक्ष्य है कि उनकी आँखें एक बार खुलीं तो बन्द नहीं हुईं। उनके पूर्वज अंग्रेज भक्त थे, उनकी ही कृपा से धनवान हुये थे। हरिश्चंद्र पाँच वर्ष के थे तो माता की मृत्यु और दस वर्ष के थे तो पिता की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार बचपन में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गये। विमाता ने खूब सताया। बचपन का सुख नहीं मिला। शिक्षा की व्यवस्था प्रथापालन के लिए होती रही। संवेदनशील व्यक्ति के नाते उनमें स्वतन्त्र रूप से देखने-सोचने-समझने की आदत का विकास होने लगा। पढ़ाई की विषय-वस्तु और पद्धति से उनका मन उखड़ता रहा। क्वींस कॉलेज, बनारस में प्रवेश लिया, तीन-चार वर्षों तक कॉलेज आते-जाते रहे, पर यहाँ से मन बार-बार भागता रहा। स्मरण शक्ति तीव्र थी, ग्रहण क्षमता अद्‌भुत। इसलिए परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते रहे। बनारस में उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे और प्रसिद्ध लेखक-राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' थे, भारतेन्दु शिष्य भाव से उनके यहाँ जाते। उन्हीं से अंग्रेजी सीखी। भारतेन्दु ने स्वाध्याय से संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू भाषाएँ सीख लीं।

उनको काव्य-प्रतिभा अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी। उन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में ही निम्नलिखित दोहा बनाकर अपने पिता को सुनाया और सुकवि होने का आशीर्वाद प्राप्त किया-

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान।

धन के अत्यधिक व्यय से भारतेंदु जी ऋणी बन गए और दुश्चिंताओं के कारण उनका शरीर शिथिल होता गया। परिणाम स्वरूप 1885 में अल्पायु में ही मृत्यु ने उन्हें ग्रस लिया।

साहित्यिक परिचय

भारतेन्दु के वृहत साहित्यिक योगदान के कारण ही 1857 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, भारतेन्दु अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर, द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते थे, तो दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। प्राचीन और नवीन का सुंदर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।

पंद्रह वर्ष की अवस्था से ही भारतेंदु ने साहित्य सेवा प्रारंभ कर दी थी। अठारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका निकाली, जिसमें उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों की रचनाएं छपती थीं। वे बीस वर्ष की अवस्था में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने 1868 में 'कविवचनसुधा', 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 1874 में स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिकाएँ निकालीं। साथ ही उनके समांतर साहित्यिक संस्थाएँ भी खड़ी कीं। वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की थी। राजभक्ति प्रकट करते हुए भी, अपनी देशभक्ति की भावना के कारण उन्हें अंग्रेजी हुकूमत का कोपभाजन बनना पड़ा। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर काशी के विद्वानों ने 1880 में उन्हें 'भारतेंदु' (भारत का चंद्रमा) की उपाधि प्रदान की। हिन्दी साहित्य को भारतेन्दु की देन भाषा तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में है। भाषा के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी बोली के उस रूप को प्रतिष्ठित किया, जो उर्दू से भिन्न है और हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का रस लेकर संवर्धित हुआ है। इसी भाषा में उन्होंने अपने सम्पूर्ण गद्य साहित्य की रचना की। साहित्य सेवा के साथ-साथ भारतेंदु जी की समाज-सेवा भी चलती रही। उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना में अपना योग दिया। दीन-दुखियों, साहित्यिकों तथा मित्रों की सहायता करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे।

प्रमुख कृतियाँ

मौलिक नाटक

1. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873ई., प्रहसन)
2. सत्य हरिश्चन्द्र (1875,नाटक)।
3. श्री चंद्रावली (1876, नाटिका)।
4. विषस्य विषमौषधम् (1876, भाण)।
5. भारत दुर्दशा (1880, ब्रजरत्नदास के अनुसार 1876, नाट्य रासक),
6. नीलदेवी (1881, ऐतिहासिक गीति रूपक)।
7. अंधेर नगरी (1881, प्रहसन)।
8. प्रेमजोगिनी (1875, प्रथम अंक में चार गर्भांक, नाटिका)।
9. सती प्रताप (1883,अपूर्ण, केवल चार दृश्य, गीतिरूपक, बाबू राधाकृष्णदास ने पूर्ण किया)।

अनूदित नाट्य रचनाएँ

1. विद्यासुन्दर (1868,नाटक, संस्कृत 'चौरपंचाशिका' के यतीन्द्रमोहन ठाकुर कृत बँगला संस्करण का हिंदी अनुवाद)।
2. पाखण्ड विडम्बन (कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक के तृतीय अंक का अनुवाद)।
3. धनंजय विजय (1873, व्यायोग, कांचन कवि कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद)।
4. कर्पूर मंजरी (1875, सट्टक, राजशेखर कवि कृत प्राकृत नाटक का अनुवाद)।
5. भारत जननी (1877,नाट्यगीत, बंगला की 'भारतमाता' के हिंदी अनुवाद पर आधारित)।
6. मुद्राराक्षस (1878, विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का अनुवाद)।
7. दुर्लभ बंधु (1880, शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद)।

निबंध संग्रह

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली (तृतीय खंड) में संकलित।
2. 'नाटक' शीर्षक प्रसिद्ध निबंध(1883)।

प्रमुख निबंध

नाटक

1. कालचक्र (जर्नल)
2. लेवी प्राण लेवी
3. भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?
4. कश्मीर कुसुम
5. जातीय संगीत
6. संगीत सार
7. हिंदी भाषा
8. स्वर्ग में विचार सभा

काव्यकृतियां

1. भक्तसर्वस्व (1870)
2. प्रेममालिका (1871),
3. प्रेम माधुरी (1875),
4. प्रेम-तरंग (1877),
5. उत्तरार्द्ध भक्तमाल (1876-77),
6. प्रेम-प्रलाप (1877),
7. होली (1879),
8. मधु मुकुल (1881),
9. राग-संग्रह (1880),
10. वर्षा-विनोद (1880),
11. विनय प्रेम पचासा (1881),
12. फूलों का गुच्छा- खड़ीबोली काव्य (1882)
13. प्रेम फुलवारी (1883)
14. कृष्णचरित्र (1883)
15. दानलीला
16. तन्मय लीला
17. नये जमाने की मुकरी
18. सुमनांजलि

19. बन्दर सभा (हास्य व्यंग)
20. बकरी विलाप (हास्य व्यंग)

कहानी

1. अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न
2. यात्र वृत्तान्त
3. सरयूपार की यात्रा
4. लखनऊ
5. आत्मकथा
6. एक कहानी- कुछ आपबीती, कुछ जगबीती
7. उपन्यास
8. पूर्णप्रकाश
9. चन्द्रप्रभा
10. वर्ण्य विषय

भारतेंदु जी की यह विशेषता रही कि जहां उन्होंने ईश्वर भक्ति आदि प्राचीन विषयों पर कविता लिखी वहां उन्होंने समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम आदि नवीन विषयों को भी अपनाया। भारतेंदु की रचनाओं में अंग्रेजी शासन का विरोध, स्वतंत्रता के लिए उद्दाम आकांक्षा और जातीय भावबोध की झलक मिलती है। सामन्ती जकड़न में फंसे समाज में आधुनिक चेतना के प्रसार के लिए लोगों को संगठित करने का प्रयास करना उस जमाने में एक नई ही बात थी। उनके साहित्य और नवीन विचारों ने उस समय के तमाम साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को झकझोरा और उनके इर्द-गिर्द राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत लेखकों का एक ऐसा समूह बन गया, जिसे भारतेन्दु मंडल के नाम से जाना जाता है।

विषय के अनुसार उनकी कविताश्रृंगार-प्रधान, भक्ति-प्रधान, सामाजिक समस्या प्रधान तथा राष्ट्र प्रेम प्रधान है।

श्रृंगार रस प्रधान भारतेंदु जी ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का सुंदर चित्रण किया है। वियोगावस्था का एक चित्र देखिए-

देख्यो एक बारहूं न नैन भरि तोहि याते
जौन जौन लोक जैहें तही पछतायगी।
बिना प्रान प्यारे भए दरसे तिहारे हाय,
देखि लीजो आंखें ये खुली ही रह जायगी।

भक्ति प्रधान भारतेंदु जी कृष्ण के भक्त थे और पुष्टि मार्ग के मानने वाले थे। उनको कविता में सच्ची भक्ति भावना के दर्शन होते हैं। वे कामना करते हैं–

बोल्यों करै नूपुर स्त्रीननि के निकट सदा
पद तल मांहि मन मेरी बिहरयौ करै।
बाज्यौ करै बंसी धुनि पूरि रोम-रोम,
मुख मन मुस्कानि मंद मनही हास्यौ करै।

सामाजिक समस्या प्रधान भारतेंदु जी ने अपने काव्य में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा–

चूरन अमले जो सब खाते,
दूनी रिश्वत तुरत पचाते।
चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।

राष्ट्र-प्रेम प्रधान भारतेंदु जी के काव्य में राष्ट्र-प्रेम भी भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारत के प्राचीन गौरव की झांकी वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं–

भारत के भुज बल जग रच्छित,
भारत विद्या लहि जग सिच्छित।
भारत तेज जगत विस्तारा,
भारत भय कंपिथ संसारा।

प्राकृतिक चित्रण प्रकृति चित्रण में भारतेंदु जी को अधिक सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे मानव-प्रकृति के शिल्पी थे, बाह्य प्रकृति में उनका मर्मपूर्ण रूपेण नहीं रम पाया। अत: उनके अधिकांश प्रकृति चित्रण में मानव हृदय को आकर्षित करने की शक्ति का अभाव है। चंद्रावली नाटिका के यमुना-वर्णन में अवश्य सजीवता है तथा उसकी उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं नवीनता लिए हुए हैं–

कै पिय पद उपमान जान यह निज उर धारत,
कै मुख कर बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत।
कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झांई,
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहु आई।

प्रकृति वर्णन का यह उदहारण देखिये, जिसमें युमना की शोभा कितनी दर्शनीय है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहूँ सुहाये।

भाषा

भारतेन्दु के समय में राजकाज और संभ्रांत वर्ग की भाषा फारसी थी। वहीं, अंग्रेजी का वर्चस्व भी बढ़ता जा रहा था। साहित्य में ब्रजभाषा का बोलबाला था। फारसी के प्रभाव वाली उर्दू भी चलन में आ गई थी। ऐसे समय में भारतेन्दु ने लोकभाषाओं और फारसी से मुक्त उर्दू के आधार पर खड़ी बोली का विकास किया। आज जो हिंदी हम लिखते-बोलते हैं, वह भारतेंदु की ही देन है। यही कारण है कि उन्हें आधुनिक हिंदी का जनक माना जाता है। केवल भाषा ही नहीं, साहित्य में उन्होंने नवीन आधुनिक चेतना का समावेश किया और साहित्य को 'जन' से जोड़ा।

भारतेन्दु की रचनाधर्मिता में दोहरापन दिखता है। कविता जहां वे ब्रज भाषा में लिखते रहे, वहीं उन्होंने बाकी विधाओं में सफल हाथ खड़ी बोली में आजमाया। सही मायने में कहें तो भारतेंदु आधुनिक खड़ी बोली गद्य के उन्नायक हैं।

भारतेन्दु जी के काव्य की भाषा प्रधानत: ब्रज भाषा है। उन्होंने ब्रज भाषा के अप्रचलित शब्दों को छोड़ कर उसके परिकृष्ट रूप को अपनाया। उनकी भाषा में जहां-तहां उर्दू और अंग्रेजी के प्रचलित शब्द भी जाते हैं।

उनके गद्य की भाषा सरल और व्यावंहारिक है। मुहावरों का प्रयोग कुशलतापूर्वक हुआ है।

शैली

भारतेंदु जी के काव्य में निम्नलिखित शैलियों के दर्शन होते हैं -

1. रीति कालीन रसपूर्ण अलंकार शैली-श्रृंगारिक कविताओं में,
2. भावात्मक शैली-भक्ति के पदों में,
3. व्यंग्यात्मक शैली-समाज-सुधार की रचनाओं में,
4. उद्‌बोधन शैली-देश-प्रेम की कविताओं में।

रस

भारतेंदु जी ने लगभग सभी रसों में कविता की है।श्रृंगार और शान्त रसों की प्रधानता है। श्रृंगार के दोनों पक्षों का भारतेंदु जी ने सुंदर वर्णन किया है। उनके काव्य में हास्य रस की भी उत्कृष्ट योजना मिलती है।

छन्द

भारतेंदु जी ने अपने समय में प्रचलित प्रायः सभी छंदों को अपनाया है। उन्होंने केवल हिंदी के ही नहीं उर्दू, संस्कृत, बंगला भाषा के छंदों को भी स्थान दिया है। उनके काव्य में संस्कृत के वसंत तिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, शालिनी आदि हिंदी के चौपाई, छप्पय, रोला, सोरठा, कुंडलियाँ, कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि, बंगला के पयार तथा उर्दू के रेखता, गजल छंदों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त भारतेंदु जी कजली, ठुमरी, लावनी, मल्हार, चैती आदि लोक छंदों को भी व्यवहार में लाए हैं।

अलंकार

अलंकारों का प्रयोग भारतेंदु जी के काव्य में सहज रूप से हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और संदेह अलंकारों के प्रति भारतेंदु जी की अधिक रुचि है। शब्दालंकारों को भी स्थान मिला है। निम्न पंक्तियों में उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार की योजना स्पष्ट दिखाई देती है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए।।

महत्त्वपूर्ण कार्य

नवीन साहित्यिक चेतना और स्वभाषा प्रेम का सूत्रपात

आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु जी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेंदु बहूमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि सभी क्षेत्रों में उनकी देन अपूर्व है। भारतेंदु जी हिंदी में नव जागरण का संदेश लेकर अवतरित हुए। उन्होंने हिंदी के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया। भाव, भाषा और शैली में नवीनता तथा मौलिकता का समावेश करके उन्हें आधुनिक काल के अनुरूप बनाया। आधुनिक हिंदी के वे जन्मदाता माने जाते हैं। हिंदी के नाटकों का सूत्रपात भी उन्हीं के द्वारा हुआ।

भारतेंदु जी अपने समय के साहित्यिक नेता थे। उनसे कितने ही प्रतिभाशाली लेखकों को जन्म मिला। मातृ-भाषा की सेवा में उन्होंने अपना जीवन ही नहीं संपूर्ण धन भी अर्पित कर दिया। हिंदी भाषा की उन्नति उनका मूलमंत्र था –

निज भाषा उन्नति लहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार॥

1882 में शिक्षा आयोग (हन्टर कमीशन) के समक्ष अपनी गवाही में हिन्दी को न्यायालयों की भाषा बनाने की महत्ता पर उन्होने कहा-

यदि हिन्दी अदालती भाषा हो जाए, तो सम्मन पढ़वाने, के लिए दो-चार आने कौन देगा, और साधारण-सी अर्जी लिखवाने के लिए कोई रुपया-आठ आने क्यों देगा। तब पढ़ने वालों को यह अवसर कहाँ मिलेगा कि गवाही के सम्मन को गिरफ्तारी का वारंट बता दें। सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही (भारत) ऐसा देश है, जहाँ अदालती भाषा न तो शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की। यदि आप दो सार्वजनिक नोटिस, एक उर्दू में, तथा एक हिंदी में, लिखकर भेज दें तो आपको आसानी से मालूम हो जाएगा कि प्रत्येक नोटिस को समझने वाले लोगों का अनुपात क्या है, जो सम्मन जिलाधीशों द्वारा जारी किये जाते हैं, उनमें हिंदी का प्रयोग होने से रैयत और जमींदार को हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त हुई है। साहूकार और व्यापारी अपना हिसाब-किताब हिंदी में रखते हैं। स्त्रियाँ हिंदी लिपि का प्रयोग करती हैं। पटवारी के कागजात हिंदी में लिखे जाते हैं और ग्रामों के अधिकतर स्कूल हिंदी में शिक्षा देते हैं।

इसी सन्दर्भ में 1868 ई में 'उर्दू का स्यापा' नाअम से उन्होने एक व्यंग्य कविता लिखी-

है है उर्दू हाय-हाय। कहाँ सिधारी हाय-हाय।
मेरी प्यारी हाय-हाय। मुंशी मुल्ला हाय-हाय।
बल्ला बिल्ला हाय-हाय। रोये पीटें हाय-हाय।
टाँग घसीटैं हाय-हाय। सब छिन सोचौं हाय-हाय।
डाढ़ी नोचौं हाय-हाय। दुनिया उल्टी हाय-हाय।
रोजी बिल्टी हाय-हाय। सब मुखतारी हाय-हाय।
किसने मारी हाय-हाय। खबर नवीसी हाय-हाय।
दाँत पीसी हाय-हाय। एडिटर पोसी हाय-हाय।
बात फरोशी हाय-हाय। वह लस्सानी हाय-हाय।
चरब-जुबानी हाय-हाय। शोख बयानि हाय-हाय।
फिर नहीं आनी हाय-हाय।

अपनी इन्हीं कार्यों के कारण भारतेन्दु हिन्दी साहित्याकाश के एक दैदीप्यमान नक्षत्र बन गए और उनका युग भारतेन्दु युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हरिश्चंद्र चंद्रिका, कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र मैग्जीन, स्त्री बाला बोधिनी जैसे प्रकाशन उनके विचारशील और प्रगतिशील सम्पादकीय दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।

साम्राज्य-विरोधी चेतना तथा स्वदेश प्रेम का विकास

भारतेन्दु का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि उन्होने हिन्दी साहित्य को, और उसके साथ समाज को साम्राज्य-विरोधी दिशा में बढ़ने की प्रेरणा दी। 1870 में जब कविवचनसुधा में उन्होने लॉर्ड मेयो को लक्ष्य करके 'लेवी प्राण लेवी' नामक लेख लिखा तब से हिन्दी साहित्य में एक नयी साम्राज्य-विरोधी चेतना का प्रसार आरम्भ हुआ। 6 जुलाई 1874 को कविवचनसुधा में लिखा कि जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वतन्त्र हुआ, उसी प्रकार भारत भी स्वतन्त्रता लाभ कर सकता है। उन्होंने तदीय समाज की स्थापना की, जिसके सदस्य स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञा करते थे। भारतेन्दु ने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील करते हुए स्वदेशी का जो प्रतिज्ञा पत्र 23 मार्च, 1874 के 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित किया, वह समूचे हिंदी समाज का प्रतिज्ञा पत्र बन गया। उसमें भारतेंदु ने कहा था।

हम लोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लायेंगे, पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के बाद में अवश्य उद्योग करेंगे।

सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ही साहित्य में जन भावनाओं और आकांक्षाओं को स्वर दिया था। पहली बार साहित्य में 'जन' का समावेश भारतेन्दु ने ही किया। उनके पहले काव्य में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ही बोलबाला था। साहित्य पतनशील सामन्ती संस्कृति का पोषक बन गया था, पर भारतेन्दु ने

साहित्य को जनता की गरीबी, पराधीनता, विदेशी शासकों के अमानवीय शोषण के चित्रण और उसके विरोध का माध्यम बना दिया। अपने नाटकों, कवित्त, मुकरियों और प्रहसनों के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजी राज पर कटाक्ष और प्रहार किए, जिसके चलते उन्हें अंग्रेजों का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

भारतेंदु अंग्रेजों के शोषण तंत्र को भली-भांति समझते थे। अपनी पत्रिका कविवचनसुधा में उन्होंने लिखा था–

जब अंग्रेज विलायत से आते हैं, प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं, तब कुबेर बनकर जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।

यही नहीं, 20वीं सदी की शुरुआत में दादाभाई नौरोजी ने धन के अपवहन यानी ड्रेन ऑफ वेल्थ के जिस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया था, भारतेन्दु ने बहुत पहले ही शोषण के इस रूप को समझ लिया था। उन्होंने लिखा था–

अंगरेजी राज सुखसाज सजे अति भारी, पर सब धन विदेश चलि जात ये ख्वारी।

अंग्रेज भारत का धन अपने यहां लेकर चले जाते हैं और यही देश की जनता की गरीबी और कष्टों का मूल कारण है, इस सच्चाई को भारतेंदु ने समझ लिया था। कविवचनसुधा में उन्होंने जनता का आह्वान किया था–

भाइयो! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ। देखो भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे वह उपाय करो।"

भारत की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्न

भारतेन्दु की वैश्विक चेतना भी अत्यन्त प्रखर थी। उन्हें अच्छी तरह पता था कि विश्व के कौन से देश कैसे और कितनी उन्नति कर रहे हैं। इसलिए उन्होने सन् 1884 में बलिया के दादरी मेले में 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' पर अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया था। यह लेख उनकी अत्यन्त प्रगतिशील सोच का परिचायक भी है। इसमें उन्होंने लोगों से कुरीतियों और अंधविश्वासों को त्यागकर अच्छी-से-अच्छी शिक्षा प्राप्त करने, उद्योग-धंधों को विकसित करने, सहयोग एवं एकता पर बल देने तथा सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर होने का आह्वान किया था। ददरी जैसे धार्मिक और लोक मेले के साहित्यिक मंच से भारतेंदु का यह उद्‌बोधन अगर देखा जाए तो आधुनिक भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चिंतन का प्रस्थानबिंदु है। भाषण का एक छोटा सा अंश देखिए–

हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जबकि इनके पुरखों के पास कोई भी सामान नहीं था, तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्टी की कुटियों में बैठ करके बाँस की नालियों से जो ताराग्रह आदि बेध करके उनकी गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की विलायत में जो दूरबीन बनी है, उनसे उन ग्रहों को बेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंग्रेजी विद्या के और जनता की उन्नति से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं, तब हम लोग निरी चुंगी के कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन अंग्रेज फ्रांसीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है कि पाला हमी पहले छू लें। उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े-खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं। इनको औरों को जाने दीजिए, जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देख करके भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा हैं कि जो पीछे रह जायेगा फिर कोटि उपाय किये भी आगे न बढ़ सकेगा। इस लूट में इस बरसात में भी जिसके सिर पर कम्बख्ती का छाता और आँखों में मूर्खता की पट्टी बँधी रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए।

विचारों की स्पष्टता और उसे विनोदप्रियता के साथ किस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है, इसका यह निबन्ध बेजोड़ उदाहरण है। देखिए, किस तरह भारत की चिंता इस निबन्ध में भारतेंदु व्यक्त करते हैं,

बहुत लोग यह कहैंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करैं? तुम्हरा पेट भरा है तुमको दून की सूझती है। यह कहना उनकी बहुत भूल है। इंगलैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के कांटों को साफ किया।

वास्तव में उनका यह लेख भारत दुर्दशा नामक उनके नाटक का एक तरह से वैचारिक विस्तार है। भारत दुर्दशा में वे कहते हैं,

रोअहुं सब मिलिकै आवहुं भारत भाई।
हा, हा ! भारत दुर्दशा देखी न जाई॥

भारतेन्दु अच्छी तरह समझ चुके थे कि 'अंग्रेजी शासन भारतीयों के लाभ के लिए है' यह पूर्णतः खोखला दावा था और दुष्प्रचार था। अँग्रेज किस तरह भारत की संपदा लूट रहे थे, इसका संकेत भारतेन्दु ने 'कविवचनसुधा' के 7 मार्च, 1874 के अंक में अपनी टिप्पणी में दिया।

सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है, उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।

भारतेन्दु स्त्री-पुरुष की समानता के इतने बड़े पैरोकार थे कि 'कविवचनसुधा' के 3 नवंबर, 1873 के अंक में उन्होंने लिखा,

यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी, क्योंकि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।

प्रसिद्ध रचनाएँ-कविताएँ भारतेंदु हरिश्चंद्र

1. गंगा-वर्णन

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति।।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इम आवत।
जिमि नर-गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत।।
सुभग स्वर्ग-सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत।।
श्रीहरि-पद-नख-चंद्रकांत-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमण्डल मण्डन भव खण्डन सुर सरबस।।
शिवसिर-मालति-माल भगीरथ नृपति-पुण्य-फल।
एरावत-गत गिरिपति-हिम-नग-कण्ठहार कल।।
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन।।

2. यमुना-वर्णन

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहु सुहाये।।

किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।।
मनु आतप वारन तीर कौं, सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत1।।
तिन पै जेहि छिन चन्द जोति रक निसि आवति।
जल मैं मिलिकै नभ अवनी लौं तानि तनावति।।
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुदात देखि सुन्दर सो सोभा।।
सो को कबि जो छबि कहि, सकै ता जमुन नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत,छबि इक-सी नभ तीर की -2-
परत चन्र्द प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोइ मन भायो।।
मनु हरि दरसन हेत चन्र्द जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो ।।
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है -3 -
कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत।।
मनु ससि भरि अनुराग जामुन जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरनि करत कलोलैं।।
कै बालगुड़ी नभ में उड़ी, सोहत इत उत धावती।
कई अवगाहत डोलात कोऊ ब्रजरमनी जल आवती।।4।।
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटी जात जामुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अबिकल।।
कै कालिन्दी नीर तरंग जितौ उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत।।
कै बहुत रजत चकई चालत कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत।।5।।
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ काराणडव उडत कहूँ जल कुक्कुट धावत।।
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।

सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रम्रावलि गावत।।
तट पर नाचत मोर बहु रोर बिधित पच्छी करत।
जल पान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब धरत।।6।।

3. ऊधो जो अनेक मन होते

तो इक श्याम-सुन्दर को देते, इक लै जोग संजोते।
एक सों सब गृह कारज करते, एक सों धरते ध्यान।
एक सों श्याम रंग रंगते, तजि लोक लाज कुल कान।
को जप करै जोग को साधै, को पुनि मूँदे नैन।
हिए एक रस श्याम मनोहर, मोहन कोटिक मैन।
ह्याँ तो हुतो एक ही मन, सो हरि लै गये चुराई।
'हरिचंद' कौउ और खोजि कै, जोग सिखावहु जाई।।

4. परदे में कैद औरत की गुहार

लिखाय नाहीं देत्यो पढ़ाय नाहीं देत्यो।
सैयाँ फिरंगिन बनाय नाहीं देत्यो।।
लहँगा दुपट्टा नीको न लागै।
मेमन का गाउन मँगाय नाहीं देत्यो।
वै गोरिन हम रंग सँवलिया।
नदिया प बँगला छवाय नाहीं देत्यो।।
सरसों का उबटन हम ना लगइबे।
साबुन से देहियाँ मलाय नाहीं देत्यो।।
डोली मियाना प कब लग डोलौं।
घोड़वा प काठी कसाय नाहीं देत्यो।।
कब लग बैठीं काढ़े घुँघटवा।
मेला तमासा जाये नाहीं देत्यो।।
लीक पुरानी कब लग पीटों।
नई रीत-रसम चलाय नाहीं देत्यो।।
गोबर से ना लीपब-पोतब।
चूना से भितिया पोताय नाहीं देत्यों।
खुसलिया छदमी ननकू हन काँ।
विलायत काँ काहे पठाय नाहीं देत्यो।।

धन दौलत के कारन बलमा।
समुंदर में बजरा छोड़ाय नाहीं देत्यो।।
बहुत दिनाँ लग खटिया तोड़िन।
हिंदुन काँ काहे जगाय नाहीं देत्यो।।
दरस बिना जिय तरसत हमरा।
कैसर का काहे देखाय नाहीं देत्यो।।
'हिज्रप्रिया' तोरे पैयाँ परत है।
'पंचा' में एहका छपाय नाहीं देत्यो।।

5. बँसुरिआ मेरे बैर परी

छिनहूँ रहन देति नहिं घर में, मेरी बुद्धि हरी।
बेनु-बंस की यह प्रभुताई बिधि हर सुमति छरी।
'हरीचंद' मोहन बस कीनो, बिरहिन ताप करी।।

6. सखी री ठाढ़े नंदकिसोर

सखी री ठाढ़े नंदकिसोर।
वृंदाबन में मेहा बरसत, निसि बीती भयो भोर।
नील बसन हरि-तन राजत हैं, पीत स्वामिनी मोर।
'हरीचंद' बलि-बलि ब्रज-नारी, सब ब्रजजन-मनचोर।।

7. हरि-सिर बाँकी बिराजै

बाँको लाल जमुन तट ठाढ़ो बाँकी मुरली बाजै।
बाँकी चपला चमकि रही नभ बाँको बादल गाजै।
'हरीचंद' राधा जू की छबि लखि रति मति गति भाजै।।

8. धन्य ये मुनि वृन्दाबन बासी

दरसन हेतु बिहंगम ह्वै रहे, मूरति मधुर उपासी।
नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै, मिलि बैठत हैं आई।
नैनन मूँदि त्यागि कोलाहल, सुनहिं बेनु धुनि माई।
प्राननाथ के मुख की बानी, करहिं अमृत रस-पान।
'हरिचंद' हमको सौउ दुरलभ, यह बिधि गति की आन।

9. इन दुखियन को न चैन सपनेहुं मिल्यौ

तासों सदा व्याकुल बिकट अकुलायँगी।
प्यारे 'हरिचंद जूं' की बीती जानि औध, प्रान
चाहते चले पै ये तो संग ना समायँगी।
देख्यो एक बारहू न नैन भरि तोहिं यातैं,
तौन जौन लोक जैहैं तहाँ पछतायँगी।
बिना प्रान प्यारे भए दरस तुम्हारे, हाय!
मरेहू पै आंखे ये खुली ही रहि जायँगी।

10. बन्दर सभा

आना राजा बन्दर का बीच सभा के,
सभा में दोस्तो बन्दर की आमद आमद है।
गधे औ फूलों के अफसर जी आमद आमद है।
मरे जो घोड़े तो गदहा य बादशाह बना।
उसी मसीह के पैकर की आमद आमद है।
व मोटा तन व थुँदला थुँदला मू व कुच्ची आँख
व मोटे ओठ मुछन्दर की आमद आमद है।।
हैं खर्च खर्च तो आमद नहीं खर-मुहरे की
उसी बिचारे नए खर की आमद आमद है।।1।।
बोले जवानी राजा बन्दर के बीच अहवाल अपने के,
पाजी हूँ मं कौम का बन्दर मेरा नाम।
बिन फुजूल कूदे फिरे मुझे नहीं आराम।।
सुनो रे मेरे देव रे दिल को नहीं करार।
जल्दी मेरे वास्ते सभा करो तैयार।।
लाओ जहाँ को मेरे जल्दी जाकर ह्याँ।
सिर मूड़ैं गारत करैं मुजरा करैं यहाँ।।2।।
आना शुतुरमुर्ग परी का बीच सभा में,
आज महफिल में शुतुरमुर्ग परी आती है।
गोया गहमिल से व लैली उतरी आती है।।
तेल और पानी से पट्टी है सँवारी सिर पर।
मुँह पै मांझा दिये लल्लादो जरी आती है।।

झूठे पट्ठे की है मुबाफ पड़ी चोटी में।
देखते ही जिसे आंखों में तरी आती है।।
पान भी खाया है मिस्सी भी जमाई हैगी।
हाथ में पायँचा लेकर निखरी आती है।।
मार सकते हैं परिन्दे भी नहीं पर जिस तक।
चिड़िया-वाले के यहाँ अब व परी आती है।।
जाते ही लूट लूँ क्या चीज खसोटूँ क्या शै।
बस इसी फिक्र में यह सोच भरी आती है।।3।।
गजल जवानी शुतुरमुर्ग परी हसन हाल अपने के,
गाती हूँ मैं औ नाच सदा काम है मेरा।
ऐ लोगो शुतुरमुर्ग परी नाम है मेरा।।
फन्दे से मेरे कोई निकले नहीं पाता।
इस गुलशने आलम में बिछा दाम है मेरा।।
दो चार टके ही पै कभी रात गँवा दूँ।
कारूँ का खजाना कभी इनआम है मेरा।।
पहले जो मिले कोई तो जी उसका लुभाना।
बस कार यही तो सहरो शाम है मेरा।।
शुरफा व रुजला एक हैं दरबार में मेरे।
कुछ सास नहीं फैज तो इक आम है मेरा।।
बन जाएँ जुगत् तब तौ उन्हें मूड़ हा लेना।
खली हों तो कर देना धता काम है मेरा।।
जर मजहबो मिल्लत मेरा बन्दी हूँ मैं जर की।
जर ही मेरा अल्लाह है जर राम है मेरा।।4।।
(छन्द जबानी शुतुरमुर्ग परी)
राजा बन्दर देस मैं रहें इलाही शाद।
जो मुझ सी नाचीज को किया सभा में याद।।
किया सभा में याद मुझे राजा ने आज।
दौलत माल खजाने की मैं हूँ मुँहताज।।
रूपया मिलना चाहिये तख्त न मुझको ताज।
जग में बात उस्ताद की बनी रहे महराज।।5।।
ठुमरी जबानी शुतुरमुर्ग परी के,

आई हूँ मैं सभा में छोड़ के घर।
लेना है मुझे इनआम में जर।।
दुनिया में है, जो कुछ सब जर है।
बिन जर के आदमी बन्दर है।।
बन्दर जर हो तो इन्दर है।
जर ही के लिये कसबो हुनर है।।6।।
गजल शुतुरमुर्ग परी की बहार के मौसिम में,
आमद से बसंतों के है गुलजार बसंती।
है फर्श बसंती दरो-दीवार बसंती।।
आँखों में हिमाकत का कँवल जब से खिला है।
आते हैं नजर कूचओ बाजार बसंती।।
अफयूँ मदक चरस के व चंडू के बदौलत।
यारों के सदा रहते हैं रुखसार बसंती।।
दे जाम मये गुल के मये जाफरान के।
दो चार गुलाबी हां तो दो चार बसंती।।
तहवील जो खाली हो तो कुछ कर्ज मँगा लो।
जोड़ा हो परी जान का तैयार बसंती।।7।।
होली जबानी शुतुरमुर्ग परी के,
पा लागों कर जोरी भली कीनी तुम होरी।
फाग खेलि बहुरंग उड़ायो ओर धूर भरि झोरी।।
धूँधर करो भली हिलि मिलि कै अधाधुंध मचोरी।
न सूझत कहु चहुँ ओरी।
बने दीवारी के बबुआ पर लाइ भली विधि होरी।
लगी सलोनो हाथ चरहु अब दसमी चैन करो री।।
सबै तेहवार भयो री।।8।।

11. दशरथ विलाप

कहाँ हौ ऐ हमारे राम प्यारे।
किधर तुम छोड़कर मुझको सिधारे।।
बुढ़ापे में ये दु:ख भी देखना था।
इसी के देखने को मैं बचा था।।

छिपाई है कहाँ सुन्दर वो मूरत।
दिखा दो साँवली-सी मुझको सूरत।।
छिपे हो कौन-से परदे में बेटा।
निकल आवो कि अब मरता हु बुड्ढा।।
बुढ़ापे पर दया जो मेरे करते।
तो बन की ओर क्यों तुम पर धरते।।
किधर वह बन है जिसमें राम प्यारा।
अजुध्या छोड़कर सूना सिधारा।।
गई संग में जनक की जो लली है
इसी में मुझको और बेकली है।।
कहेंगे क्या जनक यह हाल सुनकर।
कहाँ सीता कहाँ वह बन भयंकर।।
गया लछमन भी उसके साथ-ही-साथ।
तड़पता रह गया मैं मलते ही हाथ।।
मेरी आँखों की पुतली कहाँ है।
बुढ़ापे की मेरी लकड़ी कहाँ है।।
कहाँ ढूँढ़ीं मुझे कोई बता दो।
मेरे बच्चो को बस मुझसे मिला दो।।
लगी है आग छाती में हमारे।
बुझाओ कोई उनका हाल कह के।।
मुझे सूना दिखाता है जमाना।
कहीं भी अब नहीं मेरा ठिकाना।।
अँधेरा हो गया घर हाय मेरा।
हुआ क्या मेरे हाथों का खिलौना।।
मेरा धन लूटकर के कौन भागा।
भरे घर को मेरे किसने उजाड़ा।।
हमारा बोलता तोता कहाँ है।
अरे वह राम-सा बेटा कहाँ है।।
कमर टूटी, न बस अब उठ सकेंगे।
अरे बिन राम के रो-रो मरेंगे।।
कोई कुछ हाल तो आकर के कहता।

है किस बन में मेरा प्यारा कलेजा।।
हवा और धूप में कुम्हका के थककर।
कहीं साये में बैठे होंगे रघुवर।।
जो डरती देखकर मट्टी का चीता।
वो वन-वन फिर रही है आज सीता।।
कभी उतरी न सेजों से जमीं पर।
वो फिरती है पियोदे आज दर-दर।।
न निकली जान अब तक बेहया हूँ।
भला मैं राम-बिन क्यों जी रहा हूँ।।
मेरा है वज्र का लोगो कलेजा।
कि इस दु:ख पर नहीं अब भी य फटता।।
मेरे जीने का दिन बस हाय बीता।
कहाँ हैं राम लछमन और सीता।।
कहीं मुखड़ा तो दिखला जायँ प्यारे।
न रह जाये हविस जी में हमारे।।
कहाँ हो राम मेरे राम-ए-राम।
मेरे प्यारे मेरे बच्चे मेरे श्याम।।
मेरे जीवन मेरे सरबस मेरे प्रान।
हुए क्या हाय मेरे राम भगवान।।
कहाँ हो राम हा प्रानों के प्यारे।
यह कह दशरथ जी सुरपुर सिधारे।।

12. बसंत होली

जोर भयो तन काम को आयो प्रकट बसंत।
बाढ़यो तन में अति बिरह भो सब सुख को अंत।।1।।
चैन मिटायो नारि को मैन सैन निज साज।
याद परी सुख देन की रैन कठिन भई आज।।2।।
परम सुहावन से भए सबै बिरिछ बन बाग।
तृबिध पवन लहरत चलत दहकावत उर आग।।3।।
कोहल अरु पपिहा गगन रटि रटि खायो प्रान।
सोवन निसि नहिं देत है तलपत होत बिहान।।4।।

है न सरन तृभुवन कहूँ कहु बिरहिन कित जाय।
साथी दु:ख को जगत में कोऊ नहीं लखाय।।5।।
रखे पथिक तुम कित विलम बेग आइ सुख देहु।
हम तुम-बिन ब्याकुल भई धाइ भुवन भरि लेहु।।6।।
मारत मैन मरोरि कै दाहत हैं रितुराज।
रहि न सकत बिन मिलौ कित गहरत बिन काज।।7।।
गमन कियो मोहि छोड़ि कै प्रान-पियारे हाय।
दरकत छतिया नाह बिन कीजै कौन उपाय।।8।।
हा पिय प्यारे प्रानपति प्राननाथ पिय हाय।
मूरति मोहन मैन के दूर बसे कित जाय।।9।।
रहत सदा रोवत परी फिर फिर लेत उसास।
खरी जरी बिनु नाथ के मरी दरस के प्यास।।10।।
चूमि-चूमि धीरज धरत तुव भूषन अरु चित्र।
तिनहीं को गर लाइकै सोइ रहत निज मित्र।।11।।
यार तुम्हारे बिनु कुसुम भए बिष-बुझे बान।
चौदिसि टेसू फूलि कै दाहत हैं मम प्रान।।12।।
परी सेज सफरी सरिस करवट लै पछतात।
टप टप टपकत नैन जल मुरि मुरि पछरा खात।।13।।
निसि कारी साँपिन भई डसत उलटि फिरि जात।
पटकि पटकि पाटी करन रोइ रोइ अकुलात।।14।।
टरै न छाती सौं दुसह दु:ख नहिं आयौ कंत।
गमन कियो केहि देस कों बीती हाय बसंत।।15।।
वारों तन मन आपुनों दुहुँ कर लेहुँ बलाय।
रति-रंजन 'हरिचंद' पिय जो मोहि देहु मिलाय।।16।।

13. उर्दू का स्यापा

है-है उर्दू हाय-हाय। कहाँ सिधारी हाय-हाय।
मेरी प्यारी हाय-हाय। मुंशी मुल्ला हाय-हाय।
बल्ला बिल्ला हाय-हाय। रोये पीटें हाय-हाय।
टाँग घसीटैं हाय-हाय। सब छिन सोचौं हाय-हाय।
डाढ़ी नोचौं हाय-हाय। दुनिया उल्टी हाय-हाय।

रोजी बिल्टी हाय-हाय। सब मुखतारी हाय-हाय।
किसने मारी हाय-हाय। खबर नवीसी हाय-हाय।
दाँत पीसी हाय-हाय। एडिटर पोसी हाय-हाय।
बात फरोशी हाय-हाय। वह लस्सानी हाय-हाय।
चरब-जुबानी हाय-हाय। शोख बयानि हाय-हाय।
फिर नहीं आनी हाय-हाय।

14. अब और प्रेम के फंद परे

अब और प्रेम के फंद परे
हमें पूछत- कौन, कहाँ तू रहै।
अहै मेरेह भाग की बात अहो तुम
सों न कछु 'हरिचन्द' कहै।
यह कौन सी रीति अहै हरिजू तेहि
भारत हौ तुमको जो चहै।
चह भूलि गयो जो कही तुमने हम
तेरे अहै तू हमारी अहै।

15. होली

कैसी होरी खिलाई।
आग तन-मन में लगाई।
पानी की बूँदी से पिंड प्रकट कियो सुंदर रूप बनाई।
पेट अधम के कारन मोहन घर-घर नाच नचाई।।
तबौ नहिं हबस बुझाई।
भूँजी भाँग नहीं घर भीतर, का पहिनी का खाई।
टिकस पिया मोरी लाज का रखल्यो, ऐसे बनो न कसाई।।
तुम्हें कैसर दोहाई।
कर जोरत हौं बिनती करत हूँ छाँड़ो टिकस कन्हाई।
आन लगी ऐसे फाग के ऊपर भूखन जान गँवाई।।
तुन्हें कछु लाज न आई।

16. चूरन का लटका

चूरन अलमबेद का भारी, जिसको खाते कृष्ण मुरारी।।
मेरा पाचक है पचलोना, जिसको खाता श्याम सलोना।।
चूरन बना मसालेदार, जिसमें खट्टे की बहार।।
मेरा चूरन जो कोई खाए, मुझको छोड़ कहीं नहि जाए।।
हिंदू चूरन इसका नाम, विलायत पूरन इसका काम।।
चूरन जब से हिंद में आया, इसका धन-बल सभी घटाया।।
चूरन ऐसा हट्टा-कट्टा, कीन्हा दाँत सभी का खट्टा।।
चूरन चला डाल की मंडी, इसको खाएँगी सब रंडी।।
चूरन अमले सब जो खावैं, दूनी रिश्वत तुरत पचावैं।।
चूरन नाटकवाले खाते, उसकी नकल पचाकर लाते।।
चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल अजीरन रोग।।
चूरन खाएँ एडिटर जात, जिनके पेट पचौ नहीं बात।।
चूरन साहेब लोग जो खाता, सारा हिंद हजम कर जाता।।
चूरन पुलिसवाले खाते, सब कानून हजम कर जाते।।

17. चने का लटका

चना जोर गरम।
चना बनावैं घासी राम। जिनकी झोली में दूकान।।
चना चुरमुर-चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुँह खोलै।।
चना खावैं तोकी मैना। बोलैं अच्छा बना चबैना।।
चना खाएँ गफूरन, मुन्ना। बोलैं और नहिं कुछ सुन्ना।।
चना खाते सब बंगाली। जिनकी धोती ढीली-ढाली।।
चना खाते मियाँ जुलाहे। दाढ़ी हिलती गाहे-बगाहे।।
चना हाकिम सब खा जाते। सब पर दूना टैक्स लगाते।।
चना जोर गरम।।

18. हरी हुई सब भूमि

बरषा सिर पर आ गई हरी हुई सब भूमि
बागों में झूले पड़े, रहे भ्रमण-गण झूमि

करके याद कुटुंब की फिरे विदेशी लोग
बिछड़े प्रीतमवालियों के सिर पर छाया सोग
खोल-खोल छाता चले लोग सड़क के बीच
कीचड़ में जूते फँसे जैसे अघ में नीच

19. अंग्रेज स्तोत्र

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।
स्टारार्थी लभते स्टारम् मोक्षार्थी लभते गतिं।।
एक कालं द्विकालं च त्रिकालं नित्यमुत्पठेत।
भव पाश विनिर्मुक्तः अंग्रेज लोकं संगच्छति।।
(इससे विद्यार्थी को विद्या, धन चाहने वाले को धन, स्टार-खिताब-पदवी चाहने वाले को स्टार और मोक्ष की कामना करने वाले को परमगति की प्राप्ति होती है। जो प्राणी रोजाना,नियम से, तीनो समय इसका- (अंग्रेज-स्तोत्र का) पाठ करता है वह अंग्रेज लोक को गमन करने का पुण्य लाभ अर्जित करने का अधिकारी होता है।)

20. अथ मदिरास्तवराज

निन्दतो बहुभिलोकैमुखस्वासपरागमुखैः।
बलरूहीना क्रियाहीनो मूत्रकृतलुण्ठतेक्षितौ।।
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावल्लुंठतिभूतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा नरोमुक्तिमवाप्नुयात्।।
(भले ही कुछ लोग इसकी -मदिरा की- निन्दा करते हों किन्तु बहुतों के मुख से निकलने वाली सांस को यह सुवासित करने का कार्य करती है। यह अलग बात है कि यह बल और क्रिया से हीन कर मूत्र से सिंचित धरा पर क्यों न धराशायी कर दे फिर भी मदिरा का सेवनकर्ता पीता है, पीता है, बार-बार पीता है और तब तक पीता है,जब तक कि

धरती माता का चुम्बन न करने लगे। वह
फिर उठता है,फिर पीता है और तब तक
पीता जाता है जब तक कि उसकी नर देह
को मुक्ति नहीं मिल जाती।)

21. मातृभाषा प्रेम-दोहे

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन
पै निज भाषा-ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।
उन्नति पूरी है तबहिं जब घर उन्नति होय
निज शरीर उन्नति किये, रहत मूढ़ सब कोय।
निज भाषा उन्नति बिना, कबहुं न ह्वैहैं सोय
लाख उपाय अनेक यों भले करे किन कोय।
इक भाषा इक जीव इक मति सब घर के लोग
तबै बनत है सबन सों, मिटत मूढ़ता सोग।
और एक अति लाभ यह, या में प्रगट लखात
निज भाषा में कीजिए, जो विद्या की बात।
तेहि सुनि पावै लाभ सब, बात सुनै जो कोय
यह गुन भाषा और महं, कबहूं नाहीं होय।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।
भारत में सब भिन्न अति, ताहीं सों उत्पात
विविध देस मतहू विविध, भाषा विविध लखात।
सब मिल तासों छांड़ि कै, दूजे और उपाय
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रातगन आय।

22. पद

1. हमहु सब जानति लोक की चालनि, क्यौं इतनौ बतरावति हौ।
हित जामै हमारो बनै सो करौ, सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ।।

'हरिचंद जु' जामै न लाभ कछु, हमै बातनि क्यों बहरावति हौ।
सजनी मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कों का समुझावति हौ।।

2. ऊधो जू सूधो गहो वह मारग, ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्याँ, इक श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है।।
ये ब्रजबाला सबै इक सी, 'हरिचंद जु' मण्डलि ही बिगरी है।
एक जो होय तो ज्ञान सिखाइये, कूप ही में इहाँ भाँग परी है।।

3. मन की कासों पीर सुनाऊं।
बकनो बृथा, और पत खोनी, सबै चबाई गाऊं।।
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै, धरिहै उलटो नाऊं।।
यह तौ जो जानै सोइ जानै, क्यों करि प्रगट जनाऊं।
रोम-रोम प्रति नैन स्रवन मन, केहिं धुनि रूप लखाऊं।
बिना सुजान सिरोमणि री, किहिं हियरो काढि दिखाऊं।
मरिमनि सखिन बियोग दुखिन क्यों, कहि निज दसा रोवाऊं।
'हरीचंद पिय मिलैं तो पग परि, गहि पटुका समझाऊं।

4. हम सब जानति लोक की चालनि, क्यौं इतनौ बतरावति हौ
हित जामैं हमारो बनै सो करौ, सखियां तुम मेरी कहावति हौ।
श्हरिचंद जू जामै न लाभ कछू, हमैं बातनि क्यों बहरावति हौ।
सजनी मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कों का समुझावति हौ।
क्यों इन कोमल गोल कपोलन, देखि गुलाब को फूल लजायो।
त्यों 'हरिचंद जू पंकज के दल, सो सुकुमार सबै अंग भायो।

5. अमृत से जुग ओठ लसैं, नव पल्लव सो कर क्यों है सुहायो।
पाहप सो मन हो तौ सबै अंग, कोमल क्यों करतार बनायो।
आजु लौं जो न मिले तौ कहा, हम तो तुम्हरे सब भांति कहावैं।
मेरो उराहनो है कछु नाहिं, सबै फल आपुने भाग को पावैं।
जो 'हरिचनद भई सो भई, अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति, बिदा के समै सब कंठ लगावैं।

6. तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी !
इन चोरन मेरो सरबस लूट्यौ मन लीनो जोरा-जोरी !
छोड़ि देई कि बंद चोलिया, पकरैं चोर हम अपनो री !
'हरीचन्द' इन दोउन मेरी, नाहक कीनी चितचोरी !
तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी !!

23. वह अपनी नाथ दयालुता

वह अपनी नाथ दयालुता तुम्हें याद हो कि न याद हो।
वह जो कौल भक्तों से था किया तुम्हें याद हो कि न याद हो।
व जो गीध था गनिका व थी व जो व्याध था व मलाह था
इन्हें तुमने ऊंचों की गति दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो।
जिन बानरों में न रूप था न तो गुन हि था न तो जात थी
उन्हें भाइयो का सा मानना तुम्हें याद हो कि न याद हो।
खाना भील के वे जूठे फल, कहीं साग दास के घर पै चल
यूँही लाख किस्से कहूं मैं क्या तुम्हें याद हो कि न याद हो।
कहो गोपियों से कहा था क्या, करो याद गीता की भी जरा
वानी वादा भक्त-उधार का तुम्हें याद हो कि न याद हो।
या तुम्हारा ही हरिचंदे है गो फसाद में जग के बंद है
है दास जन्मों का आपका तुम्हें याद हो कि न याद हो।।

24. जगत में घर की फूट बुरी

जगत में घर की फूट बुरी।
घर की फूटहिं सो बिनसाई, सुवरन लंकपुरी।
फूटहिं सो सब कौरव नासे, भारत युद्ध भयो।
जाको घाटो या भारत मैं, अबलौं नाहिं पुज्यो।
फूटहिं सो नवनंद बिनासे, गयो मगध को राज।
चंद्रगुप्त को नासन चाह्यौ, आपु नसे सहसाज।
जो जग में धनमान और बल, अपुनो राखन होय।
तो अपने घर में भूलेहु, फूट करो मति कोय।

25. सखी हम बंसी क्यों न भए

सखी हम बंसी क्यों न भए।
अधर सुधा-रस निस-दिन पीवत प्रीतम रंग रए।
कबहुँक कर में, कबहुँक कटि में, कबहूँ अधर धरे।
सब ब्रज-जन-मन हरत रहति नित कुंजन माँझ खरे।
देहि बिधाता यह बर माँगों, कीजै ब्रज की धूर।
'हरीचंद' नैनन में निबसै मोहन-रस भरपूर।

26. रोकहिं जौं तो अमंगल होय

रोकहिं जौं तो अमंगल होय, औ प्रेम नसै जै कहैं पिय जाइए।
जौं कहैं जाहु न तौ प्रभुता, जौ कछु न तौ सनेह नसाइए।
जौं 'हरिचंद' कहै तुम्हरे बिन जीहै न, तौ यह क्यों पतिआईए।
तासौं पयान समै तुम्हरे, हम का कहैं आपै हमें समझाइए।

27. मारग प्रेम को समझै

मारग प्रेम को को समझै 'हरिचंद' यथारथ होत यथा है।
लाभ कछू न पुकारन में बदनाम ही होने की सारी कथा है।
जानत है जिय मेरो भला बिधि और उपाय सबै बिरथा है।
बावरे हैं ब्रज के सगरे मोहिं नाहक पूछत कौन विधा है।

28. काल परे कोस चलि- चलि थक गए पाय

काल परे कोस चलि चलि थक गए पाय,
सुख के कसाले परे ताले परे नस के।
रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे,
मदन के पाले परे प्रान पर-बस के।
'हरिचंद' अंगहू हवाले परे रोगन के,
सोगन के भाले परे तन बल खसके।
पगन छाले परे लांघिबे को नाले परे,
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के।

29. रहैं क्यौं एक म्यान असि दोय

जिन नैनन मैं हरि-रस छायो, तेहि क्यौं भावै कोय।
जा तन मन मैं राहि रहै मोहन, तहाँ ग्यान क्यौं आवै।
चाहो जितनी बात प्रबोधो, ह्याँ को जो पतिआवै।
अमृत खाई अब देखि इनारुन, को मूरख जो भूलै।
श्हरिचंद' ब्रज तो कदली-बन, काटौ तो फिरि फूलै।

30. लहौ सुख सब विधि भारतवासी

विद्या कला जगत की सीखो, तजि आलस की फाँसी।
अपने देश, धरम, कुल समझो, छोड़ वृत्ति निज दासी।
पंचपीर की भगति छोड़ि, होवहु हरिचरन उपासी।
जग के और नरन सम होऊ, येऊ होय सबै गुन रासी।

31. अथ अंकमयी

(शब्दों के स्थान पर अंकों का प्रयोग)
करि वि4 देख्यौ बहुत जग बिन 2स न 1।
तुम बिन हे विक्टोरिये नित 900 पथ टेक।
ह 3 तुम पर सैन लै 80 कहत करि 100ह।
पै बिन7 प्रताप-बल सत्रु मरोरै भौंह।
सो 13 ते लोग सब बिल 17 त सचैन।
अ 11 ती जागती पै सब 6न दिन-रैन।
सखि तुव मुख 26 सि सबै कै 16 त अनंद।
निहचौ 27 की तुम में परम अमंद।
जिमि 52 के पद तरे 14 लोक लखात।
तिमि भुव तुम अधिकार मोहि बिस्वे 20 जनात।
61 खल नहिं राज में 25 बन की बाय।
तासों गायो सुजस तुव कवि 6 पद गाय।
किये 100000000000 बल 1000000000 के तनिकहिं भौंह मरोर।
40 की नहिं अरिन की, सैन-सैन लखि तोर।
तुव पद 100000000000000 प्रताप को करत सुकवि पि 10000000।
करत 10000000 बहु 100000 करि, होत तऊ अति थोर।

तुम 31 ब में बड़ीं ताते बिरच्यौ छंद।
तुव जस परिमल।।। लहि, अंक चित्र हरिचंद।
अब जरा उपरोक्त रचना को पुनः पढ़ें–
करि विचार देख्यौ बहुत जग बिन दोस न एक।
तुम बिन हे विक्टोरिये नित नव सौ पथ टेक।
हती न तुम पर सैन लै असी कहत करि सौंह।
पै बिनसात प्रताप-बल सत्रु मरोरै भौंह।
सोते रहते लोग सब बिलसत रहत सचैन।
अग्या रहती जागती पै सब छन दिन-रैन।
सखि तुव मुख छबि ससि सबै कैसो रहत अनंद।
निहचौ सत्ता ईस की तुम में परम अमंद।
जिमि बामन के पद तरे चौदह लोक लखात।
तिमि भुव तुम अधिकार मोहि बिस्वे बीस जनात।
इक सठ खल नहिं राज में पची सबन की बाय।
तासों गायो सुजस तुव कवि षट-पद गाय।
किये खरब बल अरब के तनिकहिं भौंह मरोर।
चालि सकी नहिं अरिन की, सैन-सैन लखि तोर।
तुव पद पद्म प्रताप को करत सुकवि पिक रोर।
करत कोटि बहु लक्ष करि, होत तऊ अति थोर।
तुम इकती सब में बड़ीं ताते बिरच्यौ छंद।
तुव जस परिमल पौन लहि, अंक चित्र हरिचंद।

32. हरि को धूप-दीप लै कीजै

षटरस बींजन विविध भाँति के नित नित भोग धरीजै।
दही, मलाई, घी अरु माखन तापो पै लै दीजै।
'हरीचंद' राधा-माधव-छबि, देखि बलैंया लीजै।

33. सुनौ सखि बाजत है मुरली

सुनौ सखि बाजत है मुरली।
जाके नेंक सुनत ही हिअ में उपजत बिरह-कली।

जड़ सम भए सकल नर, खग, मृग, लागत श्रवन भली।
'हरीचंद' की मति रति गति सब धारत अधर छली।

34. बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी

बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी।
सुनत श्रवन मन थकित भयो अरु मति गति जाति भजी।
सात सुरन अरु तीन ग्राम सों पिय के हाथ सजी।
'हरीचंद' औरहु सुधि मोही जबही अधर तजी।

35. सखी हम काह करैं कित जायं

सखी हम काह करैं कित जायं
बिनु देखे वह मोहिनी मूरति नैना नाहिं अघायँ
बैठत उठत सयन सोवत निस चलत फिरत सब ठौर
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और
सुमिरन वही ध्यान उनको हि मुख में उनको नाम
दूजी और नाहिं गति मेरी बिनु मोहन घनश्याम
सब ब्रज बरजौ परिजन खीझौ हमरे तो अति प्रान
'हरीचन्द' हम मगन प्रेम-रस सूझत नाहिं न आन

36. मेरे नयना भये चकोर

मेरे नयना भये चकोर
अनुदिन निरखत श्याम चन्द्रमा सुन्दर नंदकिशोर।
तनिक भये वियोग उर बाढ़त बहु बिधि नयन मरोर
होत न पल की ओट छिनकहूँ रहत सदा दृग जोर
कोऊ न इन्हें छुडावनहारों अरुझे रूप झकोर
श्हरिचन्द' नित छके प्रेम रस जानत साँझ न भोर।

37. ब्रज के लता पता मोहिं कीजै

ब्रज के लता पता मोहिं कीजै
गोपी पद-पंकज पावन की रज जामै सिर भीजै
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै

श्री राधे राधे मुख यह बर हरीचन्द को दीजै

38. निवेदन-पंचक

श्याम घन अब तौ जीवन देहु।
दुसह दुखद दावानल ग्रीषम सों बचाइ जग लेहु।
तृनावर्त नित धूर उड़ावत बरसौ कह ना मेहु।
'हरीचंद' जिय तपन मिटाओ निज जन पैं करि नेहु-1-
श्याम घन निज छबि देहु दिखाय।
नवल सरस तन साँवल चपल पीताम्बर चमकाय।
मुक्तमाल बगजाल मनोहर दृगन देहु बरसाय।
श्रवन सुखद गरजन बंसी धुनि अब तौ देहु सुनाय।
ताप पाप सब जग कौ नासौ नेह-मेह बरसाय।
'हरीचंद' पिय द्रवहु दया करि करुनानिधि ब्रजराय-2-
श्याम घन अब तौ बरसहु पानी।
दुखित सबै नर नारी खग-मृग कहत दीन सम बानी।
तपत प्रचण्ड सूर निरदय ह्वै दूबहु हाय झुरानी।
'हरीचंद' जग दुखित देखि कै द्रवहु आपनो जानी-3-
कितै बरसाने-वारी राधा।
हरहु न जल बरसाइ जगत की पाप-ताप-मय बाधा।
कठिन निदाघ लता वीरुध तृन पसु पंछी तन दाधा।
चातक से सब नभ दिसि हेरत जीवन बरसन साधा।
तुम करुनानिधि जन-हितकारिनि दया-समुद्र अगाधा।
'हरीचंद' यही तें सब तजि तुव पद-पदुम अराधा-4-
जगत की करनी पै मति जैये।
करिकै दया दयानिधि माधो अब तौ जल बरसैये।
देखि दुखी जग-जीव श्याम घन करि करुना अब ऐये।
'हरीचंद' निज बिरद याद करि सब को जीव बचौये-5-

प्रतापनारायण मिश्र

प्रतापनारायण मिश्र (24 सितंबर, 1856-6 जुलाई, 1894) भारतेन्दु मंडल। भारतेन्दु मण्डल,, के प्रमुख लेखक, कवि और पत्रकार थे। वह भारतेंदु

निर्मित एवं प्रेरित हिंदी लेखकों की सेना के महारथी, उनके आदर्शों के अनुगामी और आधुनिक हिंदी भाषा तथा साहित्य के निर्माणक्रम में उनके सहयोगी थे। भारतेंदु पर उनकी अनन्य श्रद्धा थी, वह अपने आप को उनका शिष्य कहते तथा देवता की भाँति उनका स्मरण करते थे। भारतेंदु जैसी रचनाशैली, विषयवस्तु और भाषागत विशेषताओं के कारण मिश्र जी 'प्रति-भारतेंदु' और 'द्वितीय हरिश्चंद्र' कहे जाने लगे थे।

जीवनी

मिश्र जी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के अंतर्गत बैजे गाँव निवासी, कात्यायन गोत्रीय, कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं. संकठा प्रसाद मिश्र के पुत्र थे। बड़े होने पर वह पिता के साथ कानपुर में रहने लगे और अक्षरारंभ के पश्चात उनसे ही ज्योतिष पढ़ने लगे। किंतु उधर रुचि न होने से पिता ने उन्हें अंग्रेजी स्कूल में भरती करा दिया। तब से कई स्कूलों का चक्कर लगाने पर भी वह पिता की लालसा के विपरीत पढ़ाई-लिखाई से विरत ही रहे और पिता की मृत्यु के पश्चात् 18-19 वर्ष की अवस्था में उन्होंने स्कूली शिक्षा से अपना पिंड छुड़ा लिया।

इस प्रकार मिश्रजी की शिक्षा अधूरी ही रह गई, किंतु उन्होंने प्रतिभा और स्वाध्याय के बल से अपनी योग्यता पर्याप्त बढ़ा ली थी। वह हिंदी, उर्दू और बँगला तो अच्छी जानते ही थे, फारसी, अँगरेजी और संस्कृत में भी उनकी अच्छी गति थी।

मिश्र जी छात्रवस्था से ही 'कविवचनसुधा' के गद्य-पद्य-मय लेखों का नियमित पाठ करते थे, जिससे हिंदी के प्रति उनका अनुराग उत्पन्न हुआ। लावनी गायकों की टोली में आशु रचना करने तथा ललितजी की रामलीला में अभिनय करते हुए उनसे काव्यरचना की शिक्षा ग्रहण करने से वह स्वयं मौलिक रचना का अभ्यास करने लगे। इसी बीच वह भारतेंदु के संपर्क में आए। उनका आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन पाकर वह हिंदी गद्य तथा पद्य रचना करने लगे। 1882 के आस-पास 'प्रेमपुष्पावली' प्रकाशित हुई और भारतेंदु जी ने उसकी प्रशंसा की तो उनका उत्साह बहुत बढ़ गया।

15 मार्च 1883 को, होली के दिन, अपने कई मित्रों के सहयोग से मिश्रजी ने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला। यह अपने रूप-रंग में ही नहीं, विषय और भाषाशैली की दृष्टि से भी भारतेंदु युग का विलक्षण पत्र था।

सजीवता, सादगी, बाँकपन और फक्कड़पन के कारण भारतेंदुकालीन साहित्यकारों में जो स्थान मिश्रजी का था, वही तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता में इस पत्र का था, किंतु यह कभी नियत समय पर नहीं निकलता था। दो-तीन बार तो इसके बंद होने तक की नौबत आ गई थी। इसका कारण मिश्रजी का व्याधिमंदिर शरीर और अर्थाभाव था। रामदीन सिंह आदि की सहायता से यह येनकेन प्रकारेण संपादक के जीवनकाल तक निकलता रहा। उनकी मृत्यु के बाद भी रामदीन सिंह के संपादकत्व में कई वर्षों तक निकला, परंतु पहले जैसा आकर्षण उसमें न रह।

1889 में मिश्र जी 25 : मासिक पर 'हिंदोस्थान' के सहायक संपादक होकर कालाकाँकर आए। उन दिनों पं. मदनमोहन मालवीय उसके संपादक थे। यहाँ बालमुकुंद गुप्त ने मिश्रजी से हिंदी सीखी। मालवीय जी के हटने पर मिश्रजी अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण वहाँ न टिक सके। कालाकाँकर से लौटने के बाद वह प्रायः रुग्ण रहने लगे। फिर भी समाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कार्यो में पूर्ववत रुचि लेते रहे और 'ब्राह्मण' के लिए लेख आदि प्रस्तुत करते रहे। 1891 में उन्होंने कानपुर में 'रसिक समाज' की स्थापना की। कांग्रेस के कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारतधर्ममंडल, धर्मसभा, गोरक्षिणी सभा और अन्य सभा-समितियों के सक्रिय कार्यकर्ता और सहायक बने रहे। कानपुर की कई नाट्य सभाओं और गोरक्षिणी समितियों की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों से हुई थी।

मिश्रजी जितने परिहासप्रिय और जिंदादिल व्यक्ति थे उतने ही अनियमित, अनियंत्रित, लापरवाह और काहिल थे। रोग के कारण उनका शरीर युवावस्था में ही जर्जर हो गया था, तो भी स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का वह सदा उल्लंघन करते रहे। इससे उनका स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता गया। 1892 के अंत में वह गंभीर रूप से बीमार पड़े और लगातार डेढ़ वर्षो तक बीमार ही रहे। अंत में 38 वर्ष की आयु में 6 जुलाई 1894 को दस बजे रात में भारतेंदु मंडल के इस नक्षत्र का अवसान हो गया।

रचनाएँ

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु के विचारों और आदर्शों के महान प्रचारक और व्याख्याता थे। वह प्रेम को परमधर्म मानते थे। हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान उनका प्रसिद्ध नारा था। समाजसुधार को दृष्टि में रखकर उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट की तरह वह आधुनिक हिंदी निबंधों को परंपरा को पुष्ट कर

हिंदी साहित्य के सभी अंगों की पूर्णता के लिये रचनारत रहे। एक सफल व्यंग्यकार और हास्यपूर्ण गद्य-पद्य-रचनाकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। मिश्र जी की मुख्य कृतियाँ निम्नांकित हैं–

(क) नाटक: गो संकट, भारत दुर्दशा, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर। जुआरी-खुआरी (प्रहसन)। संगीत शाकुंतल (कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतम' का अनुवाद)।

(ख) निबंध संग्रह निबंध नवनीत, प्रताप पीयूष, प्रताप समीक्षा

(ग) अनूदित गद्य कृतियाँ: राजसिंह, अमरसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुरीय, चरिताष्टक, पंचामृत, नीतिरत्नमाला

(घ) कविता–प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, ब्रैडला स्वागत, दंगल खंड, तृप्यन्ताम, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।

वर्ण्य-विषय

मिश्रजी के निबंधों में विषय की पर्याप्त विविधता है। देव-प्रेम, समाज-सुधार एवं साधारण मनोरंजन आदि मिश्रजी के निबंधों के मुख्य विषय थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र में हर प्रकार के विषय पर निबंध लिखे। जैसे-घूरे के लत्ता बीने-कनातन के डोल बांधे, समझदार की मौत है,आप, बात, मनोयोग, बृद्ध, भौं, मुच्छ, ह, ट, द आदि।

मिश्रजी 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के कट्टर समर्थक थे, अत: उनकी रचनाओं में इनके प्रति विशेष मोह प्रकट हुआ है।

भाषा

खड़ी से अर्थ है खरी अर्थात शुद्ध अथवा ठेठ हिंदी बोली। शुद्ध अथवा ठेठ हिंदी बोली या भाषा को उस समय खरी या खड़ी बोली के नाम से सम्बोधित किया गया, जबकि हिंदुस्तान में अरबी फारसी और हिंदुस्तानी शब्द मिश्रित उर्दू भाषा का चलन था या दूसरी तरफ अवधी या ब्रज भाषा का। ठेठ या शुद्ध हिंदी का चलन न था। यह लगभग 18वीं शताब्दी के आरम्भ का समय था जब कुछ हिंदी गद्यकारों ने ठेठ हिंदी में लिखना शुरू किया। इसी ठेठ हिंदी को खरी हिंदी या खड़ी हिंदी बोली कहा गया। खड़ी बोली से तात्पर्य खड़ी बोली हिंदी से है, जिसे भारतीय संविधान ने राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इसे आदर्श (स्टैंडर्ड) हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी की

मूल आधार स्वरूप बोली होने का गौरव प्राप्त है। गाजियाबाद हापुड ग्रेटर नोएडा में ब्रजभाषा प्रभावित खडी बोली बोली जाती है, मेरठ व मुजफ्फरनगर(पूर्वी भाग) की खड़ी बोली आदर्श खड़ी बोली मानी जाती है जिससे आधुनिक हिंदी भाषा का जन्म हुआ वही दुसरी और मुजफ्फरनगर(पश्चिमी भाग) व सहारनपुर बागपत में खड़ी बोली में हरयाणवी की झलक देखने को मिलती है। अंबाला तथा पचंकूला जिलों में खड़ी बोली उपभाषा है, जो ग्रामीण जनता के द्वारा मातृभाषा के रूप में बोली जाती है

खड़ी बोली वह बोली है, जिसपर ब्रजभाषा या अवधी आदि की छाप न हो। ठेंठ हिंदी। आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप है।

परिचय

'खड़ी बोली' (या खरी बोली) वर्तमान हिंदी का एक रूप है, जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की सृष्टि की गई और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है। दूसरे शब्दों में, वह बोली जिस पर ब्रज या अवधी आदि की छाप न हो, ठेंठ हिंदीं। खड़ी बोली आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप है। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है।

जिस समय मुसलमान इस देश में आकर बस गए, उस समय उन्हें यहाँ की कोई एक भाषा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। वे प्रायः दिल्ली और उसके पूरबी प्रांतों में ही अधिकता से बसे थे और ब्रजभाष तथा अवधी भाषाएँ, क्लिष्ट होने के कारण अपना नहीं सकते थे, इसलिये उन्होंने मेरठ और उसके आस-पास की बोली ग्रहण की और उसका नाम खड़ी (खरी?) बोली रखा। इसी खड़ी बोली में वे धीरे-धीरे फारसी और अरबी शब्द मिलाते गए, जिससे अंत में वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि हुई। विक्रमी 14वीं शताब्दी में पहले-पहल अमीर खुसरो ने इस प्रांतीय बोली का प्रयोग करना आरंभ किया और उसमें बहुत कुछ कविता की, जो सरल तथा सरस होने के कारण शीघ्र ही प्रचलित हो गई। बहुत दिनों तक मुसलमान ही इस बोली का बोलचाल और साहित्य में व्यवहार करते रहे, पर पीछे हिंदुओं में भी इसका प्रचार होने लगा। 15वीं और 16 वीं शताब्दी में कोई-कोई हिंदी के कवि भी अपनी कविता

में कहीं-कहीं इसका प्रयोग करने लगे थे, पर उनकी संख्या प्रायः नहीं के समान थी। अधिकांश कविता बराबर अवधी और ब्रजभाषा में ही होती रही। 18वीं शताब्दी में हिंदू भी साहित्य में इसका व्यवहार करने लगे, पर पद्य में नहीं, केवल गद्य में, और तभी से मानों वर्तमान हिंदी गद्य का जन्म हुआ, जिसके आचार्य मुंशी सदासुखलाल, लल्लू जी लाल और सदल मिश्र माने जाते हैं। जिस प्रकार मुसलमानों ने इसमें फारसी तथा अरबी आदि के शब्द भरकर वर्तमान उर्दू भाषा बनाई, उसी प्रकार हिंदुओं ने भी उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान हिंदी प्रस्तुत की। इधर थोड़े दिनों से कुछ लोग संस्कृतप्रचुर वर्तमान हिंदी में भी कविता करने लग गए हैं और कविता के काम के लिये उसी को खड़ी बोली कहते हैं।

वर्तमान हिंदी का एक रूप जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है।

साहित्यिक सन्दर्भ

साहित्यिक संदर्भ में ब्रज, अवधी आदि बोलियों में साहित्य का पार्थक्य करने के लिए आधुनिक हिंदी साहित्य को खड़ी बोली साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। यह भारतवर्ष की सर्वाधिक प्रचलित, सरल तथा बोधगम्य भाषा है। बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं हरियाणा हिंदी (खड़ी बोली) भाषाभाषी राज्य हैं। परंतु इनके अतिरिक्त सुदूर दक्षिण के कुछ स्थानों को छोड़कर इसका प्रचार न्यूनाधिक समस्त देश में है।

नामकरण

खड़ी बोली अनेक नामों से अभिहित की गई है यथा-हिंदुई, हिंदवी, दक्खिनी, दखनी या दकनी, रेखता, हिंदोस्तानी, हिंदुस्तानी आदि। डॉ. ग्रियर्सन ने इसे वर्नाक्युलर हिंदुस्तानी तथा डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इसे जनपदीय हिंदुस्तानी का नाम दिया है। डॉ. चटर्जी खड़ी बोली के साहित्यिक रूप को साधु हिंदी या नागरी हिंदी के नाम से अभिहित करते हैं। परंतु डॉ. ग्रियर्सन ने इसे हाई हिंदी का अभिधान प्रदान किया है। इसकी व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न रूप से की है। इन विद्वानों के मतों की निम्नांकित श्रेणियाँ हैं-

1. कुछ विद्वान खड़ी बोली नाम को बज्रभाषा सापेक्ष मानते हैं और यह प्रतिपादन करते हैं कि लल्लू जी लाल (1803 ई.) के बहुत पूर्व यह नाम ब्रजभाषा की मधुरता तथा कोमलता की तुलना में उस बोली को दिया गया था, जिससे कालांतर में आदर्श हिंदी तथा उर्दू का विकास हुआ। ये विद्वान खड़ी शब्द से कर्कशता, कटुता, खरापन, खड़ापन आदि ग्रहण करते हैं।
2. कुछ लोग इसे उर्दू सापेक्ष मानकर उसकी अपेक्षा इसे प्रकृत शुद्ध, ग्रामीण ठेठ बोली मानते हैं।
3. अनेक विद्वान खड़ी का अर्थ सुस्थित, प्रचलित, सुसंस्कृत, परिष्कृत या परिपक्व ग्रहण करते हैं।
4. अन्य विद्वान् उत्तरी भारत की ओकारांत प्रधान ब्रज आदि बोलियों को पड़ी बोली और इसके विपरीत इसे खड़ी बोली के नाम से अभिहित करते हैं, जबकि कुछ लोग रेखता शैली को पड़ी और इसे खड़ी मानते हैं। खड़ी बोली को खरी बोली भी कहा गया है। संभवत: खड़ी बोली शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग लल्लू जी लाल द्वारा प्रेमसागर में किया गया है। किंतु इस ग्रंथ के मुखपृष्ठ पर खरी शब्द ही मुद्रित है।

खड़ी बोली की उत्पत्ति तथा इसके संबंध में विभिन्न मत

अत्यंत प्राचीन काल से ही हिमालय तथा विंध्य पर्वत के बीच की भूमि आर्यावर्त के नाम से प्रख्यात है। इसी के बीच के प्रदेश को मध्य प्रदेश कहा जाता है, जो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का केंद्र बिंदु है। संस्कृत, पालि तथा शौरसेनी प्राकृत विभिन्न युगों में इस मध्यदेश की भाषा थी। कालक्रम से शौरसेनी प्राकृत के पश्चात् इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। यह कथ्य (बोलचाल की) शौरसेनी अपभ्रंश भाषा ही कालांतर में कदाचित् खड़ी बोली (हिंदी) के रूप में पारिणत हुई है। इस प्रकार खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है, यद्यपि इस अपभ्रंश का विकास साहित्यक रूप में नहीं पाया जाता। भोज और हम्मीरदेव के समय से अपभ्रंश काव्यों की जो परंपरा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की झलक दिखाई पड़ती है। इसके उपरांत भक्तिकाल के आरंभ में निर्गुण धारा के संत कवि खड़ी बोली का व्यवहार अपनी सधुक्कड़ी भाषा में किया करते थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्त्व में लाई गई और उसका मूलरूप उर्दू है, जिससे आधुनिक हिंदी की भाषा अरबी फारसी शब्दों को निकालकर गढ़ ली गई। सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री, डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार खड़ी बोली अंग्रेजों की देन है। मुगल साम्राज्य के ध्वंस से खड़ी बोली के प्रचार में सहायता पहुँची। जिस प्रकार उजड़ती हुई दिल्ली को छोड़कर मीर, इंशा आदि उर्दू के अनेक शायर पूरब की ओर आने लगे उसी प्रकार दिल्ली के आस-पास के हिंदू व्यापारी जीविका के लिये लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना, आदि पूरबी शहरों में फैलने लगे। इनके साथ ही साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलती थी। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की भाषा भी खड़ी बोली हो गई। यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दू-ए-मुअल्ला नहीं। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के संबंध में वे लिखते हैं कि यह समय हिंदी (खड़ीबोली) भाषा के जन्म का समय था, जिसका अविष्कार अंग्रेजों ने किया था और इसका साहित्यिक गद्य के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग गिलक्राइस्ट की आज्ञा से लल्लू जी लाल ने अपने प्रेमसागर में किया।

लल्लू जी लाल और पं. सदल मिश्र को खड़ी बोली के उन्नायक अथवा इसको प्रगति प्रदान करनेवाला तो माना जा सकता है, परंतु इन्हें खड़ी बोली का जन्मदाता कहना सत्य से युक्त तथा तथ्यों से प्रमाणित नहीं है। खड़ी बोली की प्राचीन परंपरा के संबंध में ध्यानपूर्वक विचार करने पर इस कथन की अयथार्थता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है।

मुसलमानों के द्वारा इसके प्रसार में सहायता अवश्य प्राप्त हुई। उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं, बल्कि खड़ी बोली की ही एक शैली मात्र है, जिसमें फारसी और अरबी के शब्दों की अधिकता पाई जाती है तथा जो फारसी लिपि में लिखी जाती है। उर्दू साहित्य के इतिहास पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट प्रमाणित है। अनेक मुसलमान कवियों ने फारसी मिश्रित खड़ी बोली में, जिसे वे 'रेख्ता' कहते थे, कविता की है। यह परंपरा 18वीं 19वीं शती में दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुरशाह तथा लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह तक चलती रही।

साधारणत: लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खाँ तथा मुंशी सदासुखलाल खड़ी बोली गद्य के प्रतिष्ठापक कहे जाते हैं, परंतु इनमें से किसी को भी इसकी परंपरा को प्रतिष्ठित करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। आधुनिक

खड़ी बोली गद्य की परंपरा की प्रतिष्ठा का श्रेय भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को प्राप्त है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा एक सरल सर्वसम्मत गद्यशैली का प्रवर्तन किया। कालांतर में लोगों ने भारतेंदु की शैली अधिक अपनाई।

वस्तुत: आधुनिक हिंदी साहित्य खड़ी बोली का ही साहित्य है, जिसके लिए देवनागरी लिपि का सामान्यत: व्यवहार किया जाता है और जिसमें संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि के शब्दों और प्रकृतियों के साथ देश में प्रचलित अनेक भाषाओं और जनबोलियों की छाया अपने तद्भव रूप में वर्तमान है।खड़ीबोली के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग मिश्र जी ने अपने साहित्य में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्रजी ने भारतेंदु का अनुसरण किया और जन साधारण की भाषा को अपनाया। भारतेंदु जी के समान ही मिश्रजी भाषा की कृतिमता से दूर रहे। उनकी भाषा स्वाभाविक है। उसमें पंडिताऊपन और पूर्वीपन अधिक है तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक हुआ है। संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, आदि के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा विषय के अनुकूल है। गंभीर विषयों पर लिखते समय भाषा और गंभीर हो गई है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में मिश्रजी बड़े कुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा बहुत कम लेखकों ने किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी-सी लगा दी है।

शैली

मिश्रजी की शैली वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक है।

विचारात्मक शैली- साहित्यिक और विचारात्मक निबंधों में मिश्रजी ने इस शैली को अपनाया है। कहीं-कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट भी मिलता है। इस शैली की भाषा संयत और गंभीर है। 'मनोयोग' शीर्षक निबंध का एक अंश देखिए-इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है। और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।

व्यंग्यात्मक शैली-इस शैली में मिश्रजी ने अपने हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्रजी की प्रतिनिधि शैली है, जो सर्वथा उनके अनुकूल है। वे हास्य-विनोद प्रिय व्यक्ति थे। अत: प्रत्येक विषय का प्रतिपादन हास्य और

विनोदपूर्ण ढंग से करते थे। हास्य और विनोद के साथ-साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। विषय के अनुसार व्यंग्य कहीं-कहीं बड़ा तीखा और मार्मिक हो गया है। इस शैली में भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है। उसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के कारण यह शैली अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। एक उदाहरण देखिए-दो-एक बार धोखा खाके धोखेबाजों की हिकमत सीख लो और कुछ अपनी ओर से झपकी-फुंदनी जोड़ कर उसी की जूती उसी का सर कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली वरंच 'गुरु गुड़ ही रहा और चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे।

समालोचना

मिश्रजी भारतेंदु मंडल के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। वे कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के मौलिक निबंध लेखक और नाटककार थे। हिंदी गद्य के विकास में मिश्रजी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य शुक्ल जी ने पं. बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्रजी को भी महत्व देते हुए अपने हिंदी-साहित्य के इतिहास में लिखा है- पं0 प्रतापनारायण मिश्र और पं0 बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया।

बालकृष्ण भट्ट जीवनी

हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में पंडित बालकृष्ण भट्ट (Balkrishna Bhatt) का नाम "हिंदी प्रदीप" की ख्याति के कारण ही अप्रतिम नहीं, इनके शिष्यों में पंडित मदनमोहन मालवीय और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन जैसे ख्यात नाम भी है, जिन्होंने अपने कर्ममय जीवन की शुरुवात बालकृष्ण जी के निर्देशन में पत्रकारिता से ही की थी। भारतेंदु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से सं 1877 में इन्होने "हिंदी वर्धिनी सभा" की स्थापना की थी। यशस्वी "हिंदी प्रदीप" इस सभा के अंतर्गत ही निकला, जिसका विमोचन स्वयं भारतेंदु बाबू ने किया था।

पर सिर मुंड़ाते ही ओले पड़ने शुरू हो गये थे। इसमें छपे कई लेखों ने ब्रिटिश नौकरशाही को नाराज कर दिया था और बार-बार भट्ट जी को बुलाकर चेतावनिया दी जाने लगी। इस पत्र को इतने संदेह से देखा जाने लगा कि भट्ट जी के मित्रों ने उनके कार्यालय में आना छोड़ दिया और उनके जाने पर कहने

लगे "कृपया आप हमारे यहाँ न आया करिये इससे हमे भी संदेह के घेरे में ले लिया जाएगा और हम बेवजह धर लिए जायेंगे"। ऐसा लेखकीय स्वतंत्रता के विपरीत वातावरण था, उस समय। जब भट्ट जी (Balkrishna Bhatt) को आये दिन सरकारी प्रतिबंधो एवं झंझटो का सामना करना पड़ा तो विवश होकर उन्होंने इसे राजनीती प्रधान पत्र से बदलकर साहित्यिक स्वरूप दे दिया।

"हिंदी प्रदीप" को इस रूप में चलाने पर बालकृष्ण भट्ट (Balkrishna Bhatt) को अर्थ संकट से गुजरना पड़ा, जिससे उनका पूरा परिवार ही संकटग्रस्त हो गया पर उन्होंने इसकी परवाह न करते हुए इसे 33 वर्ष तक चलाया और लोकप्रियता के शिखर पर पहुचाया। फिर भी जब उनसे हिंदी प्रेस एक्ट के अंतर्गत 3000 रूपये की जमानत माँगी गयी तो उन्होंने उसे बंद ही कर दिया।

पंडित बालकृष्ण भट्ट के पिता का नाम पं. वेणी प्रसाद था। स्कूल में दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद भट्ट जी ने घर पर ही संस्कृत का अध्ययन किया। संस्कृत के अतिरिक्त उन्हें हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान हो गया। भट्ट जी स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने व्यापार का कार्य किया तथा वे कुछ समय तक कायस्थ पाठशाला प्रयाग में संस्कृत के अध्यापक भी रहे किन्तु उनका मन किसी में नहीं रमा। भारतेंदु जी से प्रभावित होकर उन्होंने हिंदी-साहित्य सेवा का व्रत ले लिया। भट्ट जी ने हिन्दी प्रदीप नामक मासिक पत्र निकाला। इस पत्र के वे स्वयं संपादक थे। उन्होंने इस पत्र के द्वारा निरंतर 32 वर्ष तक हिंदी की सेवा की। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित हिंदी शब्दसागर के संपादन में भी उन्होंने बाबू श्याम सुंदर दास तथा शुक्ल जी के साथ कार्य किया।

उनका जन्म प्रयाग के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। भट्ट जी की माता अपने पति की अपेक्षा अधिक पढ़ी-लिखी और विदुषी थीं। उनका प्रभाव बालकृष्ण भट्ट जी पर अधिक पड़ा। भट्ट जी मिशन स्कूल में पढ़ते थे। वहाँ के प्रधानाचार्य एक ईसाई पादरी थे। उनसे वाद-विवाद हो जाने के कारण इन्होंने मिशन स्कूल जाना बंद कर दिया। इस प्रकार वह घर पर रह कर ही संस्कृत का अध्ययन करने लगे। वे अपने सिद्धान्तों एवं जीवन-मूल्यों के इतने दृढ़ प्रतिपादक थे कि कालान्तर में इन्हें अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण मिशन स्कूल तथा कायस्थ पाठशाला के संस्कृत अध्यापक के पद से त्याग-पत्र देना पड़ा था। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने कुछ समय तक व्यापार भी किया, परन्तु

उसमें इनकी अधिक रुचि न होने के कारण सफलता नहीं मिल सकी। आपकी अभिरुचि आरंभ से ही साहित्य सेवा में थी। अत: सेवा-वृत्ति को तिलांजलि देकर वे यावज्जीवन हिन्दी साहित्य की सेवा ही करते रहे।

कार्यक्षेत्र

भट्ट जी एक अच्छे और सफल पत्रकार भी थे। हिन्दी प्रचार के लिए उन्होंने संवत् 1933 में प्रयाग में हिन्दीवर्धिधनी नामक सभा की स्थापना की। उसकी ओर से एक हिन्दी मासिक पत्र का प्रकाशन भी किया, जिसका नाम था 'हिन्दी प्रदीप'। वह बत्तीस वर्ष तक इसके संपादक रहे और इसे नियमित रूप से भली-भाँति चलाते रहे। हिन्दी प्रदीप के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट जी ने दो-तीन अन्य पत्रिकाओं का संपादन भी किया। भट्ट जी भारतेन्दु युग के प्रतिष्ठित निबंधकार थे। अपने निबंधों द्वारा हिन्दी की सेवा करने के लिए उनका नाम सदैव अग्रगण्य रहेगा। उनके निबन्ध अधिकतर हिन्दी प्रदीप में प्रकाशित होते थे। उनके निबंध सदा मौलिक और भावना पूर्ण होते थे। वह इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें पुस्तकें लिखने के लिए अवकाश ही नहीं मिलता था। अत्यन्त व्यस्त समय होते हुए भी उन्होंने 'सौ अजान एक सुजान', 'रेल का विकट खेल', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'बाल विवाह' तथा 'भाग्य की परख' आदि छोटी-मोटी दस-बारह पुस्तकें लिखीं। वैसे आपने निबंधों के अतिरिक्त कुछ नाटक, कहानियाँ और उपन्यास भी लिखे हैं।

प्रमुख कृतियाँ

1. भट्ट जी ने हिन्दी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में लिखा। उन्हें मूलरूप से निबन्ध लेखक के रूप में जाना जाता है, लेकिन उन्होंने उपन्यास और नाटक भी लिखे।
2. निबन्ध संग्रह–साहित्य सुमन और भट्ट निबन्धावली। आत्मनिर्भरता (1893)।
3. उपन्यास–नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान, रहस्यकथा।
4. मौलिक नाटक–दमयन्ती स्वयंवर, बाल-विवाह, चन्द्रसेन, रेल का विकट खेल, आदि।
5. अनुवाद–भट्ट जी ने बंगला तथा संस्कृत के नाटकों के अनुवाद भी किए जिनमें वेणीसंहार, मृच्छकटिक, पद्मावती आदि प्रमुख हैं।

भाषा

भाषा की दृष्टि से अपने समय के लेखकों में भट्ट जी का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने अपनी रचनाओं में यथाशक्ति शुद्ध हिंदी का प्रयोग किया। भावों के अनुकूल शब्दों का चुनाव करने में भट्ट जी बड़े कुशल थे। कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी उन्होंने सुंदर ढंग से किया है। भट्ट जी की भाषा में जहाँ तहाँ पूर्वीपन की झलक मिलती है। जैसे- समझा-बुझा के स्थान पर समझाय-बुझाय लिखा गया है। बालकृष्ण भट्ट की भाषा को दो कोटियों में रखा जा सकता है। प्रथम कोटि की भाषा तत्सम शब्दों से युक्त है। द्वितीय कोटि में आने वाली भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ तत्कालीन उर्दू, अरबी, फारसी तथा ऑग्ल भाषीय शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। वह हिन्दी की परिधि का विस्तार करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने भाषा को विषय एवं प्रसंग के अनुसार प्रचलित हिन्दीतर शब्दों से भी समन्वित किया है। आपकी भाषा जीवंत तथा चित्ताकर्षक है। इसमें यत्र-तत्र पूर्वी बोली के प्रयोगों के साथ-साथ मुहावरों का प्रयोग भी किया गया है, जिससे भाषा अत्यन्त रोचक और प्रवाहमयी बन गई है।

वर्ण्य विषय

भट्ट जी ने जहाँ आँख, कान, नाक, बातचीत जैसे साधारण विषयों पर लेख लिखे हैं, वहाँ आत्मनिर्भरता, चारु चरित्र जैसे गंभीर विषयों पर भी लेखनी चलाई है। साहित्यिक और सामाजिक विषय भी भट्ट जी से अछूते नहीं बचे। 'चंद्रोदय' उनके साहित्यिक निबंधों में से है। समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए उन्होंने सामाजिक निबंधों की रचना की। भट्ट जी के निबंधों में सुरुचि-संपन्नता, कल्पना, बहुवर्णन शीलता के साथ-साथ हास्य व्यंग्य के भी दर्शन होते हैं।

शैली

भट्ट जी की लेखन-शैली को भी दो कोटियों में रखा जा सकता है। प्रथम कोटि की शैली को परिचयात्मक शैली कहा जा सकता है। इस शैली में उन्होंने कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। द्वितीय कोटि में आने वाली शैली गूढ़ और गंभीर है। इस शैली में भट्ट जी को अधिक नैपुण्य प्राप्त है। आपने 'आत्म-निर्भरता' तथा 'कल्पना' जैसे गम्भीर विषयों के अतिरिक्त, 'आँख', 'नाक', तथा 'कान', आदि अति सामान्य विषयों पर भी सुन्दर निबंध लिखे हैं।

आपके निबंधों में विचारों की गहनता, विषय की विस्तृत विवेचना, गम्भीर चिन्तन के साथ एक अनूठापन भी है। यत्र-तत्र व्यंग्य एवं विनोद उनकी शैली को मनोरंजक बना देता है। उन्होंने हास्य आधारित लेख भी लिखे हैं, जो अत्यन्त शिक्षादायक हैं। भट्ट जी का गद्य, गद्य न होकर गद्यकाव्य सा प्रतीत होता है। वस्तुत: आधुनिक कविता में पद्यात्मक शैली में गद्य लिखने की परंपरा का सूत्रपात श्री बालकृष्ण भट्ट जी ने ही किया था।

1. वर्णनात्मक शैली- वर्णनात्मक शैली में भट्ट जी ने व्यावहारिक तथा सामाजिक विषयों पर निबंध लिखे हैं। जन साधारण के लिए भट्ट जी ने इसी शैली को अपनाया। उनके उपन्यास की शैली भी यही है, किंतु इसे उनकी प्रतिनिधि शैली नहीं कहा जा सकता।

इस शैली की भाषा सरल और मुहावरेदार है। वाक्य कहीं छोटे और कहीं बड़े हैं।

2. विचारात्मक शैली- भट्ट जी द्वारा गंभीर विषयों पर लिखे गए निबंध इसी शैली के अंतर्गत आते हैं। तर्क और विश्वास, ज्ञान और भक्ति, संभाषण आदि निबंध विचारात्मक शैली के उदाहरण हैं।

इस शैली की भाषा में संस्कृत के शब्दों की अधिकता है।

3. भावात्मक शैली- इस शैली का प्रयोग भट्ट जी ने साहित्यिक निबंधों में किया है। इसे भट्ट जी की प्रतिनिधि शैली कहा जा सकता है।

इस शैली में शुद्ध हिंदी का प्रयोग हुआ है। भाषा प्रवाहमयी, संयत और भावानुकूल है। इस शैली में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है। अलंकारों के प्रयोग से भाषा में विशेष सौंदर्य आ गया है। भावों और विचार के साथ कल्पना का भी सुंदर समन्वय हुआ। इसमें गद्य काव्य जैसा आनंद होता है। चंद्रोदय निबंध का एक अंश देखिए- यह गोल-गोल प्रकाश का पिंड देख भाँति-भाँति की कल्पनाएँ मन में उदय होती है कि क्या यह निशा अभिसारिका के मुख देखने की आरसी है या उसके कान का कुंडल अथवा फूल है यह रजनी रमणी के ललाट पर दुक्के का सफेद तिलक है।

4. व्यंग्यात्मक शैली- इस शैली में हास्य और व्यंग्य की प्रधानता है। विषय के अनुसार कहीं व्यंग्य अत्यंत मार्मिक और तीखा हो गया है।

इस शैली की भाषा में उर्दू शब्दों की अधिकता है और वाक्य छोटे-छोटे हैं।

साहित्य सेवा और स्थान

भारतेंदु काल के निबंध-लेखकों में भट्ट जी का सर्वोच्च स्थान है। उन्होंने पत्र, नाटक, काव्य, निबंध, लेखक, उपन्यासकार अनुवादक विभिन्न रूपों में हिंदी की सेवा की और उसे धनी बनाया।

साहित्य की दृष्टि से भट्ट जी के निबंध अत्यंत उच्चकोटि के हैं। इस दिशा में उनकी तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार चार्ल्स लैंब से की जा सकती है। गद्य काव्य की रचना भी सर्वप्रथम भट्ट जी ने ही प्रारंभ की। इनसे पूर्वक हिंदी में गद्य काव्य का नितांत अभाव था।

व्यावसायिक जीवन

कुछ समय के लिए बालकृष्ण भट्ट 'जमुना मिशन स्कूल' में संस्कृत के अध्यापक भी रहे, पर अपने धार्मिक विचारों के कारण इन्हें पद त्याग करना पड़ा। विवाह हो जाने पर जब इन्हें अपनी बेकारी खलने लगी, तब यह व्यापार करने की इच्छा से कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) भी गए, परन्तु वहाँ से शीघ्र ही लौट आये और संस्कृत साहित्य के अध्ययन तथा हिन्दी साहित्य की सेवा में जुट गए। यह स्वतंत्र रूप से लेख लिखकर हिन्दी साप्ताहिक और मासिक पत्रों में भेजने लगे तथा कई वर्ष तक प्रयाग में संस्कृत के अध्यापक रहे। भट्टजी प्रयाग से 'हिन्दी प्रदीप' मासिक पत्र का निरंतर घाटा सहकर 32 वर्ष तक उसका सम्पादन करते रहे। 'हिन्दी प्रदीप' बंद होने के बाद 'हिन्दी शब्दसागर' का संपादन कार्य भी इन्होंने कुछ समय तक देखा, पर अस्वस्थता के कारण इन्हें यह कार्य छोड़ना पड़ा।

कार्यक्षेत्र

बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमधन'

बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमधन' हिन्दी साहित्यकार थे। वे भारतेन्दु मण्डल के उज्जवलतम नक्षत्र थे।

जीवनी

'प्रेमधन' जी पं. गुरुचरणलाल उपाध्याय के पुत्र थे। गुरुचरणलाल उपाध्याय, कर्मनिष्ठ तथा विद्यानुरागी ब्राह्मण थे। संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार

में आपने तन-मन-धन से योगदान किया। इस तपस्वी एवं विद्याप्रेमी ब्राह्मण के उपाध्याय जी ज्येष्ठ पुत्र थे। आप सरयूपारीण ब्राह्मण कुलोद्भूत भारद्वाज गोत्रीय खोरिया उपाध्याय थे। आपका जन्म भाद्र कृष्ण षष्ठी, संवत् 1912 तदनुसार 1 सितम्बर 1855 ई0 को दत्तापुर, आजमगढ़ में हुआ था। इनकी माता ने मीरजापुर में हिंदी अक्षरों का ज्ञान कराया। फारसी की शिक्षा का आरम्भ भी घर पर करा दिया गया। अंग्रेजी शिक्षा के लिए आप गोंडा (अवध) भेजे गए। यहाँ आपका संपर्क अयोध्यानरेश महाराज सर प्रतापनारायण सिंह (ददुआ साहेब), महाराज उदयनारायण सिंह, लाला त्रिलोकी नाथ प्रभृत ताल्लुकेदारों से हुआ। इस संसर्गज गुण से आपको मृगया, गजसंचालन, निशानेबाजी, घोड़ासवारी आदि ताल्लुकदारी शौकों में रुचि हुई। उच्च शिक्षा पाने के लिए संवत् 1924 में फैजाबाद चले आए। पैत्रिक व्यवसाय और रियासत के प्रबंध के लिए मीरजापुर आ जाना पड़ा।

चौधरी गुरुचरणलाल विद्याव्यसनी थे। उन्होंने अंग्रेजी, हिंदी और फारसी के साथ ही साथ संस्कृत की शिक्षा की व्यवस्था की तथा पं. रामानन्द पाठक को अभिभावक शिक्षक नियुक्त किया। पाठक जी काव्यमर्मी एवं रसज्ञ थे। इनके साहचर्य से कविता में रुचि हुई। इन्हीं के उत्साह और प्रेरणा से पद्यरचना करने लगे। संपन्नता और यौवन के संधिकाल में आपका झुकाव संगीत की ओर हुआ और ताल, लय, राग, रागिनी का आपको परिज्ञान हो गया विशेषत: इसलिए कि वे रसिक व्यक्ति थे और रागरंग में अपने को लिप्त कर सके थे। संवत् 1928 में कलकत्ते से अस्वस्थ होकर आए और लंबी बीमारी में फँस गए। इसी बीमारी के दौरान में आपकी पं. इन्द्र नारायण सांगलू से मैत्री हुई। सांगलू जी शायरी करते थे और अपने मित्रों को शायरी करने के लिए प्रेरित भी करते। इस संगत से नज्मों और गजलों की ओर रुचि हुई। उर्दू फारसी का आपको गहरा ज्ञान था ही। अस्तु, इन रचनाओं के लिए 'अब्र' (तखल्लुस) उपनाम रखकर गजल, नज्म और शेरों की रचना करने लगे। सांगलू के माध्यम से आपकी भारतेन्दु बाबू, हरिश्चन्द्र से मैत्री का सूत्रपात हुआ। धीरे-धीरे यह मैत्री इतनी प्रगाढ़ हुई कि भारतेन्दु जी के रंग में प्रेमधन जी पूर्णतया पग गए, यहाँ तक कि रचनाशक्ति, जीवनपद्धति और वेश-भूषा से भी भारतेन्दु जीवन अपना लिया।

वि. सं. 1930 में प्रेमधन जी ने 'सद्धर्म सभा' तथा 1931 वि. सं. 'रसिक समाज' की मीरजापुर में स्थापना की। संवत् 1933 वि. में 'कवि-वचन-सुधा' प्रकाशित हुई, जिसमें इनकी कृतियों का प्रकाशन होता। उसका स्मरण चौधरी जी की मीरजापुर की कोठी का धूलिधूसरित नृत्यकक्ष

आज भी कराता है। अपने प्रकाशनों की सुविधा के लिए इसी कोठी में आनंदकादंबिनी मुद्रणालय खोला गया। संवत् 1938 में 'आनंदकादंबिनी' नामक मासिक पत्रिका की प्रथम माला प्रकाशित हुई। संवत् 1949 में नागरी नीरद नामक साप्ताहिक का संपादन और प्रकाशन आरंभ किया। प्रेमधन जी के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का पारिवारिक-सा सम्बन्ध था। शुक्ल जी शहर के रमईपट्टी मुहल्ले में रहते थे और लंडन मिशन स्कूल में ड्राइंग मास्टर थे। आनन्द कादंबिनी प्रेस में छपाई भी देख लेते थे। चौधरी बंधुओं की सत्प्रेरणा और साहचर्य से अयोध्यानरेश ने युगप्रसिद्ध छन्दशास्त्र और रसग्रन्थ रसकुसुमाकर की रचना करवाई। रसकुसमाकर की व्याख्याशैली, संकलन, भाव, भाषा, चित्र चित्रण में आज तक इस बेजोड़ ग्रंथ को चुनौती देने में कोई रचना समर्थ नहीं हो सकी है, यद्यपि यह ग्रंथ निजी व्यय पर निजी प्रसारण के लिए मुद्रित हुआ था। भारतेंदु जी की आयु 34 वर्ष की थी। मित्र प्रेमधन जी ने इससे पूरी दूनी आयु पाई यानी 68 वर्ष की अवस्था में फाल्गुन शुक्ल 14, संवत् 1978 को आपकी इहलीला समाप्त हो गई।

प्रेमघन जी आधुनिक हिंदी के आविर्भाव काल में उत्पन्न हुए थे। उनके अनेक सममायिक थे जिन्होंने हिंदी को हिंदी का रूप देने में संपूर्ण योगदान किया। इनमें प्रमुख प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, पं. सुधाकर द्विवेदी, पं. गोविन्दनारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, बाबू राधाकृष्णदास, पं. किशोरीलाल गोस्वामी तथा रामकृष्ण वर्मा प्रभृत साहित्यिक थे।

कृतित्त्व

प्रेमधन की रचनाओं का क्रमशः तीन खंडों में विभाजन किया जाता है–1. प्रबंध काव्य 2. संगीत काव्य 3. स्फुट निबंध। वे कवि ही नहीं उच्च कोटि के गद्यलेखक और नाटककार भी थे। गद्य में निबंध, आलोचना, नाटक, प्रहसन, लिखकर अपनी साहित्यिक प्रतिभा का बड़ी पटुता से निर्वाह किया है। आपकी गद्य रचनाओं में हास परिहास का पुटपाक होता था। कथोपकथन शैली का आपके 'दिल्ली दरबर में मित्रमंडली के यार में देहलवी उर्दू का फारसी शब्दों से संयुक्त चुस्त मुहावरेदार भाषा का अच्छा नमूना है। गद्य में खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग (संसृप्त के तत्सम तथा तद्भव शब्द) आलंकारिक योजना के साथ प्रयुक्त हुआ। प्रेमधन की गद्यशैली की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि खड़ी बोली गद्य के वे प्रथम आचार्य थे। समालोच्य पुस्तक के विषयों का

अच्छी तरह विवेचन करके उसके विस्तृत निरूपण की चाल उन्होंने चलाई (रामचंद्र शुक्ल)।

उन्होंने कई नाटक लिखे हैं जिनमें 'भारत सौभाग्य' 1888 में कांग्रेस महाधिवेशन के अवसर पर खेले जाने के लिए लिखा गया था।

प्रेमधन का काव्यक्षेत्र विस्तृत था। वे ब्रजभाषा को कविता की भाषा मानते थे। प्रेमधन ने जिस प्रकार खड़ी बोली का परिमार्जन किया उनके काव्य से स्पष्ट है। 'बेसुरी तान' शीर्षक लेख में आपने भारतेंदु की आलोचना करने में भी चूक न की। प्रेमधन कृतियों का संकलन उनके पौत्र दिनेशनारायण उपाध्याय ने किया है जिसका 'प्रेमधन सर्वस्व' नाम से हिंदी साहित्य सम्मेलन ने दो भागों में प्रकाशन किया है। प्रेमधन हिंदी साहित्य सम्मेलन के तृतीय कलकत्ता अधिवेशन के सभापति (सं. 1912) मनोनीत हुए थे।

कृतियाँ

(1) भारत सौभाग्य (2) प्रयाग रामागमन, संगीत सुधासरोवर, भारत भाग्योदय काव्य।

गद्य-पद्य के अलावा आपने लोकगीतात्मक कजली, होली, चैता आदि की रचना भी की है, जो ठेठ भावप्रवण मीरजापुरी भाषा के अच्छे नमूने हैं और संभवत: आज तक बेजोड़ भी। कजली कादंबिनी में कजलियों का संग्रह है। प्रेमधन जी का स्मरण हिंदी साहित्य के प्रथम उत्थान का स्मरण है।

पत्रिका– 1881 को मिर्जापुर से 'आनन्द कादम्बनी' इनके द्वारा ही संपादित की गई।

5

ठाकुर जगमोहन सिंह

ठाकुर जगमोहन सिंह प्रसिद्ध साहित्यकार थे। इनका नाम 'भारतेन्दु युग' के सहृदय साहित्य सेवियों में आता है। ये मध्य प्रदेश स्थित विजयराघवगढ़ के राजकुमार और अपने समय के बहुत बड़े विद्यानुरागी थे। आप हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के भी अच्छे ज्ञाता थे। इनके समस्त कृतित्त्व पर संस्कृत अध्ययन की व्यापक छाप है। जगमोहन सिंह ने ब्रजभाषा के कवित्त और सवैया छन्दों में कालिदास कृत 'मेघदूत' का बहुत सुन्दर अनुवाद भी किया है।

ठाकुर जगमोहन सिंह (4 अगस्त 1857 –) हिन्दी के भारतेन्दुयुगीन कवि, आलोचक और उपन्यासकार थे। उन्होंने सन् 1880 से 1882 तक धमतरी में और सन् 1882 से 1887 तक शिवरीनारायण में तहसीलदार और मजिस्ट्रेट के रूप में कार्य किया। छत्तीसगढ़ के बिखरे साहित्यकारों को जगन्मोहन मंडल बनाकर एक सूत्र में पिरोया और उन्हें लेखन की सही दिशा भी दी। जगन्मोहन मंडल काशी के भारतेन्दु मंडल की तर्ज में बनी एक साहित्यिक संस्था थी।

हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य की उन्हें अच्छी जानकारी थी। ठाकुर साहब मूलत: कवि ही थे। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा नई और पुरानी दोनों प्रकार की काव्यप्रवृत्तियों का पोषण किया।

जीवन परिचय

ठाकुर जगमोहन सिंह का जन्म विजयराघवगढ़ रियासत में ठाकुर सरयू सिंह के राज परिवार में में हुआ था। 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में ठा.

सरयू सिंह ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। फलस्वरूप अंग्रेजों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और उन्हें काले पानी की सजा सुनाई गई। लेकिन अंग्रेजी हुकूमत में सजा भोगने की बजाय ठा. सरयू सिंह ने मौत को गले लगना उचित समझा। जगमोहन सिंह ऐसे ही क्रांतिकारी, मेधावी एवं स्वप्न दृष्टा सुपुत्र थे।

अपनी शिक्षा के लिए काशी आने पर उनका परिचय भारतेंदु और उनकी मंडली से हुआ। बनारस के क्वींस कालेज में अध्ययन के दौरान वे भारतेंदु हरिश्चंद्र के सम्पर्क में आए तथा यह सम्पर्क प्रगाढ़ मैत्री में बदल गया जो कि जीवन पर्यन्त बनी रही।

1878 में शिक्षा समाप्ति के बाद वे विजयराघवगढ़ आ गए। दो साल पश्चात् 1880 में धमतरी (छत्तीसगढ़) में तहसीलदार नियुक्त किये गए। बाद में तबादले पर शिवरीनारायण आये। कहा जाता है कि शिवरीनारायण में विवाहित होते हुए भी इन्हें 'श्यामा' नाम की स्त्री से प्रेम हो गया। शिवरीनारायण में रहते हुए इन्होने श्यामा को केंद्र में रख कर अनेक रचनाओं का सृजन किया, जिनमे हिंदी का अत्यंत भौतिक एवं दुर्लभ उपन्यास श्याम-स्वप्न प्रमुख है।

कृतियाँ

उनके तीन काव्यसंग्रह प्रकाशित हैं–

1. 'प्रेम-संपत्ति-लता' (सं. 1942 वि.)।
2. 'श्यामालता', और
3. 'श्यामासरोजिनी' (सं. 1943)।

इसके अतिरिक्त इन्होंने कालिदास के 'मेघदूत' का बड़ा ही ललित अनुवाद भी ब्रजभाषा के कबित्त सवैयों में किया है। हिंदी निबंधों के प्रथम उत्थान काल के निबंधकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

शैली पर उनके व्यक्तित्त्व की अनूठी छाप है। वह बड़ी परिमार्जित, संस्कृतगर्भित, काव्यात्मक और प्रवाहपूर्ण होती हैं। कहीं-कहीं पंडिताऊ शैली के चिंत्य प्रयोग भी मिल जाते हैं। 'यामास्वप्न' उनकी प्रमुख गद्यकृति है, जिसका संपादन कर डॉ. श्रीकृष्णलाल ने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कराया है। इसमें गद्य-पद्य दोनों हैं, किंतु पद्य की संख्या गद्य की अपेक्षा बहुत कम है। इसे भावप्रधान उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। आद्योपांत शैली वर्णानात्मक है। इसमें चरित्रचित्रण पर ध्यान न देकर प्रकृति और प्रेममय जीवन का ही चित्र अंकित किया गया है। कवि कीशृंगारी रचनाओं की भावभूमि पर्याप्त सरस और

हृदयस्पर्शी होती है। कवि में सौंदर्य और सुरम्य रूपों के प्रति अनुराग की व्यापक भावना थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का इसीलिए कहना था कि 'प्राचीन संस्कृत साहित्य' के अभ्यास और विंध्याटवी के रमणीय प्रदेश में निवास के कारण विविध भावमयी प्रकृति के रूपमाधुर्य की जैसी सच्ची परख जैसी सच्ची अनुभूति इनमें थी वैसी उस काल के किसी हिंदी कवि या लेखक में नहीं पाई जाती (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 474, पंचम संस्करण)। मानवीय सौंदर्य को प्राकृतिक सौंदर्य के संदर्भ में देखने का जो प्रयास ठाकुर साहब ने छायावादी युग के इतन दिनों पहले किया इससे उनकी रचनाएँ वास्तव में 'हिंदी काव्य में एक नूतन विधान' का आभास देती हैं। उनकी ब्रजभाषा काफी परिमार्जित और शैली काफी पुष्ट थी।

उनकी दो कुण्डलियाँ प्रस्तुत हैं-

इक थाना तहसील के मध्य धर एक फुटि।
उत बजार सों प्रबल जल निकस्यो अट्टा टूटि।
निकस्यों अट्टा टूटि फुटि गिजि परीं अटारी
गिरि गेह तजि देह देहरी और दिवारी।
(क)जोगी डिफा सुदीप मनौ तंह जल जाना
उत पुरब सब पंथ रोकि घेरवौ त थाना।
पूरब केरा के निकट पश्चिम निकट खरौद
लगभग फेर लुहारसी उत्तर ग्रामहिं कोद
उत्तर ग्रामहि कोद जहां टिकरी पारा है
दच्छिन हसुवा खार पार लौ जल धारा है
जंह लौ देखो नजर पसारत जल जल घेरा
कैय्यक कोसन फैलि घेरि फिरि पूरब केरा।

जन्म तथा शिक्षा

ठाकुर जगमोहन सिंह का जन्म श्रावण शुक्ल चतुर्दशी, संवत 1914 (1857 ई.) को हुआ था। वे विजयराघवगढ़, मध्य प्रदेश के राजकुमार थे। अपनी शिक्षा के लिए काशी आने पर उनका परिचय भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनकी मंडली से हुआ। हिन्दी के अतिरिक्त वे संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य की भी अच्छी जानकारी रखते थे।

एक प्रेम-पथिक कवि

ठाकुर साहब मूलत: कवि ही थे। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा नई और पुरानी दोनों प्रकार की काव्य प्रवृत्तियों का पोषण किया। उन्होंने जो गद्य लिखा है, उस पर भी उनके कवि-व्यक्तित्त्व की स्पष्ट छाप है। जगमोहन सिंह उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के उन स्वनामधन्य कवियों में प्रमुख माने जाते हैं, 'जिन्होंने एक ओर तो हिन्दी साहित्य की नवीन गति के प्रर्वतन में योग दिया, दूसरी ओर पुरानी परिपाठी की कविता के साथ भी अपना पूरा सम्बन्ध बनाये रखा।' इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आपको एक प्रेम-पथिक कवि के रूप में स्मरण किया है।

काव्य भाषा

जगमोहन सिंह की काव्य भाषा परिमार्जित ब्रजभाषा थी। सरस शृंगारी भावभूमि को लेकर कवित्त-सवैया की रचना करने में आप बहुत निपुण थे। उनकी रचनाओं की एक बहुत बड़ी विशेषता इस बात में है कि वे प्रकृति के ताजा मनोहर चित्रों से अलंकृत हैं। उनमें प्रकृति के विस्तृत सौन्दर्य के प्रति व्यापक अनुराग दृष्टि बिम्बित हुई है। छायावाद युग आरम्भ होने के कोई 25-30 वर्ष पूर्व ही जगमोहन सिंह की कृतियों में मानवीय सौन्दर्य को प्राकृतिक सौन्दर्य की तुलनामूलक पृष्ठभूमि में देखने-परखने का एक संकेत उपलब्ध होता है और उस दृष्टि से उनकी तत्कालीन रचनाएँ 'हिन्दी काव्य में एक नूतन विधान का आभास देती हैं।'

कविता संग्रह

जगमोहन सिंह जी की कविताओं के तीन संग्रह प्रसिद्ध हैं-
प्रेम सम्पत्ति लता (1885 ई.)
श्यामा लता (1885 ई.)
श्यामा-सरोजिनी (1886 ई.)

शृंगारिक रचना

'प्रेम सम्पत्ति लता' से इनकी एक बहुउद्धृत शृंगारिक रचना (सवैया) निम्नांकित है-

'अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाउँ गरे लगि कै छतियाँ। मनकी करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजिय री रस की कतियाँ।।

हम हारि अरि करि कोटि उपाय, लिखी बहु नेह भरी पतियाँ। जगमोहन मोहनी मूरति के बिना कैसे कटैं दु:ख की रतियाँ।।

निबन्धकार

ठाकुर जगमोहन सिंह हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के भी अच्छे ज्ञाता थे। उनके समस्त कृतित्त्व पर संस्कृत अध्ययन की व्यापक छाप है। ब्रजभाषा के कवित्त और सवैया छन्दों में कालिदास कृत 'मेघदूत' का बहुत सुन्दर अनुवाद उन्होंने किया है। जगमोहन सिंह जी अपने समय के उत्कृष्ट गद्य लेखक भी रहे। हिन्दी निबन्ध के प्रथम उत्थान काल के निबन्धकारों में उनका स्थान महत्त्वपूर्ण है। वे ललित शैली के सरस लेखक थे। उनकी भाषा बड़ी परिमार्जित एवं संस्कृतगर्भित थी और शैली प्रबाह युक्त तथा गद्य काव्यात्मक। फिर भी हिन्दी के आरम्भिक गद्य में उपलब्ध होने वाले पूर्वी प्रयोगों और 'पण्डिताऊपन' की चिंत्य शैली से आप बच नहीं पाये हैं। 'धरे हैं', 'हम क्या करैं', 'चाहती हौ', 'जिसै दूँ' और 'ढोल पिटै' जैसे-अशुद्ध प्रयोग उनकी रचनाओं में बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं।

जगमोहन सिंह ने आधुनिक युग के द्वार पर खड़े होकर शायद पहली बार प्रकृति को वास्तविक अनुराग-दृष्टि से देखा था। आपके कविरूप की यह एक विशेषता है। निबन्धकार के रूप में आपने हिन्दी की आरम्भिक गद्यशैली को एक साहित्यिक व्यवस्था प्रदान की थी।

कृति 'श्यामा स्वप्न'

'श्यामा स्वप्न' जगमोहन सिंह की प्रमुख गद्य कृति है। इसका एक प्रामाणिक स्वरूप श्रीकृष्णलाल द्वारा सम्पादित होकर काशी की 'नागरी प्रचारिणी सभा' से प्रकाशित हो चुका है। लेखक के समसामयिक युग के सुप्रसिद्ध साहित्यकार अम्बिकादत्त व्यास ने इस कृति को गद्य-काव्य कहा है। स्वयं लेखक ने इसे 'गद्यप्रधान चार खण्डों में एक कल्पना' कहा है। यह वाक्यांश इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर अंकित है। इसमें गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग किया गया है, किंतु गद्य की तुलना में पद्य की मात्रा बहुत कम है। यह कृति वस्तुत: एक भावप्रधान उपन्यास है। उसकी शैली वर्णनात्मक है और इसमें चरित्र-चित्रण

की उपेक्षा करके प्रकृति तथा प्रेममय जीवन के सुन्दर चित्र अंकित किये गये हैं।

निधन

ठाकुर जगमोहन सिंह की मृत्यु 42 वर्ष की आयु में 4 मार्च, 1899 ई. में हुई।

जगमोहन मण्डल

जगमोहन मंडल, हिन्दी की एक साहित्यिक संस्था थी, जिसका निर्माण काशी के भारतेन्दु मंडल की तर्ज पर हुआ था। इसके संस्थापक भारतेन्दुयुगीन कवि, आलोचक और उपन्यासकार ठाकुर जगमोहन सिंह थे। छत्तीसगढ़ में ठाकुर जगमोहनसिंह का साहित्यिक वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने सन् 1880 से 1882 तक धमतरी में और सन् 1882 से 1887 तक शिवरीनारायण में तहसीलदार और मजिस्ट्रेट के रूप में कार्य किया। यही नहीं, छत्तीसगढ़ के बिखरे साहित्यकारों को जगन्मोहन मंडल बनाकर एक सूत्र में पिरोया और उन्हें लेखन की सही दिशा भी दी।

जगमोहन मण्डल के माध्यम से छत्तीसगढ़ के साहित्यकार शिवरीनारायण में आकर साहित्य-साधना करने लगे। उस काल के अन्यान्य साहित्यकारों के शिवरीनारायण में आकर साहित्य साधना करने का उल्लेख तत्कालीन साहित्य में हुआ है। इनमें रायगढ़ के पं. अनंतराम पांडेय, रायगढ़-परसापाली के पं. मेदिनीप्रसाद पांडेय, बलौदा के पं. वेदनाथ शर्मा, बालपुर के मालगुजार पं. पुरूसोत्तम प्रसाद पांडेय, बिलासपुर के जगन्नाथ प्रसाद भानु, धमतरी के काव्योपाध्याय हीरालाल, बिलाईगढ़ के पं. पृथ्वीपाल तिवारी और उनके अनुज पं. गणेश तिवारी और शिवरीनारायण के पं. मालिकराम भोगहा, पं. हीराराम त्रिपाठी, गोविंदसाव, महंत अर्जुनदास, महंत गौतमदास, पं. विश्वेस्वर वर्मा, पं. ऋषि शर्मा और दीनानाथ पांडेय आदि प्रमुख थे।

भारतेन्दु युगीन साहित्यकार गोविंद साव

भारतेन्दु युगीन साहित्यकार गोविंद सावप्रो. अश्विनी केशरवानीछत्तीसगढ़ में भारतेन्दु युगीन कवि, आलोचक और उपन्यासकार ठाकुर जगमोहनसिंह का साहित्यिक वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने सन् 1880 से

1882 तक धमतरी में और सन् 1882 से 1887 तक शिवरीनारायण में तहसीलदार और मजिस्ट्रेट के रूप में कार्य किया है। यही नहीं बल्कि छत्तीसगढ़ के बिखरे साहित्यकारों को जगन्मोहन मंडल बनाकर एक सूत्र में पिरोया और उन्हें लेखन की सही दिशा भी दी। जगन्मोहन मंडल कांशी के भारतेन्दु मंडल की तर्ज में बनी एक साहित्यिक संस्था थी। इसके माध्यम से छत्तीसगढ़ के साहित्यकार शिवरीनारायण में आकर साहित्य साधना करने लगे। उस काल के अन्यान्य साहित्यकारों के शिवरीनारायण में आकर साहित्य साधना करने का उल्लेख तत्कालीन साहित्य में हुआ है। इनमें रायगढ़ के पं. अनंतराम पांडेय, रायगढ़-परसापाली के पं. मेदिनीप्रसाद पांडेय, बलौदा के पं. वेदनाथ 'वर्मा, बालपुर के मालगुजार पं. पुरूसोत्तम प्रसाद पांडेय, बिलासपुर के जगन्नाथ प्रसाद भानु, धमतरी के काव्योपाध्याय हीरालाल, बिलाईगढ़ के पं. पृथ्वीपाल तिवारी और उनके अनुज पं. गणेश तिवारी और शिवरीनारायण के पं. मालिकराम भोगहा, पं. हीराराम त्रिपाठी, गोविंदसाव, महंत अर्जुनदास, महंत गौतमदास, पं. विश्वेस्वर वर्मा, पं. ऋषि 'वर्मा और दीनानाथ पांडेय आदि प्रमुख थे।

शिवरीनारायण में जन्में, पले बढ़े और बाद में सरसींवा निवासी कवि शुकलाल प्रसाद पांडेय ने छत्तीसगढ़ गौरव में ऐसे अनेक साहित्यकारों का नामोल्लेख किया है –नारायण, गोपाल मिश्र, माखन, दलगंजन।बख्तावर, प्रहलाद दुबे, रेवा, जगमोहन।हीरा, गोविंद, उमराव, विज्ञपति, भोरा रघुवर।विष्णुपुरी, दृगपाल, साव गोविंद, बज गिरधर।विश्वनाथ, बिसाहू, उमर नृप लक्षमण छत्तीस कोट कवि।हो चुके दिवंगत ये सभी प्रेम, मीर, मालिक सुकवि।।इस प्रकार उस काल में शिवरीनारायण सांस्कृतिक के साथ ही साहित्यिक तीर्थ भी बन गया था। द्विवेदी युग के अनेक साहित्यकारों- पं. लोचनप्रसाद पांडेय, पं. शुकलाल पांडेय, नरसिंहदास वैष्णव, सरयूप्रसाद तिवारी मधुकर, ज्वालाप्रसाद, रामदयाल तिवारी, प्यारेलाल गुप्त, छेदीलाल बैरिस्टर, पं. रविशंकर शुक्ल, सुंदरलाल आदि ने शिवरीनारायण की सांस्कृतिक-साहित्यिक भूमि को प्रणाम किया है। मेरा जन्म इस पवित्र नगरी में ऐसे परिवार में हुआ है, जो लक्ष्मी और सरस्वती पुत्र थे। पं. शुकलाल पांडेय ने छत्तीसगढ़ गौरव में मेरे पूर्वज गोविंदसाव को भारतेन्दु युगीन कवि के रूप में उल्लेख किया है-रामदयाल समान यहीं हैं अनुपम वाग्मी।हरीसिंह से राज नियम के ज्ञाता नामी।गोविंद साव समान यहीं हैं लक्ष्मी स्वामी।हैं गणेश से यहीं प्रचुर प्रतिभा अनुगामी।श्री धरणीधर पंडित सदृश्य यहीं बसे विद्वान हैं। हे महाभाग छत्तीसगढ़ ! बढ़ा रहे तब मान हैं।।हालांकि गोविंद साव की कोई रचना

आज उपलब्ध नहीं है, लेकिन शिवरीनारायण के साहित्यिक परिवेश में उन्होंने कोई न कोई रचना अवश्य लिखी होगी। मुझे साहित्यिक अभिरूचि उनकी विरासत में मिला है। मैं भगवान शबरीनारायण, हमारे कुलदेव महेश्वरनाथ महादेव और कुलदेवी माता शीतला का आशीर्वाद तथा चित्रोत्पलागंगा के संस्कार को प्रमुख मानता हूं। उन्हीं के आशीर्वाद से आज प्रदेश के साहित्य जगत में मैं अपनी पहचान बना सकने में समर्थ हो सका हूं। शिवरीनारायण का साहित्यिक परिवेश ठाकुर जगमोहनसिंह की ही देन थी। उन्होंने यहां दर्जन भर पुस्तकें लिखी और प्रकाशित करायी। शबरीनारायण जैसे सांस्कृतिक और धार्मिक स्थल के लोग, उनका रहन–सहन और व्यवहार उन्हें सज्जनाष्टक आठ सज्जन व्यक्तियों का परिचय लिखने को बाध्य किया।

भारत जीवन प्रेस बनारस से सन् 1884 में सज्जनाष्टक प्रकाशित हुआ। वे यहां के मालगुजार और पुजारी पंडित यदुनाथ भोगहा से अत्याधिक प्रभावित थे। भोगहा जी के पुत्र मालिकराम भोगहा ने तो ठाकुर जगमोहनसिंह को केवल अपना साहित्यिक गुरू ही नहीं बनाया बल्कि उन्हें अपना सब कुछ समर्पित कर दिया। उनके संरक्षण में भोगहा जी ने हिन्दी, अंगेजी, बंगला, उड़िया और उर्दू और मराठी साहित्य का अध्ययन किया, अनेक स्थानों की यात्राएं की और प्रबोध चंद्रोदय, रामराज्यवियोग और सती सुलोचना जैसे उत्कृष्ट नाटकों की रचना की, जिसका सफलता पूर्वक मंचन भी किया गया। इसके मंचन के लिए उन्होंने यहां एक नाटक मंडली भी बनायी थी। माखन वंश के श्री बलभद्र साव के सुपुत्र और श्री सूरजदीन साव के अनुज श्री विद्याधर साव के नेतृत्व में यहां एक 'केशरवानी नवयुवक नाटक मंडली बना था, जिसके माध्यम से न केवल माखन वंश के नवयुवकों, बल्कि नगर के नवोदित कलाकारों मंच मिला और अनेक नाटकों का सफलता पूर्वक मंचन किया गया। ठाकुर जगमोहनसिंह ने सज्जनाष्टक में माखन साव के बारे में लिखा है –माखन साहु राहु दारिद कहं अहै महाजन भारी। दीन्हो घर माखन अरू रोटी बहुविधि तिनहो मुरारी।। लच्छपती मुइ शरन जनन को टारत सकल कलेशा।द्रव्यहीन कहं है कुबेर सम रहत न दुःख को लेशा। दुओधाम प्रथमहि करि निज पग कांवर आप चढ़ाई। चार बीस शरदहु के बीते रीते गोलक नैना। लखि अंसार संसार पार कहं मुंदे दृग तजि नैना।। छत्तीसगढ़ के प्रतिष्ठित मालगुजारों में माखनसाव की गिनती होती थी। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि वे एक महाजन थे, जिनके घर में लक्ष्मी जी और कुबेर जी का वास था। वे न केवल धीर–गंभीर और प्रजाप्रिय थे, बल्कि धार्मिक और भक्तवत्सल भी

थे। उन्होंने महानदी के तट पर अपने कुलदेव महेश्वरनाथ महादेव का एक भव्य मंदिर का संवत् 1890 में निर्माण कराया था। इस मंदिर के बारे में ठाकुर जगमोहनसिंह ने अपने खंडकाव्य प्रलय में लिखा है –बाढ़त सरित बारि छिन-छिन में। चढ़ि सोपान घाट वट दिन मे।शिवमंदिर जो घाटहिं सौहै। माखन साहु रचित मन मोहै।।84।।चटशाला जल भीतर आयो। गैल चक्रधर गेह बहायो।पुनि सो माखन साहु निकेता।। पावन करि सो पान समेता।।87।। उनकी धार्मिकता और भक्ति को डां. भालचंद राव तैलंग ने 'छत्तीसगढ़ी, हल्बी, भतरी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' के अर्थतत्त्व पृ. 200 में उल्लेख किया है। विशेष घटना के कारण 'खिचकेदार' को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है-रतनपुर का मंदिर जहां पहले माखन साव ने एक साधु को खिचड़ी परोसी थी और जहां पकी हुई खिचड़ी से भरी पत्तल को फोड़कर शिवजी प्रकट हुए थे।

इस उद्धरण को रामलाल वर्मा द्वारा लिखित रायरतनपुर महात्म्य पृ 22 से लिया गया है। ऐसे पवित्र आत्मा माखन साव के अनुज श्री गोविंद साव के जगन्नाथपुरी की यात्रा और मनौती के रूप में जन्में उनके एकलौते पुत्र जगन्नाथ साव की धर्मप्रियता पर भी किसी को संदेह नहीं है। कदाचित् यही कारण है कि आज भी गोविंदसाव के वंशजों का मुंडन संस्कार जगन्नाथपुरी में किये जाने का विधान है। मेरे पिता जी, मेरा और मेरे बच्चों का मुंडन संस्कार भी पुरी में हुआ था। जगन्नाथ साव के एक मात्र पुत्र पचकौड़ साव हुए। माखन वंश में उनकी विद्वता की साख थी और इस वंश के लंबरदार आत्माराम भी उनकी दबंगता से प्रभावित थे। उन्हें साजापाली और दौराभाटा में खेती-किसानी का दायित्व सौंपा गया था, जिसे उन्होंने अपने चचेरे भाई महादेव साव के सहयोग से बखूबी निभाया। शिवरीनारायण में महादेव-पचकौड़ साव के नाम से व्यापार होता था और जब गांवों में व्यापार की शुरूवात हुई तब 05 वर्ष बाद शिवरीनारायण का खाता बंद कर साजापाली-दौराभाठा में महादेव-पचकौड़ साव के नाम से खाता शुरू किया गया, जो मालगुजारी उन्मूलन तक चलता रहा। गलत बातों का वे दबंगता से विरोध करते थे साथ ही मांगने पर उचित सलाह भी देते थे। आजादी के कुछ महिने बाद 17.10.1947 को उन्होंने स्वर्गारोहण किया। पचकौड़ साव के एक मात्र पुत्र राघव साव का जन्म चैत्र शुक्ल 2, संवत् 1972 को रात्रि 10 बजकर 33 मिनट को हुआ। उनका राशि नाम दुर्गाप्रसाद रखा गया था। परिवार की धार्मिकता का संस्कार उन्हें मिला और इसी परिवेश में परवरिश

होने के कारण धार्मिकता उनके जीवन का एक अंग हो गया। उन्होंने अपने जीवन में लगभग दो घंटे पूजा अवश्य किया करते थे। चारों धाम-बद्रीनाथ, द्वारिकाधाम, रामेश्वरम् और जगन्नाथपुरी की पूरी यात्रा उन्होंने की थी। गया श्राद्ध, प्रयाग और काशी श्राद्ध करने के साथ गंगासागर और बाबाधाम की यात्रा भी उन्होंने की। जीवन भर वे सात्विक रहे- सादा जीवन और उच्च विचार को उन्होंने अपनाया। और इलाहाबाद के महाकुंभ में एक माह का कल्पवास करने के बाद अपने भरे पूरे परिवार को शुक्रवार, दिनांक 24.11.1989 को दोपहर एक बजे 74 वर्ष जीवन का सुख भोगकर स्वर्गारोहण किया। उन्होंने मुझे रामायण और महाभारत की कहानियां सुनाकर धार्मिक वृत्ति से न केवल जोड़ा बल्कि मुझे रचनात्मक लेखन की प्रेरणा दी। मुझे इस दिशा में प्रेरित करने वाले माखन वंश के अंतिम लंबरदार श्री सूरजदीन साव भी थे। सर्व प्रथम विश्व हिंदु परिषद द्वारा आयोजित निबंध प्रतियोगिता में गीता के प्रसंगों पर निबंध लिखकर पुरस्कृत होकर लेखन की मैंने शुरूवात की। इस निबंध के लेखन में मुझे मेरे दादा श्री राघवप्रसाद के साथ ही श्री सूरजदीन साव का पूर्ण सहयोग मिला। वृद्ध प्रपितामह के साहित्यिक विरासत और महानदी का संस्कार पाकर मेरी लेखनी अविचल चलने लगी।ऐसा पहली बार हुआ और गोविंदसाव के वंश में एक-एक पुत्र की परंपरा टूटी और राघवप्रसाद के चार पुत्र क्रमशः देवालाल, सेवकलाल, होलीदास और हेमलाल हुए। होलीदास तो बचपन में ही काल कवलित हो गए लेकिन शेष तीनों पुत्रों ने अपने वंश को बढ़ाने में सफल हुए।

देवालाल के एक मात्र पुत्र अश्वीनी कुमार और पुत्री मीना बाई हुई। सेवकलाल के दो पुत्र संजय कुमार और नरेन्द्र कुमार तथा चार पुत्री मंजुलता, अंजुलता, स्नेहलता और मधुलता हुई। हेमलाल के दो पुत्र अतीत और अमित कुमार और एक मात्र पुत्री अल्पना हुई। इस प्रकार राघवप्रसाद के तीन पुत्र और पांच पौत्र हुए और उनकी वंश परंपरा बढ़ी। राघवप्रसाद के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में देवालाल का 05. 07. 1934 को जन्म हुआ। उनकी प्राथमिक शिक्षा शिवरीनारायण में और हाई स्कूल की शिक्षा सारंगढ़ और बिलासपुर में हुई। उच्च शिक्षा न कर पाने का उन्हें अफसोस अवश्य हुआ था, लेकिन मात्र 17 वर्ष की अल्पायु में उन्होंने घर-परिवार की जिम्मेदारी उठा लिए थे। अपने भाई-बहनों की शिक्षा दीक्षा से लेकर उनके विवाह और नौकरी लगाने तक तथा उनके बच्चों के भी विवाह आदि में पूरा सहयोग देकर अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन किया। देवालाल धीर, गंभीर और सुलझे हुए व्यक्ति थे। कदाचित् उनके इसी व्यक्तित्त्व

के कारण वे न केवल माखन वंश के बल्कि समाज और शिवरीनारायण, बेलादूला और साजापाली में अत्यंत लोकप्रिय थे। उन्होंने न जाने कितने परिवार को टूटने से बचाया और टूटे परिवार को जोड़ा है। वे अपनी पीढ़ी के एक मात्र व्यक्ति थे, जिन्होंने अपनी पैत्रिक वृत्ति महाजनी को अपनाया। उन्होंने शिवरीनारायण के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। आज की पीढ़ी उनके योगदान को शायद न समझ सके। लेकिन यह सत्य है कि शिवरीनारायण में गाम पंचायत के सफलतम सरपंच जहां माखन वंश के श्री तिजाउप्रसाद थे वहीं उनकी इस सफलता के पीछे यहां के उदितनारायण सुलतानिया, देवालाल केशरवानी, गोवर्धन शर्मा, सेवकराम श्रीवास और मोहम्मद अहमद खां का विशेष योगदान था। उनके कार्यकाल में ही यहां शिक्षा का विस्तार हुआ, अनेक स्कूल भवन बने, बिजली और सड़कें बनी, सब्जी बाजार लगने की शुरूवात हुई और जनपद पंचायत जांजगीर से साप्ताहिक मवेशी बाजार और छत्तीसगढ़ के महाकुंभ कहाने वाले मेले की व्यवस्था गाम पंचायत की मिली।

इस नगर में चिकित्सा सुविधा के लिए देवालाल ने मंत्रियों और अधिकारियों से मिलकर अपने बहनोई श्री बलदाउ प्रसाद केशरवानी को प्रेरित कर जहां 'प्रयाग प्रसाद केशरवानी शासकीय चिकित्सालय' की स्थापना करायी और डाक्टरों के रहने-खाने की सुविधा उपलब्ध करायी। इस चिकित्सालय में विद्युत व्यवस्था उन्होंने अपने दादा श्री पचकौड़ साव की स्मृति में कराया था। शासकीय प्राथमिक कन्या शाला को मात्र अपने मित्र श्री गणेश प्रसाद नारनोलिया से शर्त लगाकर खुलवाया था, जो आज शासकीय मिडिल कन्या स्कूल के रूप में संचालित है। मध्यप्रदेश शासन के मंत्रियों सर्वश्री डा. रामाचरण राय, श्री वेदराम, श्री बिसाहूदास महंत, श्री चित्रकांत जायसवाल, श्री बी. आर. यादव, भंवरसिंह पोर्ते, डा. कन्हैयालाल शर्मा, श्री रेशमलाल जांगड़े, श्रीधर मिश्रा, मुख्य मंत्री श्री 'श्यामाचरण शुक्ल, और केंद्रिय मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल से उनकी गहरी पहचान थी। आये दिन उनका कार्यक्रम शिवरीनारायण में कराकर नगर को विकास के मार्ग में ले जाना उनका ध्येय था। खरौद को नगर पालिका बनाये जाने पर नगरवासियों के अनुरोध पर उन्होंने मंत्रियों से अपनी पहचान का लाभ उठाकर शिवरीनारायण को भी नगरपालिका दर्जा तीन बनवाने में सफलता हासिल की। महानदी के रेत में महाराष्ट्र के किसानों को तरबूज बोने के लिए उन्होंने बुलवाया, जिससे पंचायत की आमदनी बढ़ी। पूरे छत्तीसगढ़ में एकलौता शिवरीनारायण नगर था, जहां बिजली के खम्भों में मरकरी बल्ब लगे थे। यही

नहीं बल्कि उन्होंने शबरीनारायण मंदिर के गर्भगृह में 'केशरवानी महिला समाज' द्वारा संकल्पित चांदी के पत्तर से बना दरवाजा को सन 1960 में जीवन मिस्त्री के सहयोग से कलकत्ता से बनवाया था। अपने कुलदेव महेश्वरनाथ मंदिर में भोगराग की व्यवस्था करायी।

सारंगढ़ और शिवरीनारायण में केशरवानी धर्मशाला के निर्माण में अर्थसंचय में उनका अमूल्य सहयोग था। अपने भाईयों, बहनों को उन्होंने न केवल सत्पथ पर चलने की प्रेरणा दी, बल्कि समाज के लिए भी एक मिशाल स्थापित की। अपने परिवार के श्री सूरजदीन साव, श्री विद्याधर साव, श्री तिजाउ प्रसाद, श्री साधराम साव, श्री रामचंदसाव, श्री ईतवारी साव, श्री गिरीचंद साव, श्री मुरीतराम साव, श्री जगदीश प्रसाद, श्री गौटियाराम के प्रिय पात्र रहे वहीं श्री पराउराम, श्री गोरेलाल, श्री शोभाराम के गहरे मित्र रहे। जीवन भर सत्पथ रहकर निरूस्वार्थ सेवा भाव से कार्य करते हुए जीवन के अंतिम समय में उन्होंने भगवत्भजन में अपना मन लगाया... और 67 वर्ष की अवस्था में भौतिक सुख सुविधा का परित्याग कर 16. 04. 2001 को पंच तत्त्व में विलीन हो गये।राघव साव के द्वितीय पुत्र सेवकलाल ने जहां बैंकिंग सेवा में अपना जीवन सफर तय किया वहीं तृतीय पुत्र हेमलाल ने व्यापार को अपनाया, जिसे उन्होंने पुत्र अतीत कुमार के सहयोग से संचालित कर रहे हैं। सेवकलाल के दोनों पुत्र संजय और नरेन्द कुमार टेंट हाउस के व्यापार में संलग्न हैं। देवालाल के पुत्र अश्विनी कुमार शासकीय महाविद्यालय चांपा में प्राध्यापक हैं। उन्होंने अपनी अभिरूचि के अनुसार छत्तीसगढ़ के इतिहास, पुरातत्त्व और परंपराओं के ऊपर लिखकर प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित किया और अपने वंश को गौरवान्वित किया है। धर्मयुग, अणुवत और नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट जैसे-राष्ट्रीय पत्रिका में बाल मनोविज्ञान विषय पर और कादम्बिनी, दैनिक हिन्दुस्तान में स्वतंत्र स्तम्भ लेखन किया। देश और प्रदेश के सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं प्रकाशित हो चुकी है। वे जांजगीर-चांपा जिले और प्रदेश के गिने चुने राष्ट्रीय लेखकों में से एक हैं।

अपने क्षेत्र के उपर लिखकर अपने जन्म को सार्थक बनाने का प्रयास उन्होंने किया है। शिवरीनारायण, पीथमपुर के उपर शोध गंथ लिखकर वहां के माहात्म्य को प्रकाशित कर सद्कार्य किया है। छत्तीसगढ़ के बिखरे और खंडहर होते मंदिरों और लुप्त हो रही परंपराओं पर कलम चलाकर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। छत्तीसगढ़ के भारतेन्दु कालीन गुमनाम साहित्यकारों को

प्रकाश में लाने का उनका सराहनीय प्रयास है। उनके इस रचनात्मक और सार्थक लेखन के लिए विभिन्न संगठनों से सम्मानित होकर अपने वंश को गौरवान्वित करने वाले अकेले हैं। आज वे छत्तीसगढ़ राज्य केशरवानी वैश्य सभा के अध्यक्ष रहे और सम्प्रति प्रदेश सभा के संरक्षक हैं। प्रदेश के अनेक नगर सभाओं के द्वारा उन्हें 'समाज के गौरव' के रूप में सम्मानित होने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। उनकी धर्मपत्नी कल्याणी देवी भी एक स्वतंत्र लेखिका हैं और लायनेस क्लब चांपा और नगर केशरवानी महिला सभा की अध्यक्ष, प्रदेश केशरवानी महिला सभा की कोषाध्यक्ष और अखिल भारतीय केशरवानी वैश्य महिला महासभा की राष्ट्रीय महामंत्री हैं। उनके दो पुत्र प्रांजल कुमार कम्प्यूटर साफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में टाटा कंसलटेन्सी सर्विसेस मुम्बई में पदस्थ है वहीं अंजल कुमार नेट प्वाइंट के संचालक है। हेमलाल के दो पुत्रों में अतीत कुमार जहां अपने पिता जी के साथ व्यापार में संलग्न हैं वहीं अमित कुमार मेकेनिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करके अपने पिता के साथ उनके व्यवसाय में संलग्न है। सेवकलाल के पुत्र संजय कुमार के दो पुत्री सृष्टि और साक्षी और एक पुत्र सृजन कुमार है वहीं नरेन्द कुमार के दो पुत्र पियुष और प्रीतुल है। दोनों भाई टेंट व्यवसाय कर रहे हैं।रचना, लेखन एवं प्रस्तुति, प्रो. अश्विनी केशरवानीराघव, डागा।

श्यामास्वप्न

'तन तरु चढ़ि रस चूसि सब फूली फूली न रीति।
पिय अकास बेली भई तुअ निरमूलक प्रीति॥'
'है इत लाल कपोत व्रत कठिन प्रीति की चाल।
मुख से आह न भाषि हैं निज सुख करहु हलाल॥'

तुम मेरी नूतन और प्राचीन दशा को भली-भाँति जानते हौ-मेरा तुमसे कुछ भी नहीं छिपा तो इसके पढ़ने, सुनने और जानने के पात्र तुम ही हौ तुम नहीं तो और कौन होगा? कोई नहीं। 'यामलता के वेत्ता तो आप हौ न? यह उसी संबंध का 'श्यामास्वप्न भी बनाकर प्रकट करता हूँ। रात्रि के चार प्रहर होते हैं-इस स्वप्न में भी चार प्रहर के चार स्वप्न हैं। जगत् स्वप्नवत् हैं-तो यह भी स्वप्न ही है। मेरे लेख तो प्रत्यक्ष भी स्वप्न हैं-पर मेरा 'शमास्वप्न स्वप्न ही है। अधिक कहने का अवसर नहीं।

प्रेमपात्र! तुम इसके भी पात्र हौ। मेरे तुम्हारी प्रीति की सचाई और दृढ़ता का व्यौरा तुमही करोगे। यहाँ कोई निर्णय करने वाला नहीं।

यह मेरी प्रथम गद्यरचना है, क्या इसे अंगीकार न करोगे? तुम्हारा 'मोती मंगल' और यह मेरा 'श्यामास्वप्न' हम दोनों के जीवनचरित की सरिताकल्लोल का चक्रवाक-मिथुन का हंस जोड़ा आजीवान्त कल्लोल करैगा। जिसके सरस तीर के निकुंजमंडप पर 'श्यामालता' सदा लहलहाती रहैगी-जिस कुंज के 'प्रेससंपत्ति' और 'श्यामासरोजिनी' रूपी विहंगम सदा चहक-चहक कर 'श्यामालता' की शोभा बढ़ावैंगे -'श्यामसुंदर' चातक सदा प्यासे ही बनकर 'पापी' रटैंगे-'मकरंद' कोकिल सदा हितके मीठे बोल बोलैंगे-और दुर्जन द्विरेफ दारुण झंकार के मचाने में कभी न चूकैंगे-यह अपूर्व सरिता की धारा कभी न रुकैगी-अंत को प्रेमब्रह्मा के कमंडलु में समा कर हम दोनों को दैहिक दु:ख और संसार के बंधन से मुक्त करैगी, अब दिन आ रहे हैं। ज्ञान का दीप भ्रमतिमिर को नाश करैगा और प्रतिदिन मार्ग सुगम होता जायेगा। चिंता नहीं, इस संसार में तुम्हैं छोड़ और कोई मेरा सर्वस्व नहीं-तुम्हारा ही कहा करता हूँ।

'मिल्यौ न जगत् सहाय विरह चौरासी भटक्यौ'

तुम्हारे अद्वितीय पिता सरयूपारप्रदीप कविराजराजिमुकुटों के अलंकार के हीरे और मेरे गुरु श्रीपंडित गयादत्तमणि वैय्याकरण शेषावतार के चरणारविंद की दया जैसी मेरे पर रही तुम्हैं भली-भाँति ज्ञात है। तुम कविशिरोमणि हो। इसको बाँच के शोधन कर देना-और शुद्ध भाव से इसे एक अपने जन की रचना जान और उनकी आन से अंगीकार कर लेना-बस।

रायपुर, छत्तीसगढ़ केवल तुम्हारा,
25 दिसंबर, 1885 जगन्मोहन सिंह

मध्यदेश

प्रथम श्याम का स्वप्न

सोवत सरोज मुखी सपने मिली री मोहि
तारापति तारन समेत छिति छायो री।
मंडप वितान लता पातिन को तान तान
चातक चकोर मोर रोरहु मचायो री।।
कंजकर कोमल पकरि जगमोहन जू
अधर गुलाब चूमि मधुप लुभायो री।
चूकृत सों बैरिन कहा से खुली धों आँख
हाय प्रान प्यारी हाय कंठ ना लगायो री।।

आज भोर यदि तमचोर के रोर से, जो निकट की खोर ही में जोर से सोर किया, नींद न खुल जाती तो न जाने क्या क्या वस्तु देखने में आती। इतने ही में किसी महात्मा ने ऐसी परभाती गाई कि फिर वह आकाश संपत्ति हाथ न आई! वाह रे ईश्वर! तेरे सरीखा जंजालिया कोई जालिया भी न भी न निकलैगा। तेरे रूप और गुण दोनों वर्णन के बाहर हैं! आज क्या क्या तमाशे दिखलाए, यह तो व्यर्थ था क्यौंकि प्रतिदिन इस संसार में तू तमाशा दिखलाता ही है। कोई निराशा में सिर पीट रहा है, कोई जीवाशा में भूला है, कोई मिथ्याशा ही कर रहा है, कोई किसी के नैन के चैन का प्यासा है, और जल विहीन दीन मीन के सदृश तलफ रहा है–बस। इन सब बातों का क्या प्रयोजन! जो कहना है आरंभ करता हूँ–आज का स्वप्न ऐसा विचित्र है कि यदि उसका चित्र लिख लिया जाय ते भी भला लगै। कल्ह संध्या को ऐसी बदली छाई कि मेरे सिर में पीड़ा आई। जो कुछ बन पड़ा व्यालू करके लंबी तान अपने बिछौनों में आ अड़ा। लेटते देर न हुई कि नींद ने चपेट ही लिया। पहले तो ऐसा सुख लगा कि दुरूख ही भगा। शीत की रात–अच्छे गरम और नरम बिछौने सोने के लिए–'जाढ़ा जाय रुई कि दुई'–इसी पुरानी कहावत को स्मरण रख नींद का सुख अनुभव किया। पलकैं झपने लगीं'–अधखुली होकर बंद हो गई। कुछ काल तक स्मृति रही, जब तक स्मृति रही अपने कृत्य को शोचा, और फिर कुछ काल तक जगत का हाल बेहाल विचारते रहे–अब नहीं जानते क्या हुए–कहाँ गए, स्मृति कहाँ विलानी–जी में क्या समानी, पानी कि पौन–ईंट या पत्थर–मौन रहना पड़ा। जिधर देखा केवल शैल पर्वत ही देखे। मन में चिरकाल से ध्यान था कि यदि ईश्वर ज्ञान दे तो तम में से म्यान से तलवार की नाई भ्रम को निकाल अनन्य भाव से किसी पावन बिजन बन में धूनी लगा कर प्यारी 'यामा के नाम की माला टारैं–जीवन भी हारैं–तन मन धन सब वारैं–बरन उस 'मनोरथ मंदिर की नवीन मूर्ति' के चरण कमल युगलों पर सुमन समर्पण करते करते अपने शेष दिन बितावैं। गतागत इसी जोर में नींद की डोर ने मुझे फाँस कर गाँस लिया। गाँसना क्या साक्षात् निद्राप्रियता ने मुझै गाढ़ालिंगन करके अपनी जुगल वाहलतिकाओं से फाँस अंक में अंकही की भाँति लगा लिया। बस, देखता क्या हूँ कि मैं एक अपूर्व मनोहर भूमि पर विचरता हूँ, आमने सामने पर्वत, उत्तर भाग में एक बड़ी भारी नदी, कमल फूले हैं, कोकनद की पांती शोक को हटाती है। कुमुद भी एक ओर मुदयुक्त होकर निरख रहे हैं। इधर चातक पी–पी रट रट कर अपने पुराने पातक का प्रायश्चित्त करता है। उधर काली कोयल भी अमराइयों में पंचम सुर से गा रही है। आम

की मंजरी सभों को सकाम करती है। वक्र और अधखुले पलास अपने पलासों के गर्व में टेढ़े हो रहे हैं। मालती की लती-चमेली-पाटल-चंपा-इत्यादि सब के सब अपने-अपने राव चाव में मगन हो रहे हैं-पर्वत की अनूपम शोभा कही नहीं जाती। सरिता उसी की नव वधू सी हो उसकी गोद से निकलकर और भी प्रमोद को बढ़ाती है। पर्वत की कंदरा सिंह के नाद से प्रतिध्वनित हो रही है-इधर उस नाद को सुन गवय और गज भी भीत होकर पलीत के भाँति चिक्कार मार कर भागते हैं-हरिन अपनी प्यारी हरिणी के साथ-(हा हरिणयन!) कूदते जाते हैं-मयूरों के जूथ का वरूथ उड़ा जाता है-बादल छा गए-चंद्रमा छिप गए-पर बीच-बीच में उधर जाने से कभी-कभी प्रकाश भी करते हैं -

कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया डसि उलटी हो जात,
मंत्र न फुरत तंत्र नहिं लागत प्रीति सिरानी जात -

यह सूरदास का भजन स्मरण होता है इस प्रकार क्षण भर हेमंत में भी पावस का समाज हो गया था, पर अंत को अकाल ही के मेघ तो थे क्षण में प्रवात से विथुर गए आकाश खुल गए।

यह हेमंत का समय था, गुलाब से करवाली उषा ने चित्रोत्पला के उर से अंधकार के मेघ दूर किये और उदय होते हुये भानु की किरणों का प्रतिबिंब लहरों में लहराने लगा। इस पुराने ग्राम के एक ओर नदी के तीर से पलास, आम, ताल और खजूर के महाबन पर्यंत प्रचुर शालि की भीत अपने सुनहले सिर कपाती थी-दूसरे ओर संपन्न गोचारण भूमि वज्रांग के गाय गोरुओं से आच्छादित थी। परंतु जब सूर्य का प्रकाश ऐसे मनोहर दृश्य पर ग्राम, मंदिर और महलों पर फैला उस डायन के भुइंहरे का कारागार अँधेरा ही रहा। उस भयानक स्थान के हतभागे बंदियों में से एक युवा को छोड़ जो विद्यार्थी के रूप में था, किसी ने अपनी एकांत कोठरी की खिड़की पर दृष्टि नहीं डाली। इस भुइंहरे के एक कोने में प्याँर पर बैठा प्रथम किरण की आशा लगाये पहरा दे रहा था। छै दीर्घ मास उसी निर्जर कोठरी में सिसक सिसक के बिताये, समय बीता परंतु प्रत्येक दिवस और घंटों के साथ जो दु:ख के बोझ के मारे मंद मंद पग धरते थे, सब नित्य आशा का अंत हुआ, उसकी सब उमंगों को उस बंदीगृह समुद्र से निकलने के लिये मोक्ष की कोई नौका न दिखी। हाँ-छै महीने इसी आशा से उस नरक में काटे कि कभी तो कोई न्यायाधीश न्याय करेगा बहुतेरा रोया-गाया-प्रार्थना की, पर सब व्यर्थ, उस आधी रात सी खोह की अँधियारी में भी अपने विक्षिप्त चित्त पर परदा ढालने के लिये नेत्र मूँद लेता तौ भी वे मनोरथ हजारों भाँति के भयानक रूप

देखते थे कि उसने अपने कोठरी के अंधकार से डर कर प्रकाश देखने की इच्छा की, इस युवा का अपराध क्या था? इसने प्रेम किया था अद्यापि प्रेम करता था, एक उत्तम कुल की स्त्री-इसको यह मोह और उन्मत्तता से प्रेम करता था। आह प्यारी तेरी मूर्ति भी इस कारागार के अंधकार में कभी-कभी मुसकिरा जाती है-उस तारा की भाँति जो मेघ के बीच में चमक कर समुद्र के कोप में पड़े हुये निराश मल्लाहों को प्रसन्न करती है।

हा, तुझ पर वह अत्यंत प्रेम रखता था, ऐसे चाव से चाहता था। जहाँ तक मनुष्य की शक्ति है-क्या तेरा कोमल जी उसके उत्तर में न धड़कता होगा?

पहिले जुगों के राजों, लोगों और न्यायकारियों के दृष्टि में अपने से ऊँची जाति का आकांक्षी और विशेष कर ब्राह्मणियों पर नेत्र लगाने वाला पापी और हत्यारा गिना जाता था-वह कैसा ही सत्पुरुष और ऊँचे कुल का न हो ब्राह्मण की कन्या से विवाह करना घोर नरक में पड़ना या अग्नि के मुख में जलना था। मनु के समय में ब्राह्मणों की कैसी उन्नति और अनाथ शूद्रों की कैसी दुर्दशा थी नीचे लिखे हुए 'लोकों से प्रकट होगी। एक तो आकाश और दूसरा पातालवत् था। एक तो दूध दूसरा पानी -एक तो सोना दूसरा पीतल-एक तो स्वतंत्र दूसरा कैसा परतंत्र और आजीवांत सभों का दास, एक तो पारस दूसरा पाषाण-एक तो आम, दूसरा बबूर-एक तो सजीव दूसरा जड़, निर्जीव, केवल वृक्ष की भाँति उगने, फूलने और मुरझाने के लिये था। वाह रे समय! ब्राह्मणों के ही कर में कलम था मनमाना जो आया घिस दिया, राजाओं पर ऐसा बल रखते थे कि वे इनके मोम की नाक थे, या काष्ठ पुत्तलिका जिसकी डोर उनके हाथ में थी -

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन्।।
अगुप्तमंग सर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते।।374/8

अर्थ-यदि शूद्र किसी द्विज की स्त्री से गमन करेगा चाहै वह गृह में रक्षित हो वा अरक्षित इस प्रकार दंडय, होगा-यदि अरक्षित हो तो उसका वह अंग काट डाला जायेगा और धन भी सब ले लिया जायेगा-यदि रक्षित हो तो वह सब से हीन कर दिया जायेगा।

उभावपि तु तावेव ब्रह्मण्या गुप्तया सह।।
विप्लुतौ शूद्रवद्दराडयौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना।।377/8

यदि वे दोनौं (वैश्य और शूद्र) ब्राह्मणी-गमन करै जो रक्षिता है तो शूद्रवत् दंड होगा सूखे भुसे के आग में जला दिया जायेगा -

मौण्डयं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते।।
इतरेषान्तु वर्णानां दंडः प्राणान्तिको भवेत।।379/8
न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितंम्।।
राष्ट्रादेनम्बहिष्कुर्य्यात्समग्रधनमक्षतम्।।380/8
न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि।।
तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत।।381/8

अर्थात्-ब्राह्मण का मूड़ मुड़वा देना यही दंड वध के तुल्य है पर और दूसरे वर्णों का वध केवल प्राण ही लेने से होता है।'' वाह अच्छा वध है-ब्राह्मणों का अभ्यास तो नित्य ही मूड़ मुड़ाने का है-देखो गंगा के तीर पर हजारों मुंडी बैठे रहते हैं और नाऊ लोग रोज ही उनको मूड़ते हैं।

चाहे कैसहू पाप न किया हो ब्राह्मण को कभी नहीं मारना पर सब धन को बचाकर (अक्षत) केवल राज से बाहर कर देना चाहिए।

संसार में ब्राह्मण वध से बढ़ कर और कोई अधर्म नहीं है इसलिए इसका वध राजा मन से भी न विचारे -

एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहाचरेत्
वृषभैकादशा वापि दद्याद्विपाय गाः सिताः130/11
मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मूण्डूकमेव च।
'वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत्131/11
ब्रह्महा द्वाद्वशसमारू कुटीं कृत्वा वने वसेत्
भैक्षाश्यात्मविशुद्वयर्थे कृत्वा शवशिरो/वजम्73/11

शूद्र को मारने वाला छः मास (73-81) या तो उक्त व्रत करै अथवा 11 बैल या 11 'वेत गैया ब्राह्मण को दे -130

फिर बिल्ली नेवरा इत्यादि के मारने का प्रायश्चित्त शूद्रव्रत् है-तो शूद्र बिल्ली के तुल्य हुआ इस बिचारे का जीव बड़ा सस्ता था, परंतु ब्राह्मण को मारकर 12 वर्ष कुटी बनाकर वन में बसे और उसके मुर्दे के खपरोही में अपनी शुद्धि के लिये भीख माँगे। इससे ब्राह्मणों का कितना मान था जाना जायेगा।

उसकी प्यारी के पिता के कारण यह बंदीगृह में पड़ा था, यद्यपि कृत्रिम दोषों का आरोप भी न था। ऐसे-ऐसे बलात्कार प्राचीन समय में जब कि छोटे छोटे भी राजों को अमित अधिकार होते थे और उसी अंधाधुंदी में न्याय होने में विलंब हुआ।

इस हेतु इस निराशित सत्कुलोत्पन्न और सभ्य युवा के हृदय में उन प्रभुओं से बदला लेने की उमंगें उठा करतीं, उसके दु:ख और वेदना ऐसी प्रबल थी कि उसी उमंग में वह यह कह उठता क्या कोई शक्ति आकाश की वा पाताल की मेरा विनय नहीं सुनती? क्या मुझे त्रण न करैगी? क्या मैं अपनी प्रिया के प्रेम और बदला लेने की आशा तज दूँ? नहीं नहीं यदि मुझै क्षण भर भी कोई वैर भँजाने का अवकाश दे तो मैं वैकुंठ और प्रेम दोनों दे दूँ।

यह वाक्य उसने उसी पियांर पर बैठे-बैठे सहस्रों बार कहता प्रकाश की आशा लगाए था कि भुइंहरे के कारागार के फाटक का अर्गल किसी ने पीछे खींचा, लोहे की सांकर खनखनाती बाहर पत्थर के गच पर गिरी और द्वारपाल हाथ में दिया लिये आया।

प्रकाश उस चिन्ता कवलित युवा के मुख पर पड़ा जिसके भूरे बाल, काली आँख और विमल आनन उसके किसी सत्कुलीन क्षत्रिय होने के सूचित थे। 'मुझसे क्या माँगते हो' युवा अपने कटासन से युगपत् चिहुकता हुआ पूरा खड़ा होकर बोला, 'यह तो मेरे रातिव का समय नहीं है। सचमुच यह काम तो आप रात को करते हो। अब तो प्रात:काल होता होगा, पर क्या आप यह कहने आये हो कि मैं बंदीगृह से मोक्ष हुआ,' युवा ने ये शब्द बड़ी जल्दी कहे और प्रसन्न होकर बोला 'बहाँ, मेरे मोक्ष की आज्ञा ल्याए हो तो कहो,' इतना कह हाथ बाँध खड़ा हो रहा।

जेलर ने कहा, 'युवक' ऐसे स्थान में सुख समाचार सुनने की अपेक्षा दु:खदायक समाचार सुनने को सदा प्रस्तुत रहना चाहिए तो भी आज है।"

युवक ने कहा, 'क्या आज मैं यहाँ से छूटूँगा।'' युवा का पीला मुख आनंद में प्रफुल्लित हो गया और मोक्ष की आशा के अंकुर उदय हुए।

जेलर बोला, 'हे युवक मैं तेरे मोक्ष का समाचार नहीं लाया, परंतु यह कहने आया हूँ कि आज जब सूर्य की किरनैं तेरी अँधेरी कोठरी को प्रकाश करैंगीं तब तक कोई न कोई तुझे तेरे अपराधों का निर्णय सुनवाने के लिए न्यायाधीश राजपुरुष के सम्मुख ले जायेगा। इससे तू अपने दोषों को मिटाने के लिए तत्पर रह।'

युवा आनंदमग्न होकर बोला, 'भला आज यह दिन भी तो आया-आप नहीं जानते कि आप मेरे मोक्ष की आशा देने आये हो। मैं अपने अपराधों को भली-भाँति सम्मार्जन करूँगा।'

जेलर ने उत्तर दिया, 'भाई ऐसे व्यर्थ मनोरथों से मोक्ष की आशा मत कर –आशा वै परमं दु:खं नैराश्यं परमं सुखम्' पर यह तो कह कि तेरे ऊपर कौन सा अपराध लगाया गया है?"

युवा ने प्रत्युत्तर दिया कि 'यह सब कपटनाग की करनी है–उनके मित्र और कृपापात्र कार्याध्यक्ष वसिष्ठ जी की कन्या, जो रूप की धन्या थी, उसे निकाल ले जाने और बलात् विवाह करने का अपराध लगाया गया है। परंतु मेरा अविचल प्रेम उसके हेतु अत्यंत निर्मल, अत्यंत पावन और अत्यंत नि:स्वार्थी था और अद्यापि है। आश्चर्य है कि इतने पर भी मैं ऐसा घात और बलात्कार करने का दोषी हुआ।"

जेलर बोला, 'क्या तुम नहीं जानते कि उसकी सगाई जनम से ही जगत विदित रत्नधाम के प्रतिष्ठित श्रीमान् वर्णाश्रमाधीश महाराज प्रबोधचंद्रोदय के पुत्र से ही हो चुकी है?"

'मैं तो यह जानता हूँ, पर मुझसे उससे एक समय समागम हुआ और उसने मुझे केवल कृपापात्र ही नहीं वरन प्रेमपात्र भी बना लिया और पहले ही वार इस दीन को उसने अपना किया और कोई राजकुमार सा माना,' इतना कह युवा ने लंबी साँस ली।

जेलर ने पूछा, 'तो क्या तुमने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है?श' युवा ने कहा, 'हैं! क्या उन्हें अपराध गिनते हो। प्रकृति के अनुसार किसी को प्रेम करना जिस स्वभाव से बड़े-बड़े अभिमानी मुनि भी नहीं छूटे हैं अपराध समझते हो?'

जेलर ने कहा, 'प्रेम की दृष्टि से किसी ऐसी स्त्री को देखना जिसकी सगाई किसी महापुरुष से हो चुकी हो पाप है और इसका दंड केवल वध है।'

'वध!' अपने दिन निकट जान वह दु:खी बोला, 'यह तो बड़ा भयानक है ऐसा नहीं हो सकता तुम स्वप्न देखते हो तुम्हारी भ्रांति है मनुष्यों का अन्याव और कुटिलता इस सीमा तक नहीं पहुँचती।'

'प्रबोधचंद्रोदय या कपटनाग से बलिष्ठ शत्रु हों तो ऐसा होना कुछ आश्चर्य नहीं। जिस दिन तुम कारागार में बैठे थे उसी दिन तुम्हारा अंत हो चुका था।'

युवा ने कहा, 'तुम न्यायाधीश के चित्त को कैसे जानते हो तुम उसके एक चाकर हो वह ऐसे चित्त के विकारों को तुमसे कभी नहीं कहने का।'

जेलर ने कहा, 'मैं इसे भुगत चुका हूँ और सच पूछो तो मैं अभी तक बंदी हूँ मेरे प्राण केवल इसी प्रतिज्ञा पर बचे कि जन्म भर मैं जेलर रह अपने शेष दिन

बिताऊँगा।'' युवा ने कहा, 'तुम्हारा अपराध क्या था?' जेलर ने उत्तर दिया, 'इसको क्या पूछते हो, पर पहिये के नीचे पिसकर मरना यही मुझपर दंड हुआ था।'

'तो इस प्रकार दासत्व छोड़कर बचने का क्या और कोई उपाय न था?' जेलर ने कहा, 'कुछ नहीं, पर ठहरो एक बात भूल गया था एक बड़ा पाप इससे भी बढ़कर था उस पर प्रायः आरूढ़ हो चुका था किंतु मेरे भले स्वभाव ने मुझे बचाया। इसी भाँति दास बनकर अपने दिन बिताना अच्छा पर उस पाप को करके यदि इंद्र या कुबेर हो जाऊँ तो भी निषिद्ध है।'

युवा काँप कर बोला, 'क्या वह ऐसा भयानक था?श' जेलर ने उत्तर दिया, 'बस मुझसे मत कहलाव,' इतना कह वह ऐसा ऐंठा और डरा मानो इसके भीतर कोई भूत या यमदूत हो। युवा ने प्रार्थना की, 'दया कर इसे बताने का वरदान तो अवश्य दीजिये मेरा चित्त इसके सुन्ने को बड़ा व्यग्र और चिंताकुल हो रहा है, देखो यह मेरी थैली है और उसकी द्रव्य सब तुम्हारी है। मैं तुझे देता हूँ कदाचित् इससे तुम्हारा कोई काम निकले पर मेरा तो कुछ भी नहीं।'

जेलर थैली को पंजों में पकड़कर बोला, 'श्इस सुवर्ण के लिए अनेक धन्यवाद है। यह एक ऐसी बात है कि जिससे मेरी नाड़ी शिथिल और आँतें संकुचित हो जातीं तो भी सुनो यह बात प्रसिद्ध है, पर केवल इसी कारागार के भीतों के भीतर ही। डेढ़ सौ बरस पहिले एक विद्वान् जिसके रात-दिन उस गुप्त महा-विद्या के रहस्य ढूँढने में बीते थे इसी बंदीगृह का बंदी हुआ। वह तंत्र में ऐसा निपुण था और ऐसे-ऐसे मंत्र-जंत्र जानता था कि प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल, डाकिनी, शाकिनी, योगिनी सब उसके वशीभूत हो गई थी। मेरी भाँति उसको भी पहिये के नीचे दब कर वध का दंड हुआ था, परंतु केवल इसी विद्या के बल से बच गया, क्योंकि उसने एक मंत्र पढ़कर नरक के एक पिशाच को सिद्ध किया और केवल स्वतंत्रता, धन, पौरुष, अधिकार और दीर्घायु के हेतु अपना तन, आत्मा और स्वयम् आप उसके हाथ बिक गया। वह मंत्र जो इसने सिद्ध किया था अद्यावधि इसी भीत पर गहरा खुदा है लोग कहते हैं कि यह उसी के हाथ का खोदा है और इसके मिटाने में मनुष्य जाति मात्र का परिश्रम व्यर्थ है। बस यही बात थी और अभी तक जो चाहे इतना बलिदान देकर सिद्ध कर ले।'' ऐसा कहते जेलर सिर से पैर तक कँपता हाथ में दिया को उस ओर उठाया जिस भीत के मूल में इस युवा की सेज थी और बोला, 'भाई बचाना देखो यह मंत्र अभी तक लिखा है।'' युवा ने नेत्र उठाकर देखा पर जेलर ने डरकर कहा, 'नहीं भाई

इसे पढ़ना मत नहीं तो इसके बाँचते ही वह प्रेत अपनी भयावनी मूर्ति ले आ खड़ा होगा क्योंकि यह आकर्षक मंत्र है!"

इतना कह जेलर ने दीपक हटा लिया और आप भी कुछ हटाय बोला, 'ले भाई अब मैं जाता हूँ कोई आध घंटे के बीच में राजदूत आ पहुँचेंगे,' इतना कह जेलर दीप को ले चला गया और वह विचारा युवा फिर भी अंधकार में डूब गया।

एक बार फिर यह अकेला हुआ और बोला, 'उसने अच्छा किया जो इस पर ध्यान नहीं दिया ईश्वर मुझे भी इस लोभ और मोह से बचावे–पर हा प्यारी! प्राणप्यारी क्या तू जानती है कि मैं तेरे लिये यह सब न करूँगा? देख इस आधी घड़ी में मेरा चित्त कैसा बदल गया इस भयदायक कथा को जो मेरे कान में घंटे की भाँति बजती और जिसकी झांई मेरे हृदय में बोलती है, न सुनता तो अच्छा होता, मेरे चित्त में कैसे कैसे संकल्प उठते हैं वे मुझ को ऐसे भयानक कर्म करना सिखाते हैं कि जिनके निमित्त अंत में निरंतर नरक की अग्नि में बास करना पड़ेगा। हा प्रिये! मुझे छाती से लगाना, तेरी अमृत मई वाणी सुनना, तेरी दया दृष्टि की छाया में विश्राम करना और तेरे धड़कते हुए हृदय को देखना मेरे लिये बैकुंठ था–पर देख इस अभिमानी कपटनाग और न्यायाधीश से बैर भँजाना जिसने विचार के पूर्व ही यहाँ डाला–यह बैर लेना जो केवल तेरे प्रेम ही से घटकर है वह अविचल प्रेम और वह बैर जो तेरे पिता से लेना है यह भी मेरे लिये बैकुंठ है–हाँ प्यारी केवल तेरी प्रीति के लिये मैं बैकुंठ को कुंठ समझता हूँ और वैर भँजाने के लिये नरक का निरंतर बास बास भी स्वीकार करता हूँ।'

इसी समय द्वार खुल गया और एक अधिकारी हाथ में दीप लिये आ गया।

उसने कहा, 'हे युवा मैं तुझको प्रधान न्यायाधीश के सन्मुख ले जाने आया हूँय वे थोड़े काल में अभी धर्मासन पर बैठेंगे।"

जैसी तिजारी आवे इस युवा का बदन कँपने लगा बोला, 'एक क्षणभर ठहरिये और मुझे अपने अंतकाल की दशा सोचने को तीन काष्ठा का अवकाश दीजिए।"

अधिकारी ने कहा, 'जिसे बहुत घंटे नहीं जीना है उसकी प्रार्थना कभी नहीं टालूँगा,' इतना कह उसने प्रकाश वहीं धर दिया और चला गया। युवा फिर एकांत में बिचारने लगा, 'जिसे बहुत घंटे नहीं जीना है! फिर मेरा भाग्य निश्चय ऐसे ही होगा। जेलर ने ठहक कहा था,' इस समय फिर भी उसको उसी प्रेत का स्मरण आया और कई बार घृणा की।

वह अधिकारी फिर आया और बोला, 'समय तो हो गया चलो चलें।'' युवा ने विषादपूर्वक प्रार्थना की, 'भाई दो पल और ठहर देख हाथ जोड़ता हूँ-दो पल कुछ बड़ा समय नहीं है, चुटकी मारते जाता है। मुझे केवल भ्रमती हुई मनोवृत्ति को एकत्र करने दे।'' उसने कहा, 'मैं तेरे लिये अपने को न्यायाधीश के क्रोधाग्नि में डालता हूँ इधर तेरी भी प्रार्थना टाल नहीं सक्ता,' इतना कह वह अधिकरी फिर चला गया इतने में सूर्य की किर्नें बड़े कष्ट से भीतर आई वह युवा उन्मत्त की भाँति इधर उधर चलता हुवा सोचने लगा, 'हाय! नहीं नहीं मैं इस यौवन में कैसे प्राण दूँ और सब प्रिय पदार्थ कैसे पीछे छोड़ जाऊँ-प्यारी हम लोग फिर मिलेंगे और अपने प्रेम का कोप तेरे चरणारविंदों की भेंट दूँ तेरे पिता और दुष्ट न्यायाधीश से अपना बैर भँजा लूँगा -मेरे भाग्य में यही लिखा है, 'मेटन हितु सामर्थ को लिखे भाल के अंक'-हाँ-हाँ मैं केवल तेरे प्रेम और बैर लेने को अभी जीऊँगा।"

ऐसा कह उसने दीप उठाया और उस मंत्र की ओर चला। फिर भी सोचा-दास होने से मरना भला, क्या तीन पल बीत गये? देखो पैर का शब्द सुनाता है, जो हो फिर भी कदाचित् वह पलभर और ठहरे-हाय! मैं कैसे मरूँ मेरे तो अभी केवल 22 बसंत बीते हैं। उसके शरीर थरथराने लगा और मेधा चकरी हो गई अन्त में उसने सब मनोरथों को एकत्र कर अपने नेत्र उस मंत्र की ओर फेके उसने कहा बस अब एक बार कष्ट कर पढ़ लो और क्षणभर में सब कुछ और का और हो जायेगा नरक में तो जाना ही है।

इतना कह दीप को मंत्र के सामने उठा बड़ी शीघ्रता से यह मंत्र पढ़ा -

'ओम् अं गं भं शं मं ऋं पं गिं भां सूं ऋपात्मजां 'यां 'यामा 'यामसुंदरी जं जगत्पालिनी मं मनोमोहनी सिं सिंहाधिरोहिणी अं रां भुजलतावकराठीं लं क्षां मां अमुकीमाकर्पय अमुकी माकर्षयस्वाहा।'

जिस समय यह उसके ओठें के बाहर हुआ एक मनुष्य का आकार सन्मुख खड़ा हो गया।

यह आकार कुछ भी भयानक न था वरन् शोचग्रस्त और चिंताकुल सा कुछ जान पड़ा, मानो कोई आग उसके चित्त को निरंतर दहन करती हो। किंतु उसके चारों ओर ऐसा प्रकाश हुआ कि कारागार का अंधकार बिला गया। यह पुरुष का नहीं पर स्त्री का आकार था। यह डाइन थी। वह तो साक्षात् भगवती भगमालिनी का रूप है -चंडा-मुंडा करालिनी। देखते नहीं उसके बड़े बड़े दाँत किसको चर्वण न कर डालैंगे -चर्वयत्यतिभैरवम्' रौरवंभी। उसके दंष्ट्राकराल के गोचर

अनेक महापुरुष होकर कौर कर लिए गए। कुछ स्तुति तो करो 'भगवती! चंडि! प्रेते! प्रेतविमाने! लसत्प्रेते! प्रेतास्थिरौद्ररूपे! प्रेताशिनि! भैरवि! नमस्ते'

इतना कहते देर न हुई कि बस।

'काली करालवदना विनिष्क्रान्ताऽसिपाशिनी
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्ना रक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा
सा वेगेनाभिपतिता घातयंती महासुरान्'

इस प्रकार से और इस भाँति भगवती डाकिनी शाकिनी उपस्थित हुई, बंबई की किनारदार धोती पहने, मनुष्य का कपाल हाथ में, गटरमाला फटकारते, लंक लौ लटकती लंबी लटैं-लाल लाल नेत्र, अंतराल को सिर में लपेटे-निरास्थि की पुंगरी फूकती-बड़ी बड़ी लंबी टाँगें फेकती दो सुंदरी एक ओर ब्याही और एक ओर कुमारी कन्या को काँख में खोंसे थीं।

देवी ने कहा, 'मुझसे क्या चाहते हो?' युवा बोला, 'बचा, बचा, मुझे इस घोर कारागार से निकाल देश'-देवी बोली, 'मैं तुझे निकालूँगी' और उसका हाथ पकड़ आकाश की ओर उड़ गई-वह युवा तो बेसुध हो गया। प्रातःकाल को जब जगा तो क्या देखता है कि अपनी पुरानी प्यारी सेज जो कविता कुटीर में थी उसी पर सोया है। आँख खोली और उसी प्राचीन ग्राम की गली देखी और जब उसके नेत्र उस कुटीर के ओर पड़े तो उस कारागार के दुःखद पाषाणों के स्थान के प्रतिनिधि अपनी वस्तु देखी एक टेबल पर कहीं कलम, कहीं स्याही, कहीं 'श्यामालता-कहीं सांख्य, कहीं योग-कहीं देवयानी के नूतन रचित पत्र इत्यादि पड़े हैं। बड़ा आनंद हुआ और युवा के नेत्र सजल हो आये, बोला, 'यह बड़ा भयानक स्वप्न देखा था ऐसा जान पड़ा कि मैं किसी निर्जल कारागार के भुइंहरे में छे मास तक रहा प्रतिदिन आशा आई और गई फिर देखा कि किसी मंत्र के प्रभाव से एक चुड़ैल ने आकर मुझे निकाला उसी समय राजदूत भी मुझे न्यायाधीश के पास ले जाने को आया था। हे ईश्वर तेरी महिमा अपरंपार है तूने कैसा स्वप्न दिखाया। अब मैं अपने प्राण के पास जाऊँगा और स्वप्न का सब ब्यौरा कह सुनाऊँगा वह भी मेरे लिये क्या चार आँसू न गिरावेगी? तो बस अब उसी के पास चलूँ' -

ऐसा सोचता हुआ वह अपनी सेज पर ज्यौंही पौढ़ा डाइन आ गई और वह इसको फिर देख हक्का बक्का हो गया। कहने लगा, 'नहीं, नहीं यह स्वप्न नहीं प्रत्यक्ष है' इसी को फिर फिर कहता रहा, डाइन बोली, 'यह प्रत्यक्ष है क्या तू

भूल गया। इस प्रत्यक्ष के प्रत्येक अक्षर ऐसे सत्य हैं जैसा कि वह सूर्य-इसमें तुझै अपना परलोक और भावी सुख सब मेरे हाथ बेच देना पड़ेगा, पर अभी कुछ बिलंब नहीं यदि चाहो तो छूट सकते हो, पर फिर उसी कारागार में जाना होगा। अब तेरे होनहार सब तेरे ही हाथ में है, जो चाहो कर।'

कमलाकांत बोला, 'तो अच्छा तू जा मैं तेरी सहायता नहीं चाहता। तेरे हाथ परलोक और सुख कभी देने का नहीं।"

डाइन ने उत्तर दिया, 'जो ऐसा ही है तो जाती हूँ पर एक बात और सुन-यदि तू मुझे छोड़ता है तो फिर उसी भुइंहरे में जाना होगा-वहाँ से फिर उसी न्यायाधीश के पास वहाँ से फिर सूली का मार्ग जाने का खुला ही है।'' कमलाकांत ने कहा, 'कुछ चिंता नहीं मुझे तुझसे बढ़के और कहीं पवित्र शक्ति पर जिसका प्रभाव सब जानते हैं बड़ा भरोसा है। यदि तू छोड़ देगी तो वह (आकाश की ओर दिखाकर) तो नहीं छोड़ेगा -

हे सबसे समरथ्थ बड़ो प्रभु मारन हारे तैं राखनहारो'
जा-जो चाहै कर।'

डाइन व्यंगपूर्वक मुसकिराकर बोली, 'अरे तुच्छ मूर्ख-वह तेरी प्यारी जो इतने बड़े की बेटी है तुझै मिली जाती है क्या! कहाँ तू और कहाँ वह? 'कहाँ राजा भोज और कहाँ भुजवा तेली', कहाँ सूर्य और कहाँ काँच, और फिर वह डेढ़ वर्ष तक क्या तेरे लिए बैठी है? वह नहीं जानती कि तू इस कारागार में है, उसे केवल तेरा विदेशगमन ही ज्ञात है और फिर मनुष्य इतने दिनों तक सत्यप्रेम नहीं निवाहता।'

कमलाकांत ने कहा, 'यदि तुझमें शक्ति हो तो बुला दे तब मैं मानूँगा बुलाने की शक्ति ही नहीं तो व्यर्थ क्यौं बकती है।'' डाइन बोली, 'तो मैं इसका प्रमाण क्यों दूँ जब तुम विश्वास ही नहीं करते।"

कमलाकांत ने कहा, 'सुन, यदि तू इसका प्रमाण दे कि वह पक्की नहीं तो मैं सर्वतः तेरा हो जाऊँ।'' डाइन ने कहा, 'हाथ मार, देख-फिर न बदलना मैं दिखाती हूँ।'

युवा ने हाथ मारा और डाइन खिरकी की ओर अपना दाहिना हाथ पसार के यों कहने लगी -

'चल बे चल अब ल्याव बुलाय
जो यह मंत्र फुरै मम आय
जो कुछ शक्ति होय गुरु दीन्ह

जौं सेवा बाकी मैं कीन्ह
तो आवे वह सेन समेत
अथवा जैसे होय अचेत।'

'छूः छूः छूः दुहाई वीर भैरों की, आव-आव-आव दौड़-झौड़, छूः छूः छूः' इतने में एक मेघ घुमड़ आया और खिड़की को ढाँक लिया, घर के भीतर मेघ घुस आया -मैंने प्रार्थना की और कहा -

'सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोदः प्रियायाः
संदेशं में हर धनपतिक्रोधविश्लेषितंस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थित हरशिरश्चन्द्रिकाधौत हर्म्या।'

इसके पढ़ते ही सब तिमिर में समा गया, सृष्टि के नूतन विधान का निशान फहराने लगा, 'भयौ यथाथित सब संसारू' नील अंबर में भगवान् विभावरीनायक अपनी सोलहो कला से उदय हुए, दुर्जन के सदृश अंधकार का आकार ही लोप हो गया। स्वच्छता का बिछोना चाँदनी ने महीतल में बिछाया। कौमुदी ने चाँदनी तानी। उस समय की शोभा कौन कह सकता है।

'चुंचच्चन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलित तारका।
अहो रागवती संध्या जहाति स्वयम्बरम्।

औषधियों के नायक ने सब औषधियों को अपने कर से सुधा सीच कर फिर जिलाया। कुमुदिनी प्रमुदित होकर अपने प्रियतम को सहस्र नेत्रों से देखने लगी। सौत नलिनी ने आँख बंद कर ली। परकीया कहीं स्वकीया की बराबरी कर सकती है। चंद्रमा से जगन्मोहन गुण की अभिरामता क्या सूर्य के तेज में है। इसी से चंद्रमा का नाम लोकानंदकर प्रसिद्ध। कोकनद से सेवक अपने नायक के वृद्धि पर हर्षित हुए। वन की लता पता पर प्रकाश क्रम से फैलने लगा। समभूमि से, वन-वन से उपवन-उपवन से द्रुम-द्रुम से पादप-पादप से वृक्ष-वृक्ष से गुल्म लतावल्ली आदि को आक्रमण करके महीधरकी मेखला-मेखलासे शैल-शैल से पर्वत-पर्वत से शिखर-शिखर से तुंग पर अपना सुयश फैलाकर फिर अपनी कीर्ति कहने के लिए स्वर्गगंगा मंदाकिनी में अवगाहन कर गोलोक-गोलोक से विष्णुलोक-विष्णुलोक से ब्रह्मलोक, वहाँ से चंद्रलोक को फिर लौट गया। मृत्युलोक में मानों एक वितान सा तान दिया हो। प्रथम तो सागर के किनारे से निकला। सागर की द्वितीय बड़वानल के सदृश अपनी किरनों से तरल तरंगों में फँसकर क्रम से व्यौम के किनारों को कुंदन से कलित किया। पर्वत के शिखर

पर चाँदनी विखर गई। पत्तों पर एक अपूर्व शोभा दिखाने लगी। मंद वायु से कंपित होकर पत्र भी यत्र तत्र अपनी परछांही फेंकने लगे। नदी के लोल लहरों में मिलकर सौ चंद्रमा पैठे से जान पड़ते थे-झरनों का झरना कैसा मनोहर लगता था, मानौ मोती के गुच्छे पर्वत के ऊपर से छूट छूट कर गिरते हों। झिल्ली की झनकार-भेक का एक-सा शब्द निशिवर विहंगमों का विहार मन को चुराये लेता था। संजोगियों को सुखद और वियोगियों को दु:खद जान पड़ता था, संजोगियों का निधुवन प्रसंग और वियोगियों के विरह का कुढंग अपनी आँखों से देख देख साक्षी भरता था। इधर सारसों का जोड़ा उधर चकवा चकई का विछोड़ा संयोग और वियोग का उदाहरण दिखाता था। रात के कारण और सब पक्षी बसेरे में थे केवल उलूक से बेकाज के मनुष्य इधर उधर घूमते थे। इस समय देवजी का कहा याद पड़ा -

मंद मंद चढ़ि चल्यौ चैत निशि चंद्र चारु
मंद-मंद चाँदनी पसारत लतन तैं।
मंद मंद जमुना तरंगिन हिलौरै लेत
गुंजत मलिंद मंद मालती सुमन तैं।
देव कवि मंद मंद सीतल समीर तीर
देखि छवि छीजल मनोज छन छन तैं।
मंद मंद मुरली बजावत अधर धरैं
मंद मंद निकसो गुविंद वृंदावन तैं।
और भी -
घटै बढ़ै विरहिनि दु:खदाई। ग्रसै राहु निज संधिहिं पाई।
को शोकप्रद पंजक द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही।

प्रकाश का पिंड धीरे-धीरे मही मंडल में अपनी कीर्ति प्रकाश कराता है। बड़े साधन लतामंडप के भीतर भी पत्रों के छेदों से चाँदनी की किरणें प्रवेश करती हैं। मैंने इस शोभा का, प्यारी चैत की रातों में कभी प्यारी के सहित कभी प्यारी से रहित नदी तीर में भीर निकल जाने के पीछे कई बार अनुभव किया है। ऊपर चाँदनी का स्वच्छ वितान, नीचे जल की चमक-इधर बालू की सुपेदी, उधर क्षितिज तक इसका फैलाव-ऐसा जान पड़ता है मानौ पृथ्वी और अम्बर एक-सा हो गया है। चंद्रमा का बिंब जल की लोल तरंगों के भीतर ऐसा दिखलाई देता है मानौ सहस्र नेत्रों से वह मूर्तिमान् हो मदन के साथ इस अपूर्व शोभा का अनुभव करता हो। जल जंतु भी ऐसे हर्षित होते हैं कि नक्र कुलीर सफरी इत्यादि

उछल-उछल कर इस शोभा पर अपने प्राण देते हैं। यह व्यौम का दृश्य भूलोकगत जनों को भी भाग्यवश दिखाई पड़ता है। पर हा! क्या वह इस समय हमसे वियुक्त रहै-हाय! 'दुर्बले बैवघातक:' यह कहावत प्रसिद्ध है-दिशा कामिनियों का मुकुर-मदन के बाणों को चोखा करने की शान -भगवान् उमापति के ललाट का अलंकार-व्यौम सागर का एक हंस तारागणों के मध्य में ऐसा सोहता था मानौ दिक्कामिनी चंद्र प्रियतम पर पुष्पवृष्टि करती थीं-शंख, क्षीर, मृणाल, कर्पूरादिकों की प्रभा को लजाता समुद्र को आकर्षण करता-जीव मात्र-स्थावर जंगम को सुख देता और लोकों के पाप को नाश करता हुआ विराजमान है। संसार में जो लक्ष्मी मंदराचल में-प्रदोष के समय सागर में-जल सहित कमलवन में-वास करती है वही लक्ष्मी आज निशा के समय निशाकर में देख पड़ने लगी।

वह रे चंद्र! मेरी महिमा कौन लिख सकता है।

तू अपनी चंद्रिका के द्वारा इतने ऊँचे पर से भी बिचारी चकोरी की चोंच को सुधा से भर देता है -

तू अभिसारिकाओं का भी बड़ा मीत है-देख एक कवि ने कैसी कविता की है -?

'चतुर चलाक चित्त चपला सी चंदमुखी
गिरिधरदास वास चंदन सी तन में।
सारी चाँद तारे की सुचद्दर चमकदार
चोली चुस्त चुभी चारु चंपकवदन में।
चामीकर नूपुर चरन चम-चम होत
चली चक्रधर पै मिलन चाव मन में -
तारन समेट तारापतिहिं लपेट मानो
राकाराति चली जाति चाव से चमन में -'

तू समुद्र मंथन काल में समुद्र से निकला है यह पुराण की उक्ति ठीक जान पड़ती है-क्योंकि अभी तक तू उसी उदय पर्वत से बार बार निकला करता है।

तेरा बिंब मंडल अद्यापि अरुण है क्योकि तूने इंद्र की नायिकाओं का यावक का अधर चूमा है।

कहाँ तक तेरा प्रभाव गावैं। जितना तेरे विषय में कहैं वह थोड़ा उस शोभा को देखता ही था कि एक नवीन बाला गिरि के शिखर पर इस चंद्रमा को अपनी छवि से लजाती प्रकट हुई। इसकी सर क्या चंद्र कर सकता था? नहीं, जैसे

चंद्रजोत के सामने दीप की कोई बात भी नहीं पूछता। सूर्य के सन्मुख खद्योत प्रकाश नहीं कर सकता वैसे ही इसके प्रभामंडल ने चंद्रमंडल को आक्रमण कर लिया। बाणभट्ट ने जो कादंबरी और महाश्वेता की प्रशंसा गुण रूप की कि वह भी सब तुच्छ जान पड़ी। कालिदास ने जो कुमारसंभव में पार्वती की, वाल्मीकि ने जो सीता, मंदोदरी और तारा की बड़ाई की वह सब पीछे पड़ गयी। श्रीहर्ष वर्णित नल की दमयंती, कालिदास कथित दुष्यंत की शकुंतला, गोतम की अहिल्या, ययाति की देवयानी, अज की इंदुमती, चंद्र की रोहिणी इत्यादि इसको देख इस समय सब लोप हो गईं-इनका रूप और गुण सब केवल पुस्तकों में रह गया। अब छाया भी नहीं दिखाती। उसको देख मेरे हृदय में यह 'लोक उठा -

तन्वी 'यामा शिखरिदशना पक्व बिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्रस्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्यैव धातुः।

इतने से उसके सर्वांग का वर्णन संक्षेप हो गया तौ भी बिना कुछ कहे रहा नहीं जाता। इसलिए दो चार बातैं और भी सुनो। सर्वांगसुंदरी के रूप की कौन प्रशंसा कर सक्ता है? उपमा कौन सी दी जाय? जिये सोचते हैं वही जूठी मिलती है।

'सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरिय विदेह कुमारी'

तुलसी

उसने घन अंजन से काले काले केश वेष की शोभा बढ़ाते थे। उसकी अलि अवलि सी घूंघरवारी अलकै मुखचंद्र के ऊपर ऐसी जान पड़ती थी मानौ व्याल के छौने अमृतपान करने की चेष्टा कर रहे हैं। सुंदर सुभल ललाट द्विरद रद की स्वच्छता को लजाता था। बुद्धि और चतुराई का सूचक-मुनि के मन का मूपक-काव्य-कला का आलय-कुशलता का उदय-स्त्री चरित्र का केंद्र-बुद्धि और विश्वास निर्माण करने का ध्रुव-ये सब बातैं ललाट में लिखी सी ज्ञात होती थीं। निशाकर सा आनन प्रभा का आकार-जिसे देखे रमा सागर में 'श्यामसुंदर के शरणागत हो वही शेषशायी के साथ रम रही। कमल भी जिसको देख जल में छिप गया। केशकुंज से आवृत्त उसका मुख जलद-पटल के बीच मयंक की शोभा जीतता था। अथवा मधुकरों की शवली अवली नवली नलिनी के चारों ओर गूँजती जान पड़ती थी। पंकज को गुण न चंद्रमा में और न चंद्रमा का पंकज में

होता है–तौ भी इसका मुख दोनों की शोभा अनुभव करता था। काली काली भौहैं कमान सी लगती थीं। धनुष का काम न था। कामदेव ने इन्हैं देखते ही अपने धनुष की चर्चा बिसरा दी। जब से इसे भगवान शंकर ने भस्म कर दिया तब से यह और गरवीला हो मिस इनसे धनुष का काम लेता था

–विलोचन इंदीवर पे भ्रमरावली, मुख–मदनमंदिर के तोरन–रागसागर की लहरैं–ऐसी उसकी दोनों भौहैं थीं। उसके नैनों की पलकें, तरुणतर केतकी के दल के सदृश दीर्घ किंचित चटुल और किंचित् सालस शोभायमान थीं। नैनों की कौन कहे, ये नैन ऐसे थे, जिसमें नै न थीं जिन्हें देख हरिणी भी अपने पिछले पाँव के खुरों से खुजाने के मिस कहती थीं कि तुम अपने गर्व को छोड़ दो। हृदयवास के आगार में बैठे मदन के दोनों झरोखे–रागसहित भी निर्वाण के पद को पहुँचाने वाले कान तक पहुँचने में अवरोध होने से अपने लाल कोयों के मिस कोप दिखाते–अशेष जगत को धवल करते–फूले कमल काननों से गगन को सनाथ करते–सेकड़ों क्षीरसागरों को उगिलते–और कुंद और नीलोत्पलों की माला की लक्ष्मी को हँस रहे थे मानो मन के भाव के साक्षी होकर हृदयगार के द्वार पर अड़े हों।

इसका सुंदर नाशावंश मानो दशन रत्नों के तोलने का दंड अथवा नैन सागर का सेतुबंध, अथवा जोबन और मन्मथ रूपी मत्त मतगंजों का अगड़ है, मानो कंदर्प ने अपनी कला कौशल्यता दिखाने के लिए धनुष भौहों के कोनों में रूप के दोनों मीन बझा कर नाशादंड पर धर दिए हों अथवा पथिक कपोतों के फसाने के लिए भ्रू तराजू पर चुन की गोली धरी हों।

अमी हलाहल मद भरे सेत 'याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहिं चितवत इकबार।

(बिहारी)

उसके पके बिंबोंष्ठ मुखचंद्र की निकटता के हेतु संध्याराग से रंजित हैं। दंतमणि की रक्षा के सिंदूर मुद्रा को अनुकरण करने वाले हृदय के राग से मानो रंजित राग सागर बिद्रुम के नवीन पल्लव से उसके अधर पल्लव थे।

दशन की अवली लाल ओठों के बीच में ऐसी जान पड़ती थी मानो मानिक के पल्लव में हीरे बगरे हों, विद्रुम के बीच में जैसे मोती धरे हों, प्रवालों के बीच सुमन अथवा ललाम लाल–लाल पल्लवों पर ओस के कनूके हों।

मुस्कराहट के साथ ही चाँदनी चाँद की मंद पड़ जाती थी। निरखनेवालों की आँखें बिजुली की चकाचौंधी के सदृश ढँप जाती थीं। नव

जोवन का एक यह भी समय है, जब लोग भोली हँसी पर तन मन वार देते हैं अथवा उसके सन्मुख बैकुंठ का भी सुख कुंठ समझते हैं। उसकी कंबु या कपोत सी ग्रीवा मृणाल की नम्रता को भी लजाती थी, उसके दोनों स्कंध प्रेम और अनुराग सम्हारने को बनाए गए थे, उसके पीन कुच पर छूटे चिकुर ऐसे लगते थे मानो चंद्रमा से पीयूष को ले व्यालिनी गिरीश के शीस पर चढ़ाती है। मदन के मानौ उलटे नगारे हों, मदन-महीप के मंदिर के मानो दो हेम कलस, बेलफल से सुफल-ताल फल से रसीले-कनक के कंदुक-मनोज-वाल के खेलने की गैदैं-ऐसे अविरल जिन में कमल तंतु के रहने का भी अवकाश नहीं। गरमी में शीतल और शीत में ऊष्म ऐसे अग्नि के आगार जिसको हृदय से लगाते ही ठंढे पर दूर से दहन करने वाले-शरीर सागर के दो हंस-पानिप पानीके चक्रवाक मिथुन-कमल की कलीं-मन मानिक के गह्वर शैल जिन पयोधरों को विश्वकर्मा ने अपने हाथों से खराद पर चढ़ा कर रचा था, इस त्रिभुवन मोहिनी के तनतरु के मनोहर और मधुर फल थे। पतन के भय से मदन ने इन पर चूचुक के छल से मानो कीलै ठठा दी थीं। बस कहाँ तक कहूँ।

इनके नीचे नवयौवन के चढ़ने के हेतु मनोज की सीढ़ी सी त्रिवली की अवली शोभिज थी। अमृतरस का कूप नाभी का रूप था।

उसकी कटि छटिकर छल्ला सी हो गयी थी, केहरी भी जिसे देख अपने घर की देहरी के बाहर कभी नहीं निकला, ऐसी सुकुमारी जो बार के भार से भी लचती थीं। ऐसी पतरी जें मुठी में भी आ जाती थी। कई तो उसे देख भ्रम में पड़े थे कि लंक है या नहीं या केवल अंक ही का शंक है। नवजोबन नरेश के प्रवेश होते ही अंग के सिपाहियों ने बड़ी लूट मार मचाई इसी भौंसे में सभों के होंसे रह गए किसी ने कुछ पाये किसी ने नितंब बिंब-पर यह न जान पड़ा कि बीच में कटि किसने लूट ली। लंक के लूटने की शंका केवल कुच और नितंबों की थी, क्योंकि जोबन महीप ने जब इस द्वीप पर अमल किया तब डंका बजा कर क्रम से केवल ये ही बढ़े। सुंदर वर्तुलाकार जाघैं कनककदली के खंभों की नाईं राजती थीं मानो किसी ने उलटे स्तंभ लगा दिए हों। कलभ की शुंड भी गुड़ी मार कर उसके पेट तरे छिप जाती थी। कालिदास को भी कोई उपमा नहीं मिली, तभी तो उनने कहा है -

नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वात्
एकान्त शैत्यात्कदलीविशेषाः।

लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं
जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्या।

इसकी गति के अनुसारी राजहंस भी मानस सरोसर को उड़ गए, इसके चरणसरोरुह ऐसे शोभित थे मानो स्थलारविंद हों, नखों की छटा ऐसी थी मानो सूर्य की किरणों से पंकज खिला हो। जहाँ जहाँ यह अपने चरनों को धरती ऐसा जान पड़ता कि ईंगुर वगर गया है। यह सर्वांगसुंदरी नख से सिख तक एक साँचे कैसी ढरी चित्र की छबि सी प्रकट थी। अथवा किसी ने जैसे मणि की पुतरी बनाकर गौर उपलों के पर्वत पर धर दिया हो। केशों में जिसके विचित्र विचित्र सुमन खचित थे, माँग में मोती की लर, अलकों के अंत में चमेली के फूल, जूड़े पर शीश फूल के स्थान में गुलाब –

'काको मन बाँधत न यह जूड़ा बाँधनहार'

और चोटी के अंत में कदंब का फूल देखने वालों के हिए में कटारी सी हूल देकर करेजे में शूल उपजाता था। घन केशपाशों पर दामनी दामनी सी छटा छहराती थी।

'तमके विपिन में सरल पंथ सातुक को
कैधौं नीलगिरि पै गंगा जू की धार है।
कैधौं बनवारी बीच राजत रजत रेख
कैधौं चद कीन्हौ अंधकार को प्रहार है।
नापत सिंगार भूमि डोरी हाँसरस कैधौं
वलभद्र कीरत की लीक सुकुमार है।
पयकी है सार घनसार की असार माँग
अमृत की आपगा उपाई करतार है।'

यह तो उसके माँग का हाल था। उसकी बेसर की महिमा कौन विचारा कह सक्ता है, तौ भी इस प्रकार की कुछ शोभा थी।

एहो व्रजराज एक कौतुक विलोको आज
भानु के उदै में बृषभानु के महल पर।
बिनु जलधर बिनु पावस गगन धुनि
चपला चमकै चारु घनसार थल पर।
श्रीपति सुजान मनमोहन मुनीसन को
सोहै एक फूल चारु चंचला अचल पर।
तामें एक कीर चोंच दावे है नखत जुग
शोभित है फूल 'श्याम लोभित कमल पर।

अथवा यह जाना पड़ता था कि पृथ्वी की गोलछाया चंद्र पर पड़ी है। नाक का मोती ऊपर कजरारे लोचन के प्रतिबिंब से और नीचे प्रवाल अधरों की आभा से आधा 'श्याम और आधा लाल जान पड़ता है-यदि लाल गुजा की उपमा दी जाय तौ भी संगत हो। सादी-सादी सूरत भोली भाली भौहैं-मनुष्यों के हिए में मूरत सी गड़ गई थी, मुख निशाकर पर शीतला के छोटे-छोटे बिंदु ऐसे जान पड़ते थे जैसे देव ने कहा है-

'भाग भरे आनन अनूप दाग सीतला के,
देव अनुराग झिया से झमकत है।
नजर निगोड़िन की गड़ि गाड़े परे,
आड़े करि पैन दीठ लोभ लपकत है।
जोबन किसान मुख खेत रूप बीच बोयो,
बीच भरे बूँदन अमंद दमकत है।
वदन के बेझे पै मदन कमनैती के,
चुटारे सर चोटन चटा से चमकत है।'

चाँद तारे का दुपट्टा पीत कौषेय की सारी यद्यपि भारी थी तौ भी समय के अनुसार कुछ कुढंग नहीं लगती थी। आधा सिर खुला, दक्षिणी रीति के बसन पहिने, अति सुकुमार रति का रूप। दूर से देख मेरे मुख से अकस्मात् यह निकल पड़ा कि यह 'वनज्योत्स्ना' किस 'श्यामा का रूप है। मैंने तो ऐसी मोहिनी मूरति कभी नहीं देखी थी, यद्यपि मेरी आयु अभी दो हजार आठ सौ वर्ष से अधिक न थी तौ भी यह मदन मोहिनी कीसी और पहले कोई ललना नहीं लखी थी। मेरी इच्छा हुई कि इसके चरण युगलों की यदि आज्ञा हो तो सेवा कुछ दिन करूँ। इसी सोच विचार में चार हजार बरस व्यतीत हो गए, अंत को जब आँख खुली तो फिर भी उसी मूरत का ध्यान, वही सामने खड़ी, वही आँखों में झूलने लगी। विमान तो आज्ञाकारी था। मन में सोचते ही उसी की ओर मुड़ा निकट जाने से और भी चरित्र देखे। यह 'मनोरथ-मंदिर की नवीन मूर्ति' नवनीत के कोमल सिंहासन पर बैठी है-इसकी तीन सखी निरंतर सहचरी होकर इसके सुख-दुःख की भागिनी सी बनी रहती हैं। ये दोनों ऐसी जान पड़ती थीं मानो इसकी भगिनी हों, क्योंकि बोलचाल मुख का बनाव अंग का ढाल-विल मयंक सा आनन-वस्त्र और आभूषण सब तद्विषय के सूचक थे। मुझै इनकी मुसक्यान बड़ी सुंदर लगी। एक तो 11 और दूसरी 6 वर्ष की थी। तीसरी इसकी सखी कुछ ऐसी रूपवती तो नहीं थी, पर हाँ-संगत की आँच लग ही जाती है-देह इसकी गोरी-मानो छोटे छावले की छोरी हो।

गजराज सी चाल–गले में चमेली की माल–बड़ी चतुर पर मदनातुर –गंगाजमुनीवाल–तौभी मन्मथ के जाल को लिए–'मिस्सी के वदनामी का पर खोसे'–अधरों को द्विजों से दबाए–दाँतोंकी बत्तीसी खिलाए सुमार्ग से कुमार्ग पहुँचाने की मशाल–दुष्टपथ की परिचारिका, विलासियों की सहचारिका–द्रव्य के लिए तन और मन की हारिका–सुमतिवाली बालाओं के मन में कुमति की कारिका–'बुढ़ियाबखान' सी पुस्तकों की सारिका–अपने भक्तों पर जीवन की हारिका–अच्छे अच्छे कुलों का चौका लगाने वाली–अभिसारिकाओं की नौका–ऐसी प्रगल्भ मानौ डौका–मदनपाठशाला की बालाओं को परकीयत्व धर्मशास्त्र सिखाने की परिभाषा–'परपतिसंगम' रूप को कंदर्प व्याकरण से सिद्ध कराने वाली–रति वेदांत की परिपाटी सिखाने वाली–सुमति–लोप–विधायक सूत्र को कंठ करानेवाली–कुपंथसरिता की सेतु–मदनगीता महामाला मंत्र की ऋषि–सुरति सिद्ध कराने की आचार्य–कामानल में हवन कराने को होता –पर पुरुष आलिंगनतीर्थ में उतरने की सीढ़ी–संभोग की शिला–स्थूल काय–बलिष्ठ जंघा–सिंदुर रहित माँग–कंकन शून्य हाथ–स्वेत दुकूल पहने–ऐसा स्वाँग किए उसी नववधू के पीछे खड़ी है।

ये सब गुण उसके प्रत्यंग देखने से प्रकट होते थे। ऐसी ही सखी कुलवधू को लकार लोप का आकार बना देती है। ईश्वर इनसे बचावै।

मैंने इनके रूप भली–भाँति अनिमिष नयनों से देखे पर स्वप्न में भी स्मरण न हुआ कि इन्हैं पहले कभी देखा था। बार–बार यही कहना पड़ा–'अहो मधुरमासां दर्शनम्' उस एकादश वार्षिकी कन्या का रूप भी विचित्र था। साँवरा मुख–काले नैन और काले चिकुर–वाल्यावस्था की भूमि में मदन किसान ने ऐसा श्रम किया था कि यौवन बीज की अंकुर निकल रहे थे। बालापन में भी चतुराई, कुंद सी हँसी भुराई और चतुराई दोनों सूचन करती थीं, आँखैं अमृत और विष की कटोरी थीं, आँचर यद्यपि सामान्य रीति से नहीं ढाँकती थीं तौ भी किसी–किसी को देख अनेक हाव–भाव करतीं थीं। बालक और बालिकाओं के क्रीड़ा–स्थल पर जाती और कभी किसी को देख मुसकिराकर और लाज बताकर घर में छिप जाती। सब बातैं जो रसीलीं नवोढ़ा जानती हैं–यद्यपि उसे इनका तनिक भी अनुभव न था वह जानती थी, मानौ काम की चटशाल में उसने हाल में रति की परिपाटी ली हो। रस का अनुभव कुछ नहीं तौ भी सुन–सुन के अभी से परिपक्व हो रही थी। रस की बातैं सुन कर ऐसी मुसकिराती कि अधर पल्लव के बाहर मुसकिरान कभी नहीं निकलती। प्रेम की धाँतैं सुन मुँह नीचा कर लेती।

फल मूल मिष्ठान्न आदि उसको बहुत अच्छे लगते थे। रजतलोह की चुंबक, मतलब की पूरी, काम की धुरी नेह में जुरी मानौ किसी ने उसी की डुरी से बाँध दिया हो।

तीसरी कन्या, रूप की धन्या, यद्यपि केवल 6 वर्ष की तौ भी कुशल और प्रवीनता की अंकुर सी जनाती थी।

इन दोनों को देख मन में यही उठता कि 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' जिनके रूप के केवल अवलोकन मात्र ही से इतने गुणों का संभव और अनुमान होना प्रत्यक्ष है तो चरित न जाने कैसे-कैसे होंगे। यही बड़ी देर तक सोचता रहा। जी में आया कि निकट जाकर उस लक्ष्मी का जो ऐसी पश्यन्मनोहरा उस पर्वत के शिखर पर आविर्भूत हुई थी कुछ वृत्तांत पुछैं और सुनैं। इतने ही में ऐसी पवन चली कि विमान डगमगाने लगा कहीं सिर कहीं धड़ कहीं टोपी कहीं जूते रातदिन का ज्ञान चला गया, न जाने किस मंदराचल के खोह में उलूक के समान जहाँ बेप्रमान अंधकार है जा छिपा। निकट जाने का विचार करते ईश्वर ने क्या अनाचार कर दिया कि सोचा विचारा सब नष्ट हो गया। पर यह तो घर की खेती थी। उस फूस ने तो सभी युक्तियाँ बतला ही दी थीं अब कुछ चिंता की बात नहीं थी। मैं ने सोचा कि जहाँ फिर एक गोता लगाया तहाँ ज्ञान और भान का पोता का पोता गगनगंगा के सोता से निकला चला आवैगा फिर कोई सोता भी हो तो जग जाय, पहरे की बात नहीं। इतनी नहरैं कि उसकी लहरैं बड़ा शब्द करती हैं। फिर तो 'प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम्' यह गगनगंगा कहाँ से आई इसका कुछ ठीक पता नहीं लगता, पर सुनते हैं कि महादेव नंगा के जो सदा भंग में मग्न है झंगा से निकलती है पर इसका क्या प्रमाण?

पुराण।

पुराण-सुराण क्या?

वाहजी! कुराण (पुराण) नहीं जानते,

नहीं।

तो अधिक क्या कहैं, गंगा उस नंगा के जटाजूट में छूट कर नाचती है, फिर मर्त्यलोकवासी सत्यानासी उसके कनूकों को लूटकर क्षीरसागर के वासी होते हैं। वहाँ उन्हैं साक्षात् लक्ष्मी जी की झाँकी होती है।

क्या वे वहाँ अकेली रहती हैं?

नहीं रे मूर्ख, क्या तू ने अभी लक्ष्मी को नहीं जाना, वह कभी अकेली रहीं हैं कि रहैंगी, वे बड़ी चंचला हैं। भगवान् शेषशायी 'यामसुंदर के साथ शयन

करती हैं। लिखा भी तो है 'एका भार्या प्रकृतिमुखरा चंचला च द्वितीय' पर क्या हम ऐसी बातैं उस देवी के विषय में कह सक्ते हैं–नहीं–नहीं भाई–वह तो हमारी पूज्य है। तौ भी सच्ची बात के कहने में क्या डर, 'सत्यमेव जयते नानृतम्' साँच को आँच कहाँ। बस, अब युक्ति सोचने बैठे कि कौन सी युक्ति करैं जिसमें उस अलक्ष्य देवी के दर्शन फिर भी हों और कुछ बातचीत करैं, सोचते–सोचते एक बात याद पड़ी पर लिखैंगे नहीं, लिखने की कौन बात कहैंगे भी नहीं। उसी युक्ति से फिर आँख मूदीं और क्षण भर ध्यान किया तो फिर भी उसी के सामने पहुँच गए वही मूर्ति फिर भी नैनों के सामने नाचने लगी। ऊमर के फूल सरीखे दर्शन हुए, उसकी सुंदरता देखते ही मेरी इंद्रियाँ शिथिल पड़ गईं, पलकैं झपने लगीं। हाथ पैर ढीले पढ़ गए मैं तो जक गया। उसी समय मूर्छित हो गिरा जाता था और भूमि ले लेता यदि मेरा हितकारी सेवक मुझे अपना सहारा न देता। उसके कंधे पर अपना सिर डाल कर बैठ गया। आँखैं मुकुलित हो गईं, तन की सब सुधि बुधि जाती रही। गुलाब जल के अनेक छींटे मीठे–मीठे मेरे मुख पर सींचे, धीरे–धीरे संज्ञा आयी। नेत्र आधे खुले, साँस बहुरी, सिर उठा कर देखा प्रणाम मन ही में किया। हृदय में हाथ जोड़े, इच्छा हुई कि कुछ बोलै और अपना जी खोलै या कहीं को डोले सेवक ने सहारा दिया। बल पूर्वक इंद्रियों को सम्हार सरस्वती को मनाय वचन की शक्ति को तोल बोलने लगा।

'भगवति तेरे चरणकमलों को प्रणाम है', इसको सुन भगवती मौन हो रही मैं ने फिर भी कहा –

'नारायणि प्रणाम करता हूँ, भला इस दीन दास की ओर तनिक तो दया की कोर करो' –

देवी ने देखा, ऐसी दृष्टि की मानो सेतकमल की श्रेणीं बरसाई हों। केवल दृष्टि मात्र से मेरा प्रणाम ग्रहण किया और अपनी पूर्वोक्त सखियों की ओर निहारी। सखीं सब मुसकिराकर रह गईं। मैं और अचंभे में हो गया सोचने लगा यह कैसी लीला करती है। भला कुछ और इससे पूछना चाहिए। ऐसा मन में ठान फिर भी कुछ कहने को उत्सुक हुआ और निकट जा बोला।

'चंद्रमुखी यदि तुझै कष्ट न हो तो कुछ पूछूँ, मेरा जी तुझसे कुछ बात करना चाहता है।'

'भद्र कहो क्या कहते हो, जो इच्छा हो पूछो।'' ऐसा कह चुप हो गई।

मैंने कहा, 'भद्रे–यदि क्लेश न हो तो कहो तुम किस राजर्षि की कन्या हो कहाँ तुम्हारा देश है और इस शिखरपर किस हेतु फिरती हो?'

उसने कहा, 'मेरी कथा अपार है, सुनने से केवल दु:ख होगा। कहना तो सहज है पर सुनकर धीरज धरना कठिन जनाता है। ऐसा कौन वज्र हृदय होगा जो उसे सुन फूट-फूटकर न रोवैगा-यह मेरी अभागिनी के चरित किसने न सुने होंगे और सुनकर कौन दो आँसू न रोया होगा,' इतना कह लंबी साँस लेकर नेत्रों में जल भर लिया। मैं तो सूख गया कि हा देव इस देवी को भी दु:ख है क्या ऐसी धन्य और सुंदरी को भी दुर्भाग्य ने नहीं छोड़ा। वाह रे विधाता तेरा विधान धन्य है। धिक्कार है तुझै जो तूने इस पुण्यात्मा जीव पर भी दया न की। न जाने यह अपनी कथा कह कर कौन-कौन विष के बीज बोवैगी और क्या-क्या हाल कह कर बेहाल करैगी, फिर भी ढाढस बाँध बोला।

'सुंदरी मैं बहु शोकग्रस्त हुवा क्या मैंने तुम्हैं कष्ट तो नहीं दिया। जान पड़ता है कि पूर्व दु:ख के घटा फिर से हृदय गगन पर छा गए, तो अब कही देना भला है क्योंकि 'विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं-जनयति' और भी किसी परिचित या सज्जन के सामने जो दु:ख और सुख का समभागी हो कहने से दु:ख बट जाता है।

'स्निग्धजनविभक्तं हि दु:खं सह्यवेदनम्भवति।'

'स्वजनस्य हि दु:खमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते।'

'मुझे अभागिन की कहानी भी क्या किसी को सुहानी है, परंतु तुम्हारा यदि आग्रह है तो सुनो। मैं शुद्धभाव से तुम्हारे सन्मुख सब यथास्थित कहती हूँ,' इतना कह कई बार लंबी-लंबी सांसैं भर आकाश की ओर दृष्टि कर यौं बोली।

'भूमंडल में जो आखंडल के चाप के सदृश गोलाकार है जंबू द्वीप नाम का प्रदीप जो दीपक समान मान को पाता है प्रसिद्ध क्षेत्र है। उसी में भारतखंड में अपने हाथों से बनाया हो वर्तमान है। भारतखंड में अनेक खंड हैं पर आर्यवर्त सा मनोहर और कोई देश नहीं। पृथ्वी के अनेक द्वीप द्वीपांतर एक से एक जिनका चित्र ही मन को हर लेता है वर्तमान है पर आर्यवतर्त सी पुण्य भूमि न तो आँखों देखी और न कानों सुनी। इसके उत्तर भाग की सीमा में हिमालय सा ऊँचा पर्वत जो पृथ्वी के मान दंड के सदृश है भूलोक मात्र में ऐसा दूसरा नहीं। गंगा और यमुना सी पावन नदी कहाँ हैं, जिनके जल साक्षात् अमृतत्व को पहुँचाने वाले हैं। त्रिपथगा की जो आकाश, पाताल और मर्त्यलोक को तारती है, कौन समता कर सक्ता है। सुर और असुरों के मुकुटकुसुमों की रजराजि की परिमलवाहिनी, पितामह के कमंडलु की धर्मरूपी द्रवधारा, धरातल में सैकड़ों सगरसुतों सुरनगर पहुँचाने की पुण्य डोरी-ऐरावत के कपोले घिसने से जिसके तट के हरिचंदन से तरुवर स्यंदन होकर सलिल को सुरभित करते हैं, लीला से जहाँ की सुर सुंदरियों

के कुचकलशों से कंपित जिसकी तरल तरंग हैं नहाते हुए सप्तर्षियों के जटा अटवी के परिमल की पुन्यवेनी –हरिणतिलक–मुकुट के विकट जटाजूट के कुहरे भ्रांति के जनित संस्कार की मानो कुटिल भौंरी, जलदकाल की सरसी, गंध से अंध हुई भ्रमर माला, छंदोविचित की मालिनी, अंध तमसा रहित भी तमसा के सहित भगवती भागीरथी हिमाचल की कन्या सी जगत् को पवित्र करती हुई, नरक से नरकियों को निकारती इस असार संसार की असारता को सार करती है।

भगवान् मदन मथन के मौलि की मालती की सुमन माला, हालाहलकंठ वाले के काले बालों की विशाल जाला, पाला के पर्वत से निकल कर सहस्र कोसों बहती विष्णु से जगत्व्यापक सागर से मिलती रहती है। इसकी महिमा कौन कह सक्ता है। पद्माकर ने ठीक कहा है –

'जमपुर द्वारे के किवारे लगे तारे कोऊ
हैं न रखवारे ऐसे वन के उजारे हैं।
कहै पदमाकर तिहारे प्रनधारे जेते
करि अधभारे सुरलोक के सिधारे हैं।
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति
पतित कतारे भवसिंधु ते उवारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हैं गंगा तुम तारे आजु
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं।'
'लाए भूमिलोक तैं जसूस जवरेई जाय
जाहिर खबर करी पापिन के मिश्र की।
कहै पदमाकर विलोकि जम कही कै
विचारो तो करमगति ऐसे अपवित्र की।
जौलौं लगे कागद बिचारन कछुक तौलौं
ताके कानपरी धुनि गंगा के चरित्र की,
वाके सीस ही ते ऐसी गंगाधारा बही जामे
बही–बही फिरी बही चित्रहू गुपुत्र की।'
'गंगा के चरित्र लखि भाषै जमराज ऐसे
एरे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै।
कहै पदमाकर ए नरकनि मूदि करि
मूदि दरवाजन को तजि यह थान दै।

देखु यह देवनदी कीन्हे सब देव याते
दूतन बुलाय के विदा के वेगि पान दै।
फारि डारि फरद न राखु रोजनामा कहूँ
खाता खतजान दै बही को बहि जान दै।'

यम की छोटी बहिन यमुना से सख्यता करने से यमराज-नगर के नरकादि बंदियों को मुक्ति कराने में कुछ प्रयास नहीं होता। प्रयागराज में यमुना की सहचरी होकर इस भाव को दरसाती है। इसका समागम इस स्थल पर उनकी 'श्याम और सेत सारी से प्रकट होता है।

कहूँ प्रभा 'श्यामल, इंद्रनीली
मोती छरी सुंदर ही जरीली।
कहूँ सुमाला सित कंज जाला
विभात इंदीवरहू रसाला-1-
कहूँ लसैं हंस विहंग माला
कहूँ सुकाला गुरुपत्र राजै
मनो मही चंदन शुभ्र छाजै-2-
कहूँ प्रभा चंदहि की विभासै
जथा तमौ छाय मिली विलासै।
उतै शरत् मेघ-सुपेत लेखा
जहाँ लख्यौ अंबर छेद मेखा-3-
कहूँ लपेटे भुजगो जु काले,
भस्मांग सो शंकर केर भाले।
लखो पियारी बहती है गंगा
प्रवाह जाको यमुना प्रसंगा-4-

इसके दक्षिण विंध्याचल सा अचल उत्तर और दक्षिण को नापता भगवान् अगस्त्य का किंकर दंडवत् करता हुआ विराजमान है। इसके पुण्य चरणों को धोती-मोती की माला के नाई मेकलकन्यका बहती है, यह पश्चिमवाहिनी, जिसकी सबसे विगल गति है, अपनी बहिन तापती के साथ होकर विंध्य के कंदरों की दरी में तप करती, सूर्य के ताप से तापित, सौतों के सदृश अपने बहुवल्लभ सागर से जा मिलती है नर्मदा के दक्षिण दंडकारण्य का एक देश दक्षिण कोशल के नाम से प्रसिद्ध है।

याही मग ह्वै कै गए दंडकवन श्रीराम।
तासों पावन देश यह विंध्याटवी ललाम।
विंध्याटवी ललाम तीर तरुवर सों छाई।
केतिक कैरव कुमुद कमल के वरन् सुहाई।
भज जगमोहन सिंह न शोभा जात सराही।
ऐसो वन रमनीय गए रघुवर मग याही।
शाल ताल हिंतालवर सोभित तरुन तमाल।
विलसत निंब विशाल इंगुदी अरु आमलकी।
सरो सिंसिपा सीसम की शोभा शुभ झलकी।
भन जगमोहन सिंह दृगन प्रिय लगत पियाला।
वर जामुन कचनार सुपीपर परम रसाला।
डोलत जहँ इत उत बहुत सारस हंस चकोर।
कूजित कोकिल तरु तरुन नाचत जहँ तहँ मोर।
नाचत जहँ तहँ मोर रोर तमचोर मचावत।
गावत जित तित चक्रवाक विहरत पारावत।
भन जगमोहन सिंह सारिका शुक बहु बोलत।
बक जल कुक्कुट कारंडव जहँ प्रमुदित डोलत।
बहत महानदि, जोगिनी, शिवनद तरल तरंग।
कंक गृध्र कंचन निकर जहँ गिरि अतिहिं उतंग।
जहँगिरि अतिहि उतंग लसत श्रृंगन मन भाए।
जिनपै बहु मृग चरहिं मिष्ठ तृन नीर लुभाए।
सघन वृच्छ तरुलता मिले गहवर धर उलहत।
जिनमें सूरज किरन पत्र रंध्रन नहिं निवहत।

मैं कहाँ तक इस सुंदर देश का वर्णन करूँ। कहीं-कहीं कोमल-कोमल 'श्याम-कहीं भयंकर और रूखे-सूखे वन-कहीं झरनों का झंकार, कहीं तीर्थ के आकार-मनोहर, मनोहर दिखाते हैं। कहीं कोई बनैल जंतु प्रचंड स्वर से बोलता है-कहीं कोई मौन ही होकर डोलता है-कहीं विहंगमों का रोर कहीं निष्कूजित निकुंजों के छोर-कहीं नाचते हुए मोर-कहीं विचित्र तमचोर-कहीं स्वेच्छाहार बिहार करके सोते हुए अजगर, जिनका गंभीर घोष कंदरों में प्रतिध्वनित हो रहा है-कहीं भुजंगों की स्वास से अग्नि की ज्वाला प्रदीप्त होती है-कहीं बड़े बड़े

भारी भीम भयानक अजगर सूर्य के किरणों में घाम लेते हैं जिनके प्यासे मुखों पर झरनों के कनूके पड़ते हैं-शोभित हैं -

जहाँ की निर्झरिनी-जिनके तीर वानीर के भिरे, मदकल कूजित विहंगमों से शोभित हैं-जिनके मूल से स्वच्छ और शीतल जलधारा बहती हैं-और जिनके किनारे के 'श्याम जंबू के निकुंज फलभार से नमित जनाते हैं-शब्दायमान होकर झरती हैं।

जहाँ के गिरि विवर के तिमिर से छाये हैं। इनमें से भालुनी थुत्कार करतीं निकलकर पुष्पों की टट्टियों के बीच प्रतिदिन विचरतीं दिखाई देती हैं। जहाँ के शल्लकी वृक्षों की छाल में हाथी अपना वदन रगड़ खुजली मिटाते हैं और उनमें से निकला क्षीर सब वन के सीतल समीर को सुरक्षित करता है।

ये वही गिरि है जहाँ मत्तमयूरों का जूथ वरूथ का वरूथ होकर वन को अपनी कुहुक से प्रसन्न करता है। ये वही वन की स्थलीं हैं जहाँ मत्त-मत्त हरिण हरिणियों समेत विचरते हैं।

मंजु वंजुल की लता और नील निचुल के निकुंज जिनके पता ऐसे सघन जो सूर्य की किरनौं को भी नहीं निकलने देते इस नदी के तट पर शोभित हैं।

कुंज में तम का पुंज पुंजित है, जिसमें 'श्याम तमाल की शाखा निंब के पीत पत्रों से मिलीं हैं। रसाल का वृक्ष अपने विशाल हाथों को पिप्पल के चंचल प्रबालों से मिलाता है, कोई लता जंबू से लिपट कर अपनी लहराती हुई डार को सबसे ऊपर निकालती है। अशोक के ललित पुष्पमय स्तबक झूमते हैं, माधवी तुषार के सदृश पत्रों को दिखलाती है और अनेक वृक्ष अपनी पुष्पनमित डारों से पुष्प की बृष्टि करते हैं। पवन सुगंध के भार से मंद मंद चलती है केवल निर्झर का रव सुनाई पड़ता है कभीं-कभीं कोइल का बोल दूर से सुनाता है और कलरव का कल रव निकटस्थित वृक्ष से सुनाई पड़ता है।

ऐसे दंडकारण्य के प्रदेश में भगवती चित्रोत्पला जो नीलोत्पला की झाड़ी और मनोहर/मनोहर पहाड़ी के बीच होकर बहती है, कंकगृध्र नामक पर्वत से निकल अनेक अनेक दुर्गम विषम और असम भूमि के ऊपर से बहुत से तीर्थ और नगरों को अपने पुण्यजल से पावन करती पूर्व समुद्र में गिरती है।

यच्छ्रीमहादेव पदद्वयम्मुहुर्महानदी स्पर्शति वै दिवानिशम्।
तदेव तन्नीरमभूत्परं शुचि नवद्वयद्वीपपुनीतकारकम्।

इसी नदी के तीर अनेक जंगली गाँव बसे हैं। वहाँ के वासी वन्य पशुओं की भाँति आचरण करने में कुछ कम नहीं हैं, पर मेरा ग्राम इन सभों से उत्कृष्ट

और शिष्टजनों से पूरित है–इसके नाम ही को सुन कर तुम जानोगे कि वह कैसा ग्राम है।'' कह चुप हो रही। मैंने कहा, 'धन्य है सुंदरी तूने बड़ी दया की जो इतना श्रम कर इस अपावन जन के कानों को ऐसा मनोहर वर्णन सुना के पावन किया। यदि कष्ट न हो तो और सुनावो।'' देवी मुसकिरा के बोली, 'भद्र सुनो कहती हूँ' इसकी मुसकिराहट ने मेरे हृदय गगन का तिमिर तुरंत ही मिटा दिया और बोली, 'इस पावन अभिराम ग्राम का नाम 'यामापुर है। यहाँ आम के आराम थकित पथिक और पवित्र यात्रियों को विश्राम और आराम देते हैं–यहाँ क्षीरसागर के भगवान् नारायण का मंदिर सुखकंदर इसी गंगा के तट विराजमान है। राम लक्ष्मण और जानकी की मूरतैं सी झलकती हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो अभी उठी बैठती हों। मंदिर के चारों ओर गौर उपल की छरदिवाली दिवाली की शोभा को लजाती है। मंदिर तो ऐसा जान पड़ता है मानो प्रालेय पर्वत का कंदर हो भगवान् रामचंद्र के सन्मुख गरुड़ की सुंदर मूर्त्ति कर कमल जोरे सेवा की तत्परता सुचाती है। सोने का घंटा सोने ही की सौंकर में लटका धर्म के अटका सा झूलता दीन दुःखी दर्शनियों के खटका को सटकाता है। भटका भटका भी कोई यद्यपि किसी दुःख का झटका खाए हो यहाँ आकर विराम पाता है, और मनोरंजन दुःखभंजन–गंजन विलोल विलोचनी जनकदुलारी के कृपाकटाक्ष को देखते ही सब दुःख दारिद्र छुटाता है। राम और लक्ष्मण की शोभा कौन कह सकता है –

'शोभा सीवैं सुभग दोउ वीरा। नील पीत जलजात सरीरा।
मोर पंख सिर सोहत नीके। गुच्छे बिच-बिच कुसुमकली के।
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवण सुभग भूषण छबि छाए।
विकट भृकुटि कच घूँघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे।
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मन मोला।
मुख छवि कहि न जाय मो पांही। जो बिलोकि बहु काम लजाही।
उर मणिमाल कंबु कल ग्रीवा। कामकलभ कर भुजबल सीवा।
राजत राम समाज महँ कोशल राजकिशोर।
सुंदर 'श्यामल गौर तनु विश्वविलोचन चोर।
शरद चंद्र निदंक मुख नीके। नीरज नैन भावंते जी के।
चितवनि चारु मार मनहरनी। भावति हृदय जाति नहिं वरनी।
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदुबोला।

कुमुद बंधु कर निंदक हासा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा।
भाल विशाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं।
पीत चैतनी सिरन सुहाई। कुसुमकली बिचबीच बनाई।
रेखैं रुचिर कंबु कलग्रीवा। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवा
कुंजर मणिकंठाकलित उर तुलसी की माल।
वृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु विशाल।'

ऐसा सुंदर ग्राम जिस्में 'श्यामसुंदर स्वयं विराजमान हैं–मेरा जन्मस्थान था। वाग भी राग और विराग दोनों देता है। देवालयों की अवली नदी के तीर में नीर पर परछाहीं फेकती है–ऐसा जान पड़ता है कि जितने ऊँचे कगूरों से वह अंबर को छूती है उसी भाँति पाताल की गहराई भी नापती है–जहाँ विचित्र पांथशाला–बाला और बालक पाठशाला–न्यायाधीश और प्रबंधकों के आगार–बनियों का व्यापार जिनके द्वारे फूलों के हार टँगे हैं, जहाँ कि राजपथों पर व्योपारियों की भीर सदैव गंभीर सागर सी बनी रहती है, चित्त पर ऐसा असर करती है, जो लिखने के बाहर है।

चौड़े–चौड़े राजपथ संकीर्ण वीथी अमराइयाँ और नदी के तट सब अभिसारिका और नागरों के सहायक हैं! बिलासियों का सहेट अभिसारिकों का झपेट अनंगरंग का लपेट सपत्न जनों का दपेट सबका सब मन को प्रफुल्लित करता है।

पुराने टूटे–फूटे दिवाले इस ग्राम के प्राचीनता के साक्षी हैं। ग्राम के सीमांत के झाड़ जहाँ झुंड के झुंड कौवे और बकुले बसेरा लेते हैं, गवँई की शोभा बताते हैं, प्यौ फटते और गोधूली के समय गैयों के खिरके की शोभा, जिनके खुरों से उड़ी धूल ऐसी गलियों में छा जाती है मानो कुहिरा गिरता हो। ये भी ग्राम में एक अभिसार का अच्छा समय होता है।

'गोप अथाइन तें उठे गोरज छाई गैल।
चलु न अली अभिसार की भली सझोखी सैल।'

यहाँ के कोविद थरथरी–गोपीचंदा–भोज–विक्रम–(जिसे 'विकरमाजीत' कहते हैं) लोरिक और चदैंनी–मीराबाई–आल्हा–ढोला–मारू–हरदौल इत्यादिकों की कथा के रसिक हैं–ये विचारे सीधे साधे बुड्ढे जाड़े के दिनों में किसी गरम कौड़े के चारों ओर प्याँर बिछा–बिछा के अपने परिजनों के साथ युवती और वृद्धा बालक और बालिका युवा और वृद्ध सबके सब बैठ कथा कह–कह दिन बिताते हैं।

कोई पढ़ा लिखा पुरुष रामायण और व्रजविलास की पोथी बाँचकर टेढ़ा मेढ़ा अर्थ कह सभों में चतुर बन जाता है, ठीक है।

'निरस्थपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते'

कोई लड़ाई का हाल कहते कहते बेहाल हो जाता है–कोई किसी प्रेम कहानी को सुन किसी के प्रबल विरहवेदना को अनुभव कर आँसू भर लेता है–कोई इन्हैं मूर्ख ही समझकर हँस देता है। अहीर अहिरिनों के प्रश्नोत्तर साल्हो में हुआ करते हैं। यह भोली कविता भी कैसी होती है–अनुप्रास भी कैसा इन ग्रामीणों को सुखद होता है –

'देख बुढ़ौंना के गोठ परोसिन मोला कथै चलकोलामा'
करमा
आमा डार कोइली सुवा बोलै कागा-ध्रुव -
पर्रा में लालभाजी छानी मा आदा
तोर मुटियारी मजा भेंगै राज'-आमा

धानों के खेत जो गरीबों के धन हैं इस ग्राम की शोभा बढ़ाते हैं। मेरा इसी ग्राम का जन्म है। मेरे पिता का वंश और गोत्र दोनों प्रशंसनीय हैं। मेरे पुरुषा प्रथम तो ब्रह्मावर्त से उत्कल देश में जा बसे थे। वहाँ बिचारे भले-भले आदमियों का संग करते करते कुछ काल के अनंतर उत्कल देश को छोड़ राजदुर्ग नामक नगर में जा बसे। उत्कल देश के जलवायु अच्छे न होने के कारण वह देश तजना पड़ा, ऋषि वंश के अवतंस हमारे प्रपितामहादिक पूजा पाठ में अपने दिन बिताते रहे, कई वर्षों के अनंतर दुर्भिक्ष पड़ा और पशु पक्षी मनुष्य इत्यादि सब व्याकुल होकर उदर पोषण की चिंता में लग गए उन लोगों की कोई जीविका तो रही नहीं, और रही भी तो अब स्मृति पर भ्राँति का जलदपटल छा जाने के हेतु सब काल ने विस्मरण करा दिया। नदी-नारे सूख गए, जनेऊ सी सूक्ष्मधार बड़े-बड़े नदों की हो गई। मही जो एक समय तृणों से संकुल थी, बिलकुल उससे रहित हो गई। सावन के मेघ भयावन शरत्कालीन जलदों की भाँति हो गए। प्यासी धरनी को देख पयोदों को तनिक दया न आई। बिचारे पपीहा के पीपी रटने पर भी पयोद न पसीजा और उसके चंचुपुट में एक बूँद निचोया। इस धरनी के भूखे संतान क्षुधा से क्षुधित होकर व्याकुल घूमने गले। गैयों की कौन दशा कहे ये तो पशु हैं। खेत सूखे साखे रोड़ोंमय दिखाने लगे। शालि के अंकुर तक न हुए किसानों ने घर की पूँजी भी गँवा दी। बीज बोकर उसका एक अंश भी न पाया। 'यह कलिजुग नहीं करजुग है इस हाथ ले उस हाथ दे'-इस कहावत को भी झूठी कर दिया अर्थात्

कृषि लोगों ने कितना ही पृथ्वी को बीज दिया पर उसने कुछ भी न दिया, छोटे छोटे बालकों को उनकी माता थोड़े-थोड़े धान्य के पलटे बेचने लगी। माता पुत्र और पिता पुत्र का प्रेम जाता रहा। बड़े-बड़े धनाढ्य लोगों की स्त्रियाँ जिनके पवित्र घूँघट कभी बेमर्यादा किसी के सन्मुख नहीं उघरे और जिन्हैं आर्यवतर्त की सुचाल ने अभी तक घर के भीतर रक्खा था अपने पुत्रों के साथ बाहर निकल पथिकों के सामने रो-रो और आँचर पसार-पसार एक मुठी दाने के लिए करुणा करने लगीं। जब संसार की ऐसी गति थी तो हमारे पूर्व पुरुषों की कौन रही होगी ईश्वर जानै। मैं न जाने किस योनि में तब तक थी। जब वे लोग राजदुर्ग में आए किसी भाँति अपना निर्वाह करने लगे। ब्राह्मण की सीधी साधी वृत्ति से जीविका चलती थी। किसी को विवाह का मुहूर्त धरा-कहीं सत्यनारायण कथा-कहीं रुद्राभिषेक कराया-कहीं पिंडदान दिलाया और कहीं पोथी पुरान कहा। द्वादशी कर सीधा लेते लेते दिन बीते। इसी प्रकार जीविका कुछ दिन चली। मेरे पितामह पितामह के वंश के हंस थे। उनका नाम अवधेश था। उनके दो विवाह हुए। उनकी दोनों पत्नी अर्थात् मेरी पितामहीं बड़ी कुलीना थीं। एक का नाम कौशल्या और दूसरी का अहल्या था। अवधेश जी को कौशल्या से एक पुत्र हुवा। उसका सब सिष्टों ने मिल कर इष्ट साध वसिष्ठ सा वलिष्ठ नाम धरा। ये मेरे पूज्यपाद परमोदार परम सौजन्य-सागर सब गुणों के आगर जनक थे। कुल काल बीतने पर कौशल्या सुरपुर सिधारी, उस समय मेरे पिता कुछ बहुत बड़े नहीं थे। शोकसागर में डूबे, पर दैव से किसका बल चलता है। थोड़े ही दिनों के उपरांत भगवान चक्रधर की दया से अहल्या को एक बालक और एक बालिका हुई। बालक का नाम नारद और बाला का गोमती पड़ा। यह वही गोमती मेरे पीछे बैठी है। इस अभागिन के कुंडली में ऐसे बाल वैधव्य जोग पड़े थे कि यह बिचारी अपना सुहाग खो बैठी। इसकी कथा कहाँ तक कहूँगी। अभागिनियों की भी कहानी कभी सुहावनी हुई है? मेरे पिता जब युवा हुए अवधेश जी ने राव चाव से उनका विवाह शारंगपाणि की बेटी मुरला से कराया। शारंगपाणि का कुल इस देश के ब्राह्मणों में विदित है, 'यथा नामा तथा गुणारू' अतएव उनका कुछ बहुत विवरण नहीं किया, कुछ काल बीते माता गर्भवती हुई। इस समय मेरे पितामह काल कर चुके थे। अपने नातीपंती का सुख न देख सके अहल्या भी अनेक तीर्थों का सलिल बंद पान करते-अपने तन को अनित्य जान तीर्थाटन में लग गई थी। इसलिए इस समय घर में न थी। नौ मास के उपरांत दशम मास में मेरे पिता के एक कन्या हुई, इसे लोग साक्षात् रमा का रूप कहते थे। यह जेठी कन्या थी।

इसके अनंतर एक कन्या और हुई। उसका नाम सत्यवती पड़ा। फिर कई वर्षों में भगवान् ने एक सुत का चंद्रमुख दिखाया। सब भवन में उजेला छा गया। गाजे बाजे बजने लगे, जो कुछ बन पड़ा दान पुण्य भिखारी और जाचकों को दिया। पुन्नाम नरक के तारने वाले बालक ने मेरी माता की कोंख उजागर की, पर हाय मेटन हितु सामर्थ को लिखे भाल के अंक'-विधाता से यह न सहा गया। सुख के पीछे दु:ख दिखाया-अर्थात् कुटिल काल ने इसे कवल कर लिया।

'धिक धिक काल कुटिल जड़ करनी।
तुम अनीति जग जाति न वरनी।'

माता बिचारी डाक मार मारकर रोने लगी। घर में छोटे बड़े और टोला परोसियों के उत्साह भंग हो गए। जितने लोग पहले सुखी हुए थे उससे अधिक दु:खी हुए। आँसुओं से सब घर भर गया। पिता हमारे ज्ञानी थे, आप भी ढाढस कर सबों को जेठे की भाँति प्रबोध किया और बालक का मृतक कर्म करने लगे। काल ऐसा है कि दुस्तर दु:ख के घावों को भी पुरा देता है, जो आज भी सो कल न रहा। कल्ह सा परसों न रहा। इसी भाँति फिर सब भूल गए-पर पुत्रशोक अति कठिन होता है। पिता के सदैव इसका काँटा छाती में समा गया। कभी सुखी न रहे-इन दानन मितामी को मना कर फिर तो काजल नैनों में मजा हमारी की दशा देख विलाप करने लगते। फिर गिरस्ती में लोग लगे-कुछ काल के अनंतर उन्हैं एक कन्या और हुई। इसका नाम पत्रिका के अनुसार सुशीला पड़ा सो हे भद्र! देखो यहीं सत्यवती और सुशीला मेरी दोनों भगिनी सहोदरी हैं और मुझ अभागिन का नाम 'श्यामा है'-इतना कह चुप हो रही इस नाम के सुनते ही मेरा करेजा कँप उठा और संज्ञा जाती रही-हाय-हाय! कहता भूमि में गिर पड़ा और स्वप्न-तरंग में डूब गया।

इति प्रथम स्वप्न!
अथ दूसरे श्याम का स्वप्न
कवित्त
आनंद सहित कृष्णचंद्र द्वारका के बीच
रुकमिनी जू के महल पर जागे हैं सो,
सपने में देखो ब्रजराज ब्रजवासिन के
घर घर हाय ब्रजराज को विलाप हो,
ख्वाब में मिलाप बाढ़ो मदन को दाब बोधा
परम प्रलाप हरि हिय में न सके गो,

हाय नंद बाबा हाय मैया हाथ मधुबन
हाय ब्रजवासी हाय राधे कहि दीन्हो रोय।

ग्रीष्म की रातैं कैसी सुखद होती है-पर सुख का समय बात की बात में कट जाता है। चाँदनी खिली थी तारे छिटके थे, दूसरा पहर रात का लग गया था, मैं अपनी अकेली सेज पर बाहु का उपधान किए सोता था। 'श्यामा का ध्यान लगाकर मग्न था, इतने ही में कोई पहरेवाला गा उठा।

अहो अहो वन के रुख कहूँ देख्यौं पिय प्यारे।
मेरो हाथ छुड़ाय कहौ वह कितै सिधारो।

उस ध्यान से विलग हो गया-फिर भी वही मोहिनी मूरति सामने दिखाई दी। मैं तो उसे देखते ही भूमि पर गिर पड़ा था। अब कुछ संज्ञा हुई सेवक ने धीरज धराया। मुझै बहुत समझा बुझा कर अपने आप में लाया और बोला -

'यह किस बखेड़े में पड़े-महाराज-सचेत होकर इसकी मनोरंजनी कहानी को जो पूरी सुनिए। यह क्या बात थी जो आपको उसका नाम सुनते ही मोह और मूर्छा आ गई।'

मैंने कहा-'मुझै भी इस मोह का कारण नहीं ज्ञात हुआ कि अकस्मात् क्यों ऐसा हो गया था' -

इतना कह मैंने 'श्यामा की ओर देखा। उसका मुख भी मलीन पड़ गया था। इसको देख मुझे और भी शंका हुई कि यह क्या विचित्र लीला है। भला मैं तो ऐसा हो गया पर यह भोली किस भ्रम में पड़ी है। हृदय के शोक को रोक पूछा -

'सुंदरी तुम्हारी यह क्या दशा है-तुम क्यौं मलीन पड़ती जाती हौंश' -

श्यामा ने कहा, 'कुछ नहीं, इसका सब वृत्त तुम आप धीरे धीरे जान जावगे। केवल चित्त लगाकर सुनौ, भला तुम क्यौं निःसंज्ञ हो गए थे-' '

'क्या जानूँ यह क्या मुझै हो गया था-पर अब सुनता हूँ कहिएश' इतना कह मैं चुप हो गया।

श्यामा बोली, 'जब मैं छोटी थी मुझै माता पिता बड़े लाड में रखते थे-उनके कोई पुत्र न रहने के कारण मैं उनके नेत्रों की पुतरी थी और वे लोग मुझै सदा हाथ ही पर धरे रहते थे, रात दिन मेरे लालन और पालन ही में लगे रहते। थोड़े दिनों पर मेरे प्रथम के संस्कार करके मुझै मेरे माता पिता ने एक बाला पाठशाला में विद्याउपार्जन के हेतु भेज दिया। यह पाठशाला ग्राम के कारन बहुत भारी न थी-तौ भी 20 या 25 बालिकाओं से कम प्रति दिन इस

शाला में पढ़ने को नहीं जातीं थीं। मेरे साथा अनेक बाला पढ़तीं थीं पर ईश्वर की दया से मैं इतने शीघ्र पढ़ गई कि मेरी बराबरी पुरानी विद्यार्थिनी भी न कर सकीं। हाँ-एक तो मालती और एक माधवी मेरी सहपाठिनी थीं। उनसे मेरा निरंतर स्नेह बना रहता, और एक दूसरे के घर उठने बैठने उत्सवों में और सहज रीति पर भी आया जाया करतीं। जब मैं पढ़ लिख चुकी पाठशाला को छोड़ घर बार के काम में तत्पर हुई और मेरे पिता ने मेरे विवाह की चिंता की। धनहीन होने के कारण कोई कुलीन ब्राह्मण नहीं मिला और मिला भी तो मुझ दीना का पाणिग्रहण करने को उपस्थित न हुआ। मेरे पिता की चिंता बढ़ी और उनने इसका उद्योग किया। मेरे पिता यहाँ के विख्यात प्रतिष्ठित परिब्राजक राजकुल के मान्य कार्याध्यक्ष थे। उस कुल का नाम इस देश की पुरानी बुरी परिपाटी के अनुसार कपटनाग था। मैं नहीं जानती इस बड़े कुल का ऐसा बुरा नाम क्यों पड़ा। इसका वृत्तांत न तो मैंने कभी पूछने की इच्छा रक्खी और न कभी मेरे पिता ने मुझसे कहा इसी से मुझे नहीं ज्ञात है-पर नाम से कुछ प्रयोजन नहीं। कुल देखना चाहिए। अभी तक पाटलीपुत्र के एक मुख्य नवाब के कुल का नाम 'नवाब गदहिया' है। कटपनाग का कुल इस देश में बड़ा मान्य और पूज्य था। इसकी गद्दी पुराने महाराजों के समय से अखंडित चली आती थी और इसमें अनेक पहुँचे पुरुष भी हुए। ए एक चालीसी के अधिपति थे। वहाँ से मेरे पिता ने बहुत कमाया था। और सामान्य रीति पर भोजन आच्छादन की कुछ कमती नहीं रहती थी।

इसी ग्राम में एक सुंदर कुलीन क्षत्रियवंश के अवतंश भी यहाँ के अधिपति थे। इनका लांछनरहित कुल देश देशांतरों में प्रसिद्ध था और इनकी बात का प्रमाण था। इनके माता पिता का हाल मुझै कुछ भी ज्ञात नहीं पर ये विद्या के सागर-सब गुणों में आगर-काव्य में कुशल-बल में प्रबल-नवल नागर लंबे बाहु-प्रशस्त ललाट काले काले नेत्र-काली कालीं भौहैं-गेहुँआ रंग-चतुराई के सदन-इसी ग्राम में बहुत काल से बसते थे। रात दिन पठन-पाठन में इनका चित्त रहता। काव्यकला ने हृदय का कपाट खोल दिया था। ये सब बातैं इनके ललाट ही से जान पड़तीं थीं। सुडौल अंग अनंग के आलय थे। चिकने और काले काले बाल युवतियों के मन को काल थे। मधुर-मधुर बोली हमारी हमजोली के मन को नवनीत सरीखा पिघला देती थी। इनकी चितवन से प्रेम और विश्वास प्रकट होते थे। बड़े गंभीर और धीर-नीर के सदृश स्वच्छ निष्कपट चित्त असंख्य वित्त के आगार-मुझै बहुत भले जनाते थे। कोमल कमल से कर-छोटी छोटी दाढ़ी और

मूछैं जवानी के आगम को सुचाती थी, विद्या और कविता तो इनके जिह्वा पर नाचती थी और इस दोहे को सार्थ करने वाले इनमें सभी गुण थे –

'तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग-।'

देश देशांतर के पंडित और गुणी इनका नाम सुयश और दातृत्व सुन स्वयं आते और उनका यथोचित कालानुसार मान पान भी होता। इनका नाम 'यामसुंदर था। इनकी वय केवल 26 वर्ष की थी। ये हमारे पड़ोसी थे। और मुझसे इनकी कुछ-कुछ जान पहिचान भी रही। इस समय मेरी भी वय ठीक 14 की थी पर विद्यालाभ के कारन सभी बातैं कुछ कुछ समझ लेती थी।

श्यामसुंदर मेरे परोसी होने के हेतु दिन में दो चार बार भेंट करते। मैं भी उन्हैं अपना हितू और सहायक जान प्राय: बोलचाल करती थी। एक दिन प्रात:काल को जब मैं स्नान करके अपने अटा पर चढ़ी बाल सुखा रही थी 'श्यामसुंदर अपने कविताकुटीर के तीर बैठा कुछ बना रहा था। मुझै नहीं मालूम क्या लिखता था। द्वार पर लता छाई थी और उसके पता के फैलाव से उसका मुख कुछ ढका और कुछ प्रकट था, ऐसा जान पड़ता था कि उस मंडप में अकेला गुलाब का फूल खिला हो। मैं उनकी ओर सहज भाव से देखने लगी। वे नीचे मस्तक किए कुछ गुनगुनाते थे। कभी ऊपर देख कुछ लिख लेते और फिर कुछ सोचने लगते-मैं तो उनके स्वभाव को भली-भाँति जानती थी-मैंने जान लिया कि वे कुछ कविता करते होंगे। एक बेर और मैंने उनको भली भाँति देखा और अचानक उनकी भी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। वे मेरी ओर एक टक देखने लगे और मैं भी अनिमिष नैनों से उन्हैं निहारती रही।

'भए बिलोचन चारु अचंचल।
मनहु सकुचि निमि तज्यो दृगंचल।'

यद्यपि मैं उन्हैं प्रतिदिन देखती थी तो भी उस दिन उनके मुखारविंद की कुछ और शोभा रही मैंने भी उनके निहारने से जान लिया कि वे भी आज मुझै किसी और भाव से देख रहे हैं। तौ भी मेरा जी विश्वस्त था। मैं उनके स्वभाव को जानती थी और परिचित भी थी। मैंने और कोई चेष्ठा नैन या कर से नहीं की, स्तब्ध सी वहीं खड़ी रही, पर हृदय में उस समय अनेक प्रकार के भाव आए, कुछ लज्जा भी हुई दृष्टि नीचे कर ली। फिर सिर उठा कर उसी जगन्मोहन को देखा। उनको देखकर मुसकिराई। वे भी मेरे हृदय के भाव अपने हृदय में गुन मुसकिरा गए। मेरी बहिनें सत्यवती और सुशीला यद्यपि मेरे

साथ वहीं थीं पर कुछ न समझ सकीं–हाँ, वृंदा जब आई मेरी तन की बुरी दशा देख पूछने लगी।

श्यामा–आज तेरे शरीर की यह दशा कैसी हो गई। तू तो कभी इतना बिलंब अटा पे नहीं करती थी आज क्या हो गया। देख मुझसे मत छिपावै, मैं सब अंत में जान ही जाऊँगी'–इतना कह उसने मेरी ओर देख 'श्यामसुंदर की ओर देखा।

'कुछ तो नहीं–मेरी क्या गति होगी, जो गति रोज की सोई आज की। विशेष आज क्या हुआ जो पूछती है'–इतना कह मैं अचंभे में आ उसकी ओर देखने लगी।

'सुन 'श्यामा–आज तेरे मुख पर कुछ और पानी है। केश छूटे और आँखैं लाल सजल सी दिखाई देती हैं–तन बदन की सुधि है कि नहीं। देख आँचर कहाँ और सिर का घूँघट कहाँ है'–वृंदा ने कहा।

मैं इस व्यवस्था को सच्ची जान लज्जित हो गई, पर जहाँ तक बन पड़ा, लाज को लुकाया और उत्तर सोचने लगी। उत्तर सोचने में तो सब भेद खुल हो जाता। झपट कर सुशीला को गोद में उठा चिढ़ी हुई सी बातैं करने लगी, 'अभी गिर परती तो क्या होता इसी के मारे तो मैं कभी अटारी पर ज्यादा देर नहीं लगाती यह बुरी कही नहीं मानती जब देखो अटा के बाट ही पर बैठती है। गिर परेगी तो खाट पर धरी धरी रोवैगी' इतना कह सुशीला के गाल पर एक चटकन जड़ी कि वह रोने लगी। वृंदा ने झट उसे मेरी गोद से ले लिया और चूम चाट उसे खूब सा पुचकारा। मेरी ओर तिउरी चढ़ा और नाक को सकोर 'क्यों मार दिया' ऐसा कह लंबी हुई। अपने प्रश्न का उत्तर भी न लिया। मैंने जाना बलाय टरी, अच्छा हुआ। सत्यवती के साथ वृंदा के पीछे ही उतर गई।'

मैंने टोका, 'बाह री 'यामा 14 वर्ष में जब तुम इतनी चतुर थीं तब आगे न जाने क्या हुआ होगा। पर ढिठाई क्षमा करना मैं शुद्धभाव से तुम्हारी बुद्धिमानी की प्रशंसा करता हूँ फिर क्या हुआ'– 'श्यामा ने उत्तर दिया, 'दिन-दिन नूतन नूतन शाखा वृक्ष से निकली। उस दिन वृंदा चुप रही। न जाने सचमुच भूल गई वा चतुराई से उसको भुलावा सा दे भुलाये रही, पर कभी कई दिनों तक उस प्रश्न की चर्चा तक ओठों पर न लाई। 'श्यामसुंदर तो फिर उस समय सब बातें ताड़ गया और मुसकिरा कर हट दिया। मध्याह्न के समय उसने सत्यवती को बुलाकर बहुत प्रीति दिखाई। फलादिक भोजन कराए और नवीन वस्त्र देकर एक सादी सी अँगूठी सत्यवती को दी। सत्यवती अपना भाग खुला जान बड़ी प्रसन्न हुई। घर आ पिता जी से सब कहा। 'श्यामसुंदर की उदारता कौन नहीं जानता

था। दादा भी प्रसन्न हुए, और हम लोगों के 'श्यामसुंदर से समागम करने में तनिक रोक टोक नहीं करते थे। वरंच और भी हम लोगों को उनके पास आने जाने और गुण सीखने की आज्ञा दी। हम लोग सबके सब जब घर के काम से अवकाश मिलता उनके घर आया जाया करते। 'श्यामसुंदर ने बड़ी दया और मया दरसाई। हम लोगों की दरिद्रता दूर कर दी। हम लोगों का कई बार बुला चुला के न्यौता करते अनेक भाँति की कथा सुनाते और अनेक गुन और कला भी कभी-कभी बताते। काव्य और नाटकों की छटा बताई। सिद्ध पदार्थ का विज्ञान दरसाया। रेखागणित और बीजगणित की परिपाटी सिखाई-मानो मेरे हृदय में विद्या का बीज बो दिया। चित्रकारी पर भारी वक्तृता करी। सरगम का भाव बतलाया। मेघ और इंद्र की विद्या सिखाकर इन्हों के सजीव पुरुष या महेंद्र होने का भ्रम मिटाया। मैं बिचारी क्या जानूँ-ए सब बातैं। यद्यपि ये सब बातैं उन्होंने किसी विशेष पुस्तक से नहीं पढ़ाई तौ भी जब जब उन्हैं अपने काम धाम से समय मिलता मेरे शून्य और अँधेरे हृदय में ज्ञान का बीज और दीप स्थापन करते। जितने विषय मैंने 'श्यामसुंदर से सीखे उतने पाठशाला में भी सीखे थे। हमारी शाला के गुरु यद्यपि बड़ी कृपा करके सिखाते तौ भी मुझे इतना चाव उनके मुख से कोई बात सीखने में नहीं हुआ। जब 'श्यामसुंदर कोई विद्या का विषय कहता उसके मुख से मानो फूल झरते थे। जब कोई मेघदूत सा काव्य या शकुंतला सा नाटक सुनाता मेरे कानों में अमृत की धारा सी चुवाता। वृंदा भी मेरे साथ रहा करती और उसे मुझसे अधिक उनकी बातों को सुन रस का अनुभव होता। वह तो कभी-कभी छेड़ भी दिया करती थी पर सत्यवती और सुशीला खेल में लगीं रहतीं थीं। यह बात नैसर्गिक है। इतनी थोरी उमरवालीं लड़कीं ऐसी ऊँचीं बातों में मन नहीं लगा सकतीं। यह उमर ऐसी ही है, जिसमें सिवाय खुनखुना लट्टू-गुड़ियों के और कुछ नहीं सुहाता।

जब-जब मेरी और उनकी चार आँखैं होतीं मेरा बदन कदंब का फूल हो जाता-आँखों में पानी भर आता और तन में पसीने के बूँद झलक उठते। जाँघैं थरथरा उठतीं बदन ढीले पड़ जाते और वसन शिथिल हो जाते थे। 'श्यामसुंदर भी कभी-कभी कहते-कहते रुक जाता-रसना लटपटा जाती। और की और बात मुँह से निकल परती। फिर कुछ रुक कर सोचता और कथा की छूटी डोर सी गह लेता। चकित होकर वृंदा की ओर देखता कि कहीं उसने यह दशा लख न ली हो, पर वृंदा बड़ी प्रवीन थी। बीच-बीच में मुसकिरा जाती। सत्यवती भी कभी-कभी कान देकर कोई कहानी सुना करती। ऐसे समय प्रतिदिन नहीं आते

थे पर जब-जब बैठक होती तीन चार घंटे के कम की कदापि नहीं होती थी। क्या करे 'श्यामसुंदर को अपनी जमीदारी के कारबार से इतना अवकाश मिलना दुस्तर था। धीरे धीरे उसका प्रेम बढ़ चला मेरे जी में प्रतिदिन प्रेम का अंकुर जम चला सोचने लगती कि कब उसे देखूँ। जब तक वह अपने कुटीर में बैठता किसी न किसी व्याज से मैं उसे देख लेती। वे भी मेरे लिए मेरी देहली पर दीठि दिए ही रहते। मेरे पैर की आहट को सुन तत्क्षण पलक के पाँवड़े बिछा देते। मेरे मुख को देख चकोर से प्यारे नैनों को बुझाते-पर यह सब ऐसी गुप्तता से हुआ की घर के बाहर के वरंच परोसी भी कभी न जान सके। हाँ सेवकों के कभी कभी कान खड़े हो जाते-क्यों कि रात दिन का झमेला एक दिन खुल ही पड़ता है-'अति संघर्ष करै जो कोई। अनल प्रकट चंदन से होई'-यह कहावत है। माता पिता का कुछ इस बात पर लक्ष्य न था-और मेरा भी मन का भाव अभी तक स्वच्छ था, पर बीज इसका बोया गया था और अभिनव अंकुर भी निकल चुके थे। मैं यद्यपि उनसे ढीठ थी तौ भी मान्य और पूज्य शब्दों को छोड़ कभी और प्रकार के वचन न कहे। उनका काम सब काम को छोड़ करती। जब कभी वे प्यासे होते और अपनी दासी को भी इंगित करते तो मैं ही उठकर शीघ्र उनको जल ला देती। ईश्वर जाने वे उस जल को अमृत या अमृत का दादा समझते थे, पर उनके प्रति रोम से यही प्रकट होता कि वे प्रेम के पथिक और मुझ पर दयालु हैं।

इस प्रीति की रीति को कहाँ तक कहूँ। यह दइमारी साँपिन सी काटती है किसी मंत्र में सामर्थ नहीं कि इसका विष उतारै। एक दिन 'श्यामसुंदर भोजनोत्तर अपनी शय्या को सनाथ कर रहे थे कि सत्यवती किसी काम के लिए उनके पास ठीक दुपहर को गई और उनकी आज्ञा से उन्हीं के निकट बैठ गई। कुछ काल तक इधर उधर की बातैं हुई, फिर उन्होंने मेरी चर्चा निकाली। सत्यवती बहुत कम बोलती थी। उन्होंने जो जो बातैं उस्से पूछीं उनका यथार्थ उत्तर न पाया क्यौंकि सत्यवती एक तो इतनी पुष्ट बुद्धि की न थी और दूसरे उसको लाज भी थी। हँसकर रह जाती। हार मान 'श्यामसुंदर ने एक दोहा मुझे लिख भेजा। वह यह है -

जो बाला अलि कुंतलन अँगुरिन सों निरुवार।
सो चुराय कै मो हियो गई कटारी मार।

इस दोहे को उनके बड़े डर के साथ एक कागज के टुकड़े पर लाल-लाल अक्षरों से लिखा और कमल के कोप में रखकर सत्यवती के हाथ भेज दिया।

सत्यवती ने मेरी माता मुरला के समक्ष देकर कहा, 'जिजी! इस कमल का छतना कैसा पीला है टुक देख तो सही' इतना कह नैन मटकाए। मैंने पूछा 'यह कहाँ से लाई है?' उसने कहा, 'श्यामसुंदर ने बड़ी कृपाकर यह फूल तुझे भेजा है और मुझसे कहा कि 'श्यामा को देकर यह कहना कि 'यह मेरा हृदय कमल का कोष है मैंने 'श्यामा को समर्पण कर दिया है' इतना कह चुप हो गई। मैंने जान लिया कि इसमें कुछ कारण है, और फूल को ले जाकर अपनी उसीसे की गदिया तरे दबा दिया और फिर अपने घर के कारबार में लग गई। माता कुछ ध्यान न देकर कुछ और कृत्य करने लगी। मैंने स्नान किए। तुलसी की पूजा कर हुलसी, भोजन कर शयनागार को गई। घर के संकीर्ण होने के कारन जिस कोठरी में मैं सोती थी उसी में पोथी पत्र और लेखन के साधन धरे रहते थे। गरीब का घर कहाँ तक अच्छा हो। चित्त में तो फूल की समानी थी देह आनंद के मारे फूली सी जाती थी और यह तरंग उठै कि 'श्यामासुंदर के 'हृदय कमल के कोष' को देखूँ तो सही क्या है। उन्होंने तो 'समर्पण' ही कर दिया है। इस रूपक को घरवालों ने नहीं समझा था। जिस समय सत्यवती फूल लाई और 'श्यामसुंदर के कहे को कहा मेरे मन में तो चटपटी समानी थी। मैंने झटपट कमल को उठाया। बदन कदंब हो गया। पत्तों को टार के कोप में देखती क्या हूँ कि एक पाती जो प्रेम रस की काती थी लपेटी हुई धरी है। मैंने उसे –

'कर लै चूमि चढ़ाय सिर हिय लगाय भुज भेंट।
प्रियतम की पाती प्रिया बाँचत धरत लपेट।'

मैंने उसके भीतर का दोहा पढ़ा। कई बार पढ़ा। पढ़ते ही पीरी पर गई और मन में जान गई कि मैं उनके नैनबानों का निशाना हुआ चाहती हूँ। हुआ क्या चाहती हूँ होई गई। मेरे तन में अतन का भाव कुछ कुछ आ चला था–यद्यपि मुग्धता बनी रही तौ भी ज्ञान की ढलक आ गई थी, इसी से सब कुछ थोड़ा थोड़ा समझ जाती। इस अनेक भाव उपजे एक मन हुआ कि पत्र का उत्तर लिख दूँ फिर एक मन हुआ कि न लिखूँ। अंत में 'श्यामसुंदर के विश्वास और प्रेम ने मुझसे लिखवा ही लिया और मैंने अपनी सीधी साधी मति के अनुसार एक पत्र लिखा जिसे मैं तुमसे कहती हूँ –

'आप ने जो लिखा सो सब ठीक है, पर प्रीति सदा निभा ले जाना। हमने क्या अपराध किया, जो तुमने हमको फिर दर्शन नहीं दिया। अब हमारे अपराध को क्षमा कीजिए आप का पठन–पाठन देख हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। विद्या सीखना ही अधर्म है घर का काम न करै तो हँसी जाय। मैं तुमको कहीं न कहीं

से देख ही लेती हूँ। यद्यपि... घात लगाए रहते हैं पर क्या करैं, बिन देखे चैन नहीं पड़ता। कहीं न कहीं से आपके दर्शन हो ही जाते हैं तुमने मेरा जो भी उपकार किया उसको जनम भर नहीं भूलने की। मेरा सब अपराध क्षमा करना। द्वापर कृष्ण की लिखी।

तुम्हारी

श्यामा'

इस पत्र को लिखकर लौट के बाँचा भी नहीं और यह भी नहीं देखा कि क्या भूल चूक हुई। मैं लिखते समय अपने को भूल गई थी-इसी से दुबारा भी नहीं बाँचा। झटपट सत्यवती को देकर कहा इसे ले जा। वह भी शीघ्र ही लेकर 'श्यामसुंदर के हाथ में दे आई। 'श्यामसुंदर ने कहा, 'इसका उत्तर पीछे भेजूँगा अभी तू जा' -सत्यवती लौट आई। 'श्यामसुंदर बाँचकर आनंदमग्न हो गए। कई बार मेरे अक्षरों की बनावट देखी। मैं कुछ बुरा नहीं लिखती थी पर 'श्यामसुंदर को नहीं पाती। दस बेर मेरी पाती उन्होंने फेर-फेर बाँची, और न जाने क्या क्या कविता की। उन्हें कविता की बिमारी थी। मैं उसे बहुत नहीं समझती-इसी से उनने मुझै सदा सीधे साधे पत्र लिखे। मुझै जब वे पत्र लिखते या तो रात को जब किसी की बात भी न सुनाती-और या तो बड़े प्रातःकाल संध्यावंदन के उपरांत पर उनकी लगन मुझ पर लग गई। यद्यपि कई मास तक उनने अपनी मनोवांछा ढाँक रक्खी थी तौ भी मैं उनकी बोल चाल, डीठि, रहन बतरान और हँसन से सब कुछ जान गई थी पर मैं मौन रही। मान गहि लिया और मन चाहता कि कुछ और कहै पर लाज और स्वभाव के वश कुछ नहीं कह सकी। एक दिन वे अचानक मेरे द्वारे आन कढ़े। मैं अपनी अटा पै ठाढ़ी रही-वे मो तन देख हँस पड़े। पर मैं लाज के मारे भौन के भीतर भाज गई। उसी दिन से इन कुचाइन चवाइयों ने मिलि के चौचद पारा। मैं क्या करूँ इस विषय को जभी मन में करो तभी अलहन हो जाता है। मैंने बहुतेरा चाहा कि छिपै पर नर्म सखियाँ कभी कभी ताना मार ही देतीं थीं। नहाते, आते, जाते सभी मुझे वंक दृष्टि से देखतीं-पर मैं जान बूझ कर अजान बन जाती-पर वे क्या इस बात को न समझ जातीं होंगी। इस गाँव में एक से एक पड़ीं थीं। अब सुनिए दूसरे ही दिन नौ बजे दिन को सुशीला के हाथ सत्यवती को बुलाकर मेरे पत्र का पलटा उन्होंने दिया। मैंने अपने धन्य भाग मनाए, और उसे पढ़ने लगी। उसमें यह लिखा था -

'आज पहिला दिन है कि मैं तुमको लिखता हूँ इसी से भूलचूक होगी क्षमा करना। पहले तो मैं इसी बात में अटक गया कि तुम्हैं क्या कह के लिखूँ। जो मैं

तुमको भली-भाँति जानता हूँ और बहुत दिनों की परिचय भी है तो भी एकाएक तुम्हैं जैसा जी चाहता है लिखने में सकुच लगती है पर मुझे विश्वास है कि तुम सब समझ लोगी और भी इसका ब्यौरा निपटाना तुम्हारा ही काम रहेंगा। जब तक मुझै तुम आप लिख कर कोई राह न बताओगी मैं तुम्हैं सामान्य रीति पर ही लिखूँगा। तो बस-तुम्हारे पत्र के पढ़ते ही मैंने तुम्हारी बुद्धि की सराहना की मुझे आशा न थी कि तुम पहली ही बेर इस ढिठाई के साथ लिखोगी पर वह मार्ग ही ऐसा है कि कोई क्या करै। तुम्हारा पत्र तुम्हारे अंतरंग और मनोगत का सच्चा प्रमाण है। इस विषय में मुझै और कुछ नहीं कहना, क्यौंकि तुमसे परिचित सुजन से और ढिठाई का कहना मेरा ही अपराध गिना जाएगा-ढिठाई-हाँ ढिठाई तुम न करोगी तो कौन करेगा और भी जितना अवकाश तुम मुझै कहने का दोगी उतना ही मैं भी कहूँगा-क्यौंकि 'जहाँ तक खाट होगी पाँव भी वहीं तक फैलेंगे'-यह तो रहै-पर 'प्रीति'-हाँ-'प्रीति'-इसके क्या अर्थ-और 'निवाहने' के क्या अर्थ है, यह जरा मुझै बतावो। ये दोनों शब्द मैंने आज तक किसी शब्दवर्ण में भी नहीं पाए।

तुम तो अवश्य ही जानती होगी तभी तो तुमने इन्हैं लिखा भी है, पर जब तक तुम इन शब्दों के लक्षण न बतावोगी मैं कुछ उत्तर नहीं दे सकता। आज तक मैंने जो 'प्रीति' के अर्थ समझे हैं वे ये हैं 'प्रीति' के अर्थ 'टेढ़ी' और 'निवाहने' के अर्थ 'अनहोनी' के हैं यदि तुम्हारे कोष में भी यही अर्थ हों तो मेरे अर्थ को पुष्ट करो नहीं तो स्याही फेर देना। मैं अपनी छोटी समझ से उस तुम्हारी पंक्ति का छोटा सा उत्तर देता हूँ के 'यह सब तुम्हारे ही हाथ है।'' सत्यवती के हाथ जब मैंने तुम्हैं कमल भेजा था तब उसने क्या कहा-याद है? उसने कहा होगा कि 'यह-ने हृदय कमल का कोष, तुम्हैं समर्पण किया है'-क्यौं-यही बात है न-यदि यही हो तो इसको समझ लेना, मुझसे अधिक नहीं लिखा जाता। मेरा हाथ कुछ और लिखने में काँपता है। क्षमा करना।

'हमने दर्शन नहीं दिए'-ठीक है तुम्हारे आज कल दिन हैं कह लो जो चाहो, पर उस दिन कौन था जो चार घड़ी तक... के पास खड़ा रहा और आपने एक-बार भी आँख उठाकर नहीं देखा। क्या जाने आप न रहीं हों, तो बस यह मेरी ही दृष्टि का दोष है। क्या इससे भी और कुछ प्रमाण लोगी, सुना चाहो तो कहैं, नहीं तो बस हो गया।

'तुम्हारा मेरा समागम हुआ करता तो समय कट जाता, और तुम्हैं सिखाने में मेरा भी जी लगता, पर इस दु:खदाई रीति से सभी हारा है परवश सभी सहना पड़ता है।

'यदि तुम मुझै इतना चाहती हो कि जैसा तुमने अपने करकमलों से लिखा है तो बस रहने दो, मैं इस विषय में कुछ नहीं कहता। यह आपकी सहज दया है, मन में आवै तो दो डड़ीचँ लिख भेजना, हाथ जोड़ता हूँ।'

द्वापर कृष्णयुग तुम्हारा शुभचिंतक

फाल्गुण 'श्यामसुंदर'

यह पत्र मेरे कलेजे में बान सा लगा। मैंने इसको कई बार बाँचा और मन ही में समझ गई। क्षणभर तनकी सुधि भूल गई। मन में बहुत सी बातैं सोचने लगी। 'श्यामसुंदर उत्तर की आशा लगाए रहे। जब मैं नहाने जाती मेरे पीछे आप भी नहाने जाते। कहते कुछ नहीं पर ध्यान मेरे पर लगा रहता। इधर-उधर-देखते पर छिन-छिन पै टेढ़ी दृष्टि करके मुझै भी देख लेते। जब मैं घर लौट जाती वे भी दूसरी और से अपने कुटीर को चले जाते पर ऐसा जान पड़ता कि मेरे ध्यान से क्षण-भर विलग नहीं रहते। मैंने कुछ उत्तर न दिया, क्यौंकि मुझै ज्ञान न था कि क्या लिखूँ। अंत को वे बीमार हुए। ज्वर आने लगा। एक तो बड़े आदमी के लड़के दूसरे सर्वदा सुख ही में रहे इससे बड़े सुकुमार थे मुरझा गए। ज्वर दइमारे ने उन्हें थोड़े ही दिनों में निर्बल कर दिया, पर ओषधी अच्छी कीं। एक या डेढ़ सप्ताह में चंगे हो गए। चलने फिरने लगे, खाने पीने लगे। अब कुछ कुछ बल भी आने लगा पर, भली भाँति अच्छे नहीं हुए। इस ग्राम के जलवायु ने उन्हें बहुत अशक्त कर दिया था। वैद्य ने उन्हें मति दी कि एक मास तक दूर देश की यात्रा करो नहीं तो और शरीर बिगड़ैगा। वैद्य को उन्होंने हामी भर दी पर मुख पर पीरी आ गई उन्हैं मेरा वियोग सहना दुस्तर था। छन भर मेरे बिना रह नहीं सकते थे, पर शरीर की भी रक्षा मुख्य थी। थोड़ी देर में वैद्य के जाने पर उन्होंने सत्यवती को बुला के कहा कि 'श्यामा से मैं कुछ कहूँगा तू जा उसे बुला ला' यह सुन सत्यवती ने आकर मुझसे कहा। मैंने सोचा आज क्यौं बुलाते हैं। कुशल तो है तौ भी जाने के लिए तत्पर हुई। सफेद कोसे की सारी पहन और एक छोटी सी माला गले में डाल कर चली। अपनी देहरी पर जाकर ठठक गई, फिर मन में सोच आया कि कहाँ मुझै बुलाया है और मैं कहाँ जाती हूँ, यह बात तो मैंने सत्यवती से भी नहीं पूछी थी, कहाँ बे ठीक ठिकाने की उठ चली। हाय रे भगवान् बड़े कठिन की बात है-मैंने बड़ी भूल की थी। मैं बाहर निकल कर कहाँ जा ठाढ़ी होती। ऐसा सोच विचार के फिर लौट आई। सत्यवती से कहा, 'मुझै कहाँ बुलाते

हैं–जा पूछ आ' सत्यवती गई और एक क्षण में आकर कहा कि 'उन्होंने तुझै कविता कुटीर में बुलाया है। अभी दुपहरी का समय है–कोई नहीं है चली जा'–मैं बाहर निकली और 'श्यामसुंदर के कुटीर के तीर ज्योंहीं पहुँची 'श्यामसुंदर उठकर बाहर आए और मेरा हाथ बड़े चाव से पकड़कर भीतर ले गए। ले जाकर मुझै बड़ी कोमल कुरसी में बैठाया और वे भी मेरे सन्मुख एक हाथ के दूरी पर बैठ गए। यह कुटीर बड़ा मनोहर था। इस कुटीर में चारों ओर के द्वारों पर माधवी लता छाई थी, चमेली की बेली अपने लंबे हाथ पसारे माधवी से मिल कर मुसकिराती थी। गुलाब भी अपनी अलौकिक आब फूलों के मिस दिखाता था। विलायती किते की कुरसियाँ मखमल और रेशम से मढ़ी करीने से धरी थी। गोल चौपहल और अनेक आकार के मेज जिन पर रंग बिरंग की बनातैं पड़ी थीं बीच में रखे थे। मनोहर और विचित्र विचित्र पूठों की पुस्तकें अच्छी रीति पर धरीं थीं। सामने और आजू बाजू अलेमारियाँ, जिनमें सैकड़ौं पुस्तकैं अनेक विद्याओं को सिखाने वाली भरी थीं–शोभित थी। बीच में एक गोल छोटा सा मेज धरा था, उस पर 'श्यामसुंदर का चित्र हाथी–दाँत की चौखट में जड़ा धरा था इसको देख सभी दंग हो जाते। उसमें 'श्यामसुंदर हीरे का बड़ा सिरपेच बाँधे जिसमें बड़े बड़े बहुमूल्य के पन्ने लटकते थे, हीरे की ही सुंदर कलगी दिए–हाथ में कश्वाल लिए बैठे थे। कंठ में बड़े मोतियों का कंठा–और मयूरहार उर में झूलता था। पछाहीं पगड़ी अड़ी थी। कानों में मोती के बाले कपोलों पर झलकते थे। चंद्रहार भी मन को चुराए लेता था। मैंने तो आज तक ऐसे बहुमूल्य रत्न कहीं नहीं देखे थे। कपटनाग की यद्यपि पुरानी गादी थी पर ए लोग सदा चाल से रहे और आश्चर्य नहीं कि इनकी चालीसी की चालीसी 'श्यामसुंदर के मुकुट के एक मणि के भी मोल को न पाती। इनके इस चित्र में मुख से वीरता और माधुर्यता दोनों पाई जाती, जो इनके कुल और काव्य–कुशलता के हेतु थी। नेत्रों से प्रेम टपकता था। ललाट से अशेष विद्वत्ता जान पड़ती थी। उस समय ए दो और बीच बरस से अधिक न रहे होंगे। डाढ़ी पर एक–एक अंगुल बाल थे। यह छबि मेरे जी में गड़ गई–और शोच किया कि उस समय मुझसे इनसे क्यौं परिचय न हुआ।

इसी गोल मेज के किनारे एक और चौपहल मेज धरा था। इस पर सुंदर काले काठ की मंजूषा में एक सुरीला बाजा रक्खा हुआ था। इस अरगन बाजा को 'श्यामसुंदर जब मौज होती बजाते और सुनाते। गाने बजाने का भी इनको व्यसन था। उसी कुटीर के पश्चिम भाग में एक परदा पड़ा था और उसके उस तरफ उनका पलँग बिछा था। एक नजर में जो कुछ देखा तुमको सुनाया–जब

हमारे भेट का हाल सुनो। 'श्यामसुंदर मुझै बैठाकर सब काम छोड़ वार्तालाप करने लगे। उन्होंने पूछा, 'कुशल तो है-' ' मैंने उत्तर दिया, 'आपके रहते हमैं अकुशल कैसी? आप तो भले हैं?'

(साँस लेकर) 'हाँ बहुत अच्छे और अब तुम्हैं देख और भी अच्छे हो गए-तुम तो देखतीं थीं मैं कैसा बीमार हो गया था। वैद्य ने ओषधी की, अब अच्छा हो गया। पहले से कुछ अच्छा हूँ-पर एक वज्र पड़ा,' इतना कहकर एक लंबी साँस ली।

मैंने कहा, 'क्या? कुशल तो है-ईश्वर ऐसा न करै-' ' मैं तो कुछ जान गई थी कि वही यात्र की बात होगी, पर मुझै भी उनके बिना कैसे चैन पड़ता यही सोचती रही।

श्यामसुंदर ने उत्तर दिया, 'वज्र यही कि अब कुछ दिनों के लिए हमको तुमसे विलग होना पड़ैगा। वैद्य ने मेरे शरीर की अवस्था देखकर कहा है कि जलवायु दूसरे देश का सेवन करना होगा नहीं तो शरीर और भी बिगड़ जायेगा, शरीर की रक्षा मुख्य है-तो अब मैं दो एक दिन में जाऊँगा, तुम्हारा तो मेरे साथ जाना नहीं हो सक्ता और इधर तुम्हारा वियोग। अब नहीं मालूम क्या होगा'-इतना कह आँखों आँसू भर मेरे दोनों हाथों को अपनी छाती से लगा लिया और चुप हो गये। सिसकी भर रोने लगे और फिर कुछ भी न कहा।

मैंने उनके नेत्र आँचर से पोंछ दिए और उनके सिर को छाती से लगा कर उन्हें समझाया। पर उनके नैन सावन भादों हो गए थे। सावन भादों की सरिता कहीं रुकती है। उनके नैनों से ऐसा धारा-प्रवाह उमड़ा कि मेरा आँचर भींज गया गया। मैंने उसास ली और रोने लगी। प्रीति की नदी उमड़ आई मैंने मन में कहा कि अंत को यही होता है-पर अब तो लग ही गई थी छूटती कैसे। मैंने 'श्यामसुंदर से कहा, 'कुछ कहोगे भी कि बस रोते ही रहोगे, मुझै भी तुमने अपने दुःख दिखाकर दुःखी बना दिया। तो अब तुम्हैं कौन समझावै'-'मुझसे क्या पूछती हौ। मैं तुम्हैं छोड़ कैसे जा सकूँगा-जिसको नैन प्रतिदिन देखते थे उसको अब बहुत दिनों तक न देखेंगे। अधिक कहता हूँ तो अभी द्वारे पर भीर लग जायगी। और समय भी अधिक इसमें नहीं लगाना चाहिए, तो सुनो, मेरा जाना तो अब ठीक हो चुका। इस शरीर के लिये जाना ही पड़ा। मेरी तुमसे यही विनती है कि तुम इस दीन और मलीन अपावन जन को मत भूलना। मैं तुम्हैं अपना पता लिखकर कई लिफाफे दिए जाता हूँ तुम इसके भीतर पाती लिखकर बंद कर देना और मेरे विश्वास-पात्र हरभजना को दे देना वह मेरे पास पहुँचा दिया करै

या तो डाक द्वारा भेजा करेंगा और मेरे भी उत्तर तुम्हैं उसी के द्वारा मिला करैंगे-पर यह मेरी बारंबार विन्ती है कि भूलना कभी नहीं और एक बेर प्रतिदिन मुझ दीन का स्मरण करना। यदि मेरी कोई सहायता का कभी काम पड़ै तो मुझै खबर पहुँचाने में विलंब न करना-यदि मेरे बिना कोई काम ऐसा आन पड़ै कि न हो तो मैं सब छोड़ कै आ जाऊँगा। दया रखना-देखो-पर बस, अब लोग आवैंगे तो तुम जाव-हाय रे वज्र हृदय! फट नहीं जाता और उलटा 'जाव' ऐसे वचन कहवाता है'-इतना कह फिर भी आँखैं भर लीं।

मैं तो निःसह होकर 'श्यामसुंदर के अंक में गिर पड़ी। 'श्यामसुंदर ने मुझै सम्हार लिया। यदि वे सहारा न बन जाते तो मैं कबकी भूमि पर गिर पड़ती। 'श्यामसुंदर ने अपने वस्त्र से लोचनों को पोंछ उरई के व्यजन से व्यजन करने लगे। गुलाब जल की पिचकारी मेरे नैनों में मारी और मुझै चुंबनों से आच्छादित कर दिया। मुझै कुछ संज्ञा हुई। मैंने अपनी सकपकानी दृष्टि उनके मुखारविंद पर फेकी। बरौनी में मेरे आँसू लटके थे। उन्होंने फिर भी इस बार पलकों का चूमा लेकर उन्हें पोंछ दिया और बोले, 'तुम क्यौं रोती हौ आज सब प्रेम खुल गया, न तो तुम हमसे दुरा सकी और न मैं ढाँक सका। कैसे ढाँकता, प्रेम क्या सूजी है, जो छिपै, पर यदि हमी तुम जानैं तो अच्छा है। प्रीति प्रकट नीकी नहीं होती।'' इतना कह उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और फिर बोले-'आज यदि तुम्हारी आज्ञा पाऊँ, तो 'प्यारी'-कह के तुम्हैं टेरूँ।'' मैं चुपकी रही। 'तुम कुछ देर तक मौन रहीं, मुझै ढाढस हुआ, मैं तुम्हैं अवश्य प्यारी कहूँगा, क्षमा करना तो-प्यारी! प्रानप्यारी! मैं तुम्हैं जी से चाहता हूँ मोह करता हूँ-सुंदरी मेरे हृदय में तेरी गाढ़ी प्रीति भरी है। जगन्मोहिनी! मैं तेरे मूरति की पूजा करता हूँ, तू मेरी इष्ट देवी है और मैं तेरा भक्त हूँ। मैंने तुम्हारी मूर्ति की पूजा उसी दिन से आरंभ की थी जिस दिन पहले तुम्हैं उस दिन अटारी पर बार बगराते देखा था।'' इस वाक्य को भली-भाँति बल दे के कहा, वह कहन मेरे हृदय में गड़ गई-उतनी गहिरी कि अद्यापि मेरे हृदय के उत्तर दायक तार झनझनाते हैं। मैंने भी उन्हें कहा, 'प्यारे जो हाल तुम्हारा था सोई मेरा भी था, पर गुप्त ही रखना पड़ा, आज अच्छा हुआ जो दोनों के जी की सफाई हो गई।'' इतना सुनाय मैंने उनके करकमल पकर अपने हृदय से लगाए-उनने मेरे हाथ को ले अपने ओठों से लगाया। मैंने झींका भी नहीं, मेरा हृदय तनिक भी उस अपूर्व आनन्द को स्मरण कर न मुड़ा और मुझै उस समय ऐसा सुख हुआ जो मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। ज्यौंही मैं उस समय की तरंगों के बल से आगे झुकी उनका अनुपम मुख निरखने

लगी–और उनके काले नैनों की गंभीरता में उनके उस प्रेम को बाँचने लगी जो अभी उनके अधर पल्लव से निसरा था–त्यौंही उन्होंने मुझै गलबाही देकर हृदय से लगा लिया–हम लोगों के अधर मिले और बड़े विलंब में चुंबन का अनुकरण शब्द निकला। उन्होंने बिदा दी और मुझे इस प्रतिज्ञा पर छोड़ा कि 'चलते समय एक बेर और दिखाई देना।'

आह! उस क्षण का सुख कैसे कहूँ ये वे भाव थे जो मेरे गंभीर हृदय के कुंड से अमृत की नाईं झरने लगे थे। यह मेरा शुद्ध और पावन प्रेम था, जो 'श्यामसुंदर के लिए अंकुरित हुआ था। मैं उसे टटोल भी चुकी थी। जान भी गई कि यह ऐसा ही था। 'प्रेम'–प्रेम जिससे इंद्रियों से कुछ संबंध नहीं–प्रेम–जिस पर इंद्रियों का धक्का नहीं लगा था, प्रेम–जो आत्मा के दृष्टिगोचर हो चुका था।

'मैं घर गई, बैठी उठी, पर 'श्यामसुंदर की झलक आँख की ओट न हुई। फिर भी इच्छा हुई कि जाकर भेंट करैं पर सोचा कि बार–बार का जाना अच्छा नहीं होता। कदाचित् कोई कुछ कहने लगे तो भी ठीक नहीं। इसको सोचा तो सही पर न रहा गया। अंत में कागद कलम लेकर एक छोटा सा पत्र जहाँ तक लिख सकी लिख भेजा। वह यह था –

'मनमोहन प्यारे,

आपने जो–जो कहा था सो सब याद है। आपके बदन और मुख हमारे दोनों आँख के सामने झूलते रहते हैं, पर आपके कुटीर के द्वार की जाली नैनों को तुम्हारे तक पहुँचने को रोक देती है–क्या मोह कमती हो गया? बस अब नहीं लिखा जाता–जो मन में है मन ही में रहने दो। 'ऐ बाग के माली अपने बाग के फलों की भली–भाँति रक्षा करना–तकना–कोई पक्षी चोंच न लगाने पावैं'–चलते समय अटारी पर से भेंट होगी, बस'।

द्वापर फाल्गुण

इस पत्र को भेज दिया। उत्तर नहीं मिला और उत्तर की अपेक्षा भी तो नहीं थी। दूसरे दिन 'श्यामसुंदर के जाने की तैयारी हुई। डेरा डंडा सब पहले ही चला गया था। अकेले वे ही रह गए थे। भोर होते ही उठे स्नान–ध्यान कर कुछ कलेवा किया और सात बजे तक जाने के लिए उपस्थित हो गए। रथ बड़ी देर से कसा खड़ा था। उनके नर्मसखा मकरंद भी संग हो गए। इनकी सकुच मुझै बहुत लगती थी और सच पूछो तो अनेक कारणों से लाज और भय भी रहा आता था। ये सब

बातैं 'श्यामसुंदर को पहिले से ज्ञात थीं–इसीलिए उन्होंने मकरंद को पहले ही रथ के निकट भेज दिया था–और वे चलते समय अकेले रह गए। मैं भी अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिए अटारी पर चढ़ गई, सत्यवती और सुशीला भी मेरे संग में थीं। मैंने 'श्यामसुंदर को निकलते देखा, मेरी उनकी चार आँखैं भई, उन्होंने मेरा प्रान अपने साथ ले लिया–बार–बार–मुरक मुरक मेरी ओर दृष्टि फेकते थे। मैं भी मुर–मुर देखती थी–अपने नेत्रों में जल भर लिया। मेरी भी वही दशा हो गई। सूख साख काठ हो गई, मुख से वचन न निकला। ज्यौंही मेरे घर के नीचे आए मुझसे रहा न गया–मैंने झट दोहा पढ़ा –

'चलत चलत तौ लै चले सब सुख संग लगाय।
ग्रीषम वासर शिशिर निशि पिय मो पास बसाय।'

इस दोहे को उन्होंने नीचा सर करके सुन लिया और एक दोहा उसी समय बना कर पढ़ा –

जौं शरीर आगू चलत चपल प्रान तुहि जात।
मनौ वातवस फरहरा पाछे ही फहरात।

जो कुछ उन्होंने कहा सब सत्य था। मैंने अपने जी में बहुत धीरज धरा पर एक भी काम न आया। मेरी दृष्टि उनके पीछे चली, वे गए–नदी के तट पर पहुँचे, रथ पर चढ़ चले। मेरा भी जी मन के रथ पर बैठ कर उनके पीछे हो लिया। वे जाते हैं, मझधार में पहुँचे। इधर मेरा भी जी प्रीति की नदी के मझधार पहुँचा। केवट तो चला जाता था, मुझै कौन बचाता, पर आशा वृक्ष की शाखा पकड़ कर लटक गई। 'श्यामसुंदर गए, उस पार हुए पर मैं इसी पार थी। एक मन हुआ कि घर की कुल कान छोड़ दौड़ जाऊँ–पर लाज के लगाम ने मुँहजोरी रोक दी। नदी के तीर तक मैं भी गई। 'श्यामसुंदर उस पार पहुँचकर ऊँचे टीले पार बैठ पारदर्शक यंत्र को अपने नैनों से लगा–मुझे देखने लगे। क्या जानै मैं उन्हैं दिखी या नहीं पर मैं उन्हें जहाँ तक दृष्टि गई बराबर देखती रही। वन की लता पता मेरे ऐसे बैरी भए कि उन्हैं शीघ्र ही लोप कर दिया। रथ चला, पहिए के धूर दिखाने लगी। इधर भी मेरी धूर ही धूर दिखाती थी। कहावत है कि 'दिलों पर खाक उड़ती है मगर मुँह पर सफाई है, 'अंत को मैंने अपने जी से यह दोहा पढ़ा –

वह गए बालम वह गए नदी किनार किनार।
आप गए लगि पार पै हमैं छोड़ि मझधार।

स्नान करके घर आई। घर के कुछ काम न अच्छे लगे। माँ से कहा, 'माँ आज मेरा माथा पिराता है।'' माँ ने पूछा, 'क्यौं'-मैंने उत्तर दिया, 'क्या जानूँ-शरीर तो है।'' माँ बोली, 'तौ जा सो रह'-यह तो मेरे ही मन की कही। मैं शीघ्र जा सेज पर सो रही और मूड़ को ढाँक खूब रोई-भूख प्यास सब भूल गई। तन से मन निकल कर मनमोहन के पास चला गया। खाट पर केवल शरीर धरा रहा। माँ ने बहुत कहा, 'बेटा कुछ खा ले!' पर मैंने कुछ उत्तर न दिया। अंत को माँ ने मुझै सोई जान फिर हूँत न कराया-वृंदा ताड़ गई पर मुझसे कुछ भी न कहा। यद्यपि वह मुझै बहुत चाहती थी पर उसका 'श्यामसुंदर पर गुप्त प्रेम रहने के कारन मुझसे कुछ-कुछ बुरा मानती थी। 'श्यामसुंदर उस्से भी हँस के बोलते पर उनका सब प्रेम मेरे ही लिए था। वे अपने प्रान को भी इतना नहीं चाहते थे। नैनों की तारा मैं ही थी। प्रेम-पिंजर की उनकी मैं ही सारिका थी। ब्रह्म, ईश्वर, राम, जो कुछ थी मैं थी, वे मुझै अनन्य भाव से मानते थे, पर हाय री मेरी बुद्धि अब कहाँ विलाय गई। भद्र! मैं अब वह नहीं हूँ जो पहले थी अब वह बात ही चली गई। मैं 'श्यामसुंदर के मुख दिखाने के योग्य नहीं हूँ। 'श्यामसुंदर अभी तक मुझै उसी भाव से मानता जानता है और अनन्य भाव से भजता है पर मैं-हाय-अब क्या कहूँ, मेरी कपट रीति विश्वासघात-हाय रे दई-मैं सब कुछ एक कुवचन सहूँगी। जगत की कनौड़ी बनूँगी-हाय रे दई-मुझै जो चाहै दंड दे-मेरी गर्दन झुकी है ले जो चाहै सो कर-मैं हूँ तक न निकालूँगी। मार-मार जार डार जैसा मैंने उन्हैं जराया है तू भी मुझै जलाकर क्वैला कर दे-हाय रे ईश्वर-हाय-हाय रे करम-क्या मैंने सब धरम बहा दिया। किस भरम में पड़ी शरम भी नहीं आती-हा हा' ऐसा बिलाप करते-करते गिर पड़ी। सत्यवती और वृंदा ने सम्हार लिया। अपनी ओली में बैठाकर मुख पोंछा हवा करने लगीं। चूमा लिया।

पर मैं तो इस लीला को देख दंग हो गया। स्तब्ध होकर भीति की सी चिचौर बन गया, अनिर्वाच्य हो गया। आश्चर्य करने लगा कि ऐसे मनोहर शरीर वाले भी जो केवल पुण्य के पुंज हैं, दैहिक, दैविक और भौतिक तापों की ताप में तपते हैं आश्चर्य है कोटिवार आश्चर्य का आस्पद है, मैंने कुछ सुरीली तानें भरीं, 'श्यामादेवी की आँख खुलीं। वृंदा विजना झलती थी। वह इन सब बातों की प्रत्यक्ष देखने वाली थी सब कुछ समुझ बूझकर सासैं भर भर के रह गई। देवी को संज्ञा हुई, मैं हाथ जोड़कर बोला।

'कमलनयनी! तू क्यौं इतनी अधीर हो गई। अभी तो कहानी पूरी भी नहीं हुई इतने ही में ऐसा हाल हुआ, पूरी होते न जाने तेरे प्रान बचौंगे कि नहीं-वृंदा

तनिक देवी को समझा दे शोच न करै, क्या ऐसे जनों को भी दु:ख का लेश चाहिए।'

श्यामा देवी गद्‌गद स्वर और स्खलित अक्षर से बोली, 'सौम्य! तुम बड़े सभ्य हो। यह स्थल ही ऐसा है, कि यदि तुम इस सब वृत्तांत के साक्षी होते तो न जाने तुम्हारी कौन सी गति होती, पर तुम्हारा चित्त इस कहानी को पूरी कराने में लगा है तो लेव सुनो। मैं रोते गाते सब कुछ कह सुनाऊँगी,' इतना कह सुख से सिंहासन पर बैठ गई। चंद्रमा की प्रभा ने मुख कोकनद का विकास कर दिया था। दंत की छटा मंद-मंद कौमुदी में मिली जाती थी। वृंदा पंखा झलने लगी, सत्यवती ने पान का डब्बा खोलकर सामने धर दिया और सुशीला रात बहुत हो जाने के कारण सोने लगी। देवी ने मुख पोंछा दोनों हाथ पसार ईश्वर से मंगल कुशल के साथ पूरी कथा कहने के शक्ति का आवाहन किया, सरस्वती से हाथ जोड़े भगवती के पदकमल स्पर्श करके यों कहने लगी -

'सुनो जी मेरी बड़ी बुरी दुर्दशा हुई। मुझै 'श्यामसुंदर का वियोग सताने लगा। उनके-उठने बैठने के ठौर मुझे काटे खाते थे और मैंने बार-बार यह छंद पढ़ा -

खोर लौं खेलन जाती न तौ कहुँ
आलिन के मति में परती क्यौं।
देव गुपालहिं देखती जौ न तो
वा विरहानल मैं बरती क्यों।
बावरी आम की मंजुल वाल
सुभाल सी है उर मैं अरती क्यौं।
कोमल क्वैलिया कूकि कै झूर
करेजन की किरचौं करती क्यौं।

बस मेरी ठीक यही दशा हो गई थी, परवश में पड़ी थी। प्रान तो 'श्यामसुंदर के पास थे शरीर मात्र यहीं रह गया था। उधर 'श्यामसुंदर भी बेचैन थे। मकरंद से अपना दु:ख का रोना रोया करते। संसार उन्हैं सूना हो गया। अन्न जल में स्वाद नहीं लगता। साँप की साँस सी समीर लगती, शरीर में ऐसी पीर उठती मानौ भुजंग की मैर हो, नेत्र नरगिस के भाँति हो गए, पीरीं पीरीं पत्तियों की भाँति तन सूख गया था। बदन सूखि के किंगड़ी और रगैं तार हो गई थीं, रोम रोम से सुर उठकर मेरा ही नाम बजता था। यद्यपि अभी उन्हें गए दो चार दिन से अधिक नहीं भए थे तथापि विरह ने व्याकुल कर दिया था। दिन भर

मेरा गुन गाते और रात को मेरा स्वप्न देखते। वन-वन धूर छानते फिरे वन पर्वत की कंदराओं में मेरे ही वियोग की तान-गान कर कर झाँई से हुँकारी झराते थे।

देखी कहूँ मृगनैनी अहो वन पर्वत निर्झर सो मुहि भाखो
वात सों कंपित पादप हाय कहो किहि आतप को दु:ख चाखो।
हौं जगमोहन 'श्यामा विहाय फिरौं विलगाय इतै मन माखो
दै जु बताय कहाँ गई मोहिनी मुरत आरत को जिय राखो।
देखी कहूँ सरिता गिरि खोह कहूँ मनरंजनि मोहिनी मूरति
सो गई पंकज लेन कै खेलत कै बहलावत है मनहूँ अति।
कै कहुँ प्रेम प्रकासिबे काज लुकाय रही वन पल्लव सूरति
हौं जगमोहन देहु बताय वियोग शरीर अजौ मुहिं झूरति।

इसी प्रकार के अनेक गीत अभीत हो वन में गाते फिरते। इस चौपाई को बार बार कहते, मकरंद ही केवल इन्हें साहस देता रहता।

सो तन राखि करब मैं काहा। जिन न प्रेम पन मोर निबाहा।
हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीतें।

और कभी-कभी यह भी -

मुसौवत खीचले तस्वीर गर तुझमें रसाई हो।
उधर शमशीर खींची हो इधर गरदन झुकाई हो।

ये रस की भीनीं तुकैं गा-गा कर आँसू भर लेता। अंत को उसने मुझे एक पत्र भेजा-जिसको मैं तुमसे कहती हूँ।

'**प्रानप्यारी**,

'रटत-रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग।'

इसे समझ लेना जब से मैं तुम्हारी दया दृष्टि से दूर हुआ दर-दर घूमा पर ऐसा कोई न मिला, जो तुम्हारे विरहताप की ताप मिटाता। वन के रम्य-रम्य मनोहर स्थलों को देख तुम्हारे बिना करेजा टूक-टूक हो जाता है। प्रतिकुंज में तुम्हैं देखता हूँ-पर स्वप्न सा जान पड़ता है। इस साल 'श्यामापुर में मेरी फाग नहीं हुई, कारण तुम जानती हो, लिखने का प्रयोजन नहीं, बस-समझ जावो। इसी से मैंने टर दिया सो देखो इस साल की फाग ने मेरे बदन में आग लगा दी है, तन में वियोगाग्नि की भस्म रूपी अबीर लगी है, नैन पिचकारी हो गए हैं और ताप की ज्वाला में तन जरा जाता है। शोक और चिंता रूपी जुगल कपोलों में पीर की राख लगी है। अधिक क्या लिखैं, तुम्हारा वियोग सहा नहीं जाता। इस पावन वन

में केवल मैं ही अपावन होकर विचरता हूँ। मुझै वन के जंतुओं ने भी दीन मलीन और पापी जान तज दिया। जब तुमसे विलग हुए तब हुए तब और कौन जगत में मेरे संग लग सक्ता है। मुझै पक्षी भी देख भागते हैं। शुक सारिका भी क्रूर शब्द सुनाते हैं–अब कहाँ तक कहैं। इसका उत्तर देना, मैं भी कुछ दिनों में आ पहुँचता हूँ धीरज धरना और मुझै कदापि अपने जी से न टारना।

दोहा

चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़त भली घटे घटैगी कानि।

इस पावनारण्य से मैं मार्जारगुहा को जाऊँगा, वहाँ से वीरपुर होते वाणमर्यादा नामक ग्राम में दो दिन निवास करूँगा, वहाँ पहुँचकर मार्ग का वृत्त लिखूँगा पर तुम इस पत्र के उत्तर देने में विलंब न करना। पूर्वोत्तर युक्ति से पत्र मुझै अवश्य मिलैंगे। इन वनों का भी संपूर्ण वर्णन–पर संक्षेप यदि हो सका तो तुम्हारे मनोरंजन के लिए भेजूँगा–कृपा रखना।

द्वापर–फाल्गुण तुम्हारा वही अपावन

पावनारण्य 'श्यामसुंदर–'

यह पत्र मुझै वृंदा के द्वारा मिला–उसे हरभजना ने दिया था। मैंने पढ़कर छाती से लगाया और बार बार चूमा। मैंने उसी क्षण इसका उत्तर लिखा।

उत्तर

श्यामसुंदर!

वृंदा ने हमैं आपकी पाती दी। आप हमारे विरह में क्यौं–अब क्या लिखूँ? भूल गई! क्षमा करो। चलते समय मैंने कुछ कहा था न? उत्तर क्यौं नहीं दिया, दूर निकल गए, क्या चिंता –

'हिरदे सै जब छूटि हौ मरद बदौंगी तोहि'

दोहा

पंच द्यौस दस औधिकर गए नाथ केहिं देश।
सो बीती अब प्रान कहु रहैं सु किमि तन लेश।
वीर धीर मुहिं तजि गयो लै गौ असन रु पान।
हा प्यारो क्यौं छोड़िगो दइमारे सठ प्रान।

तुम तो चतुर हो इसे सत्य जान जो उचित हो सो करना –
द्वापर–फाल्गुण।

यह पत्र उसी रीति पर भेज दिया और उनके पास भी पहुँच गया। उसके उत्तर में उन्होंने एक लंबा पत्र पीतवन से लिखा, उसमें प्रति दिन का वृत्तांत था।

'प्राणप्यारी, तुम्हारा पत्र मुझै पीतवन में मिला मुझै इतना सुख हुआ कि मैं अपने को भूल गया। जिस समय दूत ने तुम्हारी पाती मुझै दी मैं शिवरूप साक्षात् हो गया। इधर उधर ढूँढने लगा कि इस दूत को क्या दूँ। पाती से आधी भेंट होती है। उसके प्रत्यक्षर मेरे लिए रामनाम थे। बड़ी देर तक उलट पलट बाँचा और सोने के संपुट में मढ़कर हृदय–कपाट के द्वार पर लटका। पत्रवाहक को सकुच कर चार सहस्र स्वर्ण पारितोषक दिये। उस गरीब का काम ही हो गया। हमारी तुम्हारी जय मनाते घर गया। पावनारण्य से बुधवार के दिन सायंकाल मकरंद और मधुकर के साथ चलकर मार्जारगुहा में पहुँचे, आज केवल एक कोस चलना पड़ा। इस अनूप देश का अधिपति एक वृद्ध भील जिसका नाम विराध है मार्जारगुहा में बास करता है, इसके दो चार तुरंग और हाथी सदा संग में रहते। इसके विकट आयुध भाला और फरसा थे। तलवार कटि में लटकी रहती–हाथी का सा भारी मस्तक–कराल दंष्ट्रा–सिर पर फूल की कलगी खुसी–वृक्ष से भुजा विकट गह्वर सा उदर–अजगर से दोनों पाँव चट्टान सी छाती–हाथी पर सवार तरवार आगे धरे ऐसा भयानक लगता था मानौ भयानक रस आज मूर्तिमान् होकर सजीव पर्वत पर बैठा चला आता है। यहाँ बहुधा वन दूर–दूर पर हैं। यह महीप मेरी अगुआनी के लिए महासागर तक आया। आज मनुष्य और पशु की वार्तालाप जो पुराने ग्रंथों में लिखी हैं ठीक–ठीक सत्य और प्रत्यक्ष देखने में आई।

'नर बानरहि संग कहु कैसे'

इस चौपाई का मानो अर्थ खुल गया। इस ग्राम में एक दिन चूतवाटिका में डेरा लगा कर रहा। अतिथि–पूजन भली–भाँति हुई है और चलते समय मधुकर के हाथ गरम कर दिए। यह एक ब्राह्मण हैं, यहाँ यही लेखा लगा।

'वृहस्पति के दिन हम लोग वीरपुर पहुँचे। यहाँ का ग्रामपति विराध से कुछ सभ्य है इसका नाम खर है–यहाँ मलयज नामक वन निकट है यह खर उस वन का केसरी सा दिखता था। इसका रूप विराध से कुछ थोड़ा ही अच्छा है इसलिए अधिक नहीं लिखते। यह ग्राम मैदान में है। जलप्राय वन के निकट ही यह बसा

है। यहाँ के जलवायु दोनों भले नहीं इसी से दूसरे ही दिन कूच कर गए। शुक्र के दिन तुम्हारे ही पत्र की आशा लगी रही।'

'शनिवार का दिन वाणमर्यादा में बीता, यहाँ से पर्वत पाँच कोस पर रहे। यहाँ अच्छा सरोवर जिसके किनारे कदली का उपवन है शोभित है, भगवान् भवानीपति का मंदिर यहाँ के ग्रामीणों को अवलंब है। यहाँ के 'रसालाराम' में तंबू तना था। ग्राम भी कुछ छोटा नहीं और ग्रामाधिप भी ऊँचे जात का पुरुष है। आज होली जरी-मेरी शरीर तुम्हारे बिन आप होली हो गया है। झोली में अबीर भर भर हमजोली की भीर में घुस रसाल रसाल कबीर गाते हैं। इन वन में होली का उत्सव कुछ विचित्र सा जनाता है, जैसे दूध में मिरचा, विलायत के गिरिजाघर में कुरान की आयत का पढ़ना या रामचंद्र के मंदिर में प्रभु ईशु-मसीह का नाम लेना और बेंड बजाना तथा मसजिद में शंखध्वनि का होना इत्यादि जैसे असंभव और असंगत बनाते हैं वैसे ही इस देश में ऐसे उत्सव थे।'

'रविवार के दिन मैंने चातकनिकुंज जाने का विचार किया। यह उत्कल देश का द्वार है और यहाँ का स्वामी बड़ा नामी पुरुष है, पर यह देश तुम्हारे पूर्व पुरुषों का निवास था इसी से वर्णन नहीं किया। तुमने अपने माता-पिता से इसका सब वृत्तांत सुन ही लिया होगा-निदान यहाँ से प्रातःकाल ही को रथ पर बैठा और सायंकाल तक देख-भाल फिर बाणमर्यादा को लौट आया। इस ग्राम से यह केवल चार कोस पर था। इस राज्य में रसाल के रसाल-रसाल विशाल वृक्ष बहुत हैं, इसका नाम मैंने कोकिलकुंज रख दिया है। इस ग्राम का स्वामी जब मैं गया उपस्थित न रहा पर उसके प्रतिनिधि ने बड़ा सत्कार किया और यहाँ के मुख्य मुख्य निवास और कार्यालय दिखलाए। वश का सघन वन इसके चारों ओर लगा है और राजा के महल एक पर्वत पर बने हुए हैं, जो सजल होने के हेतु अति मनोहर लगते हैं। निर्झरों का घर्घर शब्द -वनजंतुओं का गर्जना-सिंह व्याघ्रों का तरजना जिसे सुन विचारी कोमल बालाओं के हृदय का लरजना-इस दुर्ग के गुर्जों ही से बैठे सुन लो। सुंदर सरोवर बरोबर जिन पर तरोवर झुके हैं शोभा बढ़ाते हैं। यहाँ से लौट कर बाणमर्यादा के 'रसालाराम' में रात भर विश्राम किया। तुम्हारा स्वप्न आधी रात को देखा। ऐसा देखा मानो तुम्हारे पिता ने तुम्हें कहीं भेज दिया हो और ज्यौंही मैं उन्हें निवारने लगा मेरे नेत्र खुल गए करेजा काँप उठा। होनहार प्रबल होती है, पर भावी वियोग यद्यपि स्वप्न ही था तथापि शोक का अंकुश कुश का भाँति हृदय में गड़ गया था कुछ गड़ गड़ तो नहीं हुआ, लिखना, पर तुम्हारी प्रीति की कथा यहाँ तक विदित है।'

'सोमवार 2–आज मैं बाणमर्यादा से वाराहगर्त्त को आया। छोटे–छोटे ग्राम बहुत से विराम के लिए पथ में मिले पर कहीं नहीं ठहरा। वाराहगर्त्त नामक वन अच्छा सुहावना लगता है। यहाँ के पर्वत और शैल आकाश को अपने अपने शृंगों से छूते जान पड़ते हैं। यह तराई का प्रदेश आगे बढ़ने से ऐसा लगाता है मानों अघासुर के उदर में हम लोग ग्वाल बाल के नाईं घुसे जाते हों, दोनों ओर सघन शैल की श्रेणी–बीच में सूक्ष्म मार्ग–मानों घन चिकुर में सेंदुर भरी माँग–यहाँ की मृत्तिका लाल होती है। मध्याह्न के उपरांत आखेट के लिए गए थे। 40 मनुष्यों ने मिलकर खेदा किया पर केवल एक शशक निकला सो भी हे शशांक–बदनी तुम्हारे नाम के प्रथमाक्षर सरीखा जान छोड़ दिया गया। आज का दिन अच्छा कटा सभी लोग डेरे में बैठे वनों की नाना कथा कह रहे हैं।

'मंगल 3–आज मंगल ही मंगल है। लोग कहते हैं 'जंगल में मंगल'–सो ठीक हैं–यहीं पर होली का दंगल भी आज हुआ और इसी पीतवन में तुम्हारे प्रेमपत्र ने मुझै सनाथ किया। मैं आज कुछ और हूँ। मेरा शरीर और मन पीररहित हैं। मृगया के अनंतर मैं इस सर्ज के तरे बैठा हूँ। धीर समीर मेरे श्रम को मिटाती है–तुम्हारे शरीर को स्पर्श करके आती अवश्य होगी, तभी तो मेरे ही तल को शीतल करती है। तुम्हारी पाती ने आज जो मुझै आनंद दिया–ईश्वर ही साक्षी–सब व्यवस्था तो पूर्व पत्र में लिख ही चुके हैं।'

'बुधवार 4–आज पीतवन में डेरा है। आगे नहीं बढ़े।'

'वृहस्पति 5–पीतवन से आज चल के पुष्पडोल में डेरा हुआ, यहाँ कुल्लुक नाला सघन वन से निकला है। इसी के तट पर आज विकट कटक पड़ा। बनैले जंतुओं के भयानक रव का दव कैसा सुनाई पड़ता है। आधी रात में सब सून सान परा है केवल हूँमा की हुँकारी की झाँई पर्वत के कंदरों में बोलती है।'

'शुक्र 6–आज भी पुष्पडोल में रहे काम बहुत था।'

'शनिवार 7–पुष्पडोल से रत्नशिला। यह शैलमय वनोद्देश ऐसा सघन और विचित्र है कि ऐसा मैंने इस प्रदेश में पूर्व नहीं देखा था। शार्दूल गज गवय भालू इत्यादि समूह के समूह इतस्ततः घूमते दिखाई देते हैं। यहाँ केवल पगडंडी राह है। मन चलता है कि विजन वन में एकांक हो केवल तुम्हारे ध्यान में मग्न हो बैठें।'

'रविवार 8–रत्नशिला से सरलपल्ली। इस पल्ली में केवल तीन घर हैं। दूध दही कुछ नहीं मिलता, वन का अंत भी दुर्लभ है। किसी प्रकार से निर्वाह

कर लिया। यह दंडकारण्य का प्रदेश दर्शनीय है। हा देव हमारी 'यामा को क्यौं बिलग कर दिया।'

सोमवार 9-सरपल्ली से यमपुरी यह पुरी साक्षात् यम की पुरी है। यहाँ का जल बड़ा दुख:दाई और ज्वरादिक अनेक रोगों को उपजाता है। नागरिक लोग यहाँ आते ही यमसदन सिधारते हैं। हम लोग सहे वहे हैं। किसी प्रकार से दिन काट ही लेते हैं। यहाँ से निकट ही मतंगवाटी नाम की घाटी प्रसिद्ध है। इसकी उतरने की परिपाटी ऐसी दुस्तर और अटपटी है कि शाटी आदि बसन बदन पर नहीं रह सकते। यहाँ के वासी लाटी बोलते हैं। इस वन के बाँस की सांटी (सोंटा) प्रसिद्ध है। लोग बड़े कुपाटी-नट नटी से कूद-कूद वन में विचरते रहते हैं। सुनते हैं कि यहाँ एक वृद्ध व्याघ्र बुद्धि का भरा किसी अन्य देश से आया है। यह ऐसा ढीठ है कि ग्राम के पशुओं को दिन थोसे धर खाता है।'

'तुम्हारा केवल-बस-वही।'

'यहाँ से चल 'श्यामसुंदर मान्यपुर की ओर मुड़े। मेरे लिखे अनुसार कंचनपुर के पंथ में पाँव भी न धरा। उन्हैं अब चटपटी पड़ी और मेरी सूरति की सूरत करते-करते मग्न हो जाते। किसी प्रकार से दो दिन और गली में भली-भाँति लगाए। पर इसका हेतु बिजली और मेह था। बदली छाई रहती। अकाल के मेघ दुर्दिन के सूचक थे। सुदिन के सूर्य ने अंत में वियोग तम फाड़ दिया। हंसमाल में आ पहुँचे। बसंत झलकी आम के मौर लगे जिन पर भौंर के डेरा जमे। धमार की मार होने लगी। सरसौं के खेत फूले-धान पकी-कोइल कुहकने लगी। जिधर देखो उधर उत्सव ही उत्सव था इस अवसर पर केवल 'श्यामसुंदर ने निरुत्सवता की समाधि लगा ली थी। आँख मूँद के मेरा ही ध्यान लगा लेते और यदि कोई बीच में बोलता तो-'श्यामा-श्यामा' कह उठते, उन्हैं उनके एक प्राचीन प्रियतम का कवित्त बहुत प्यारा लगता और बार-बार उसी को अकेले दुकेले कहते रहते।

आवत बसंत आली कंत के मिलाप बिनु
मदन भभूकैं अंग-अंग आन फूकैंगी।
हरीचंद फूछैंगे पलाश कचनार वन
त्रिविध समीर की झकोरैं चारु झूकैंगी।
गावत बहार ह्वै है जीव को निकार आजु
एक-एक तन प्रान लेन को न चूकैंगी।

करैगो कसाई काम वाम कतलाम बिना 'याम
बैठि डार हाय कोइलैं कुहूकैंगी।

हंसमाला में उनके पहुँचने का समाचार मेरे पास पहुँचा, मैं तो आनंदरूप हो गई। तन वदन की सुधि तक न रही, कोई कुछ पूछता तो कुछ का कुछ कह उठती। द्वार में वंदनवारे बाँधे, हर्ष गात में नहीं समाता था। माता पिता ने पूछा, 'आज तोरन क्यौं सँवारे हैं' मैंने उत्तर दिया, 'बसंत पूजा है न-माधव का उत्सव करती हूँ।'' इस यथोचित उत्तर को पा सभी मौन रहे। तुलसी की माला बनाकर पहिनी, केशपाश सँवारे, माँग मोतियों से भरी, नैनों में काजर की ढरारी रेख लगाई। पीतांबर धारन कर प्रफुल्लित वदन पीत पंकज सा फूल उठा-जिस मग से वे गए थे उसी मग में उनके आने की आस बाँध टक लाय रही। आशा थी कि साँझ नहीं तो सबेरे तक अवश्य पधारैंगे और मेरे द्वार को सनाथ करैंगे। दिन बीता, साँझ हुई। 'श्यामसुंदर न आए। रात को आने की तो कुछ आस थी ही नहीं, भोर ही शीघ्र उठने के लिए साँझ ही सब काज पूरा कर चुकी और जल्प आहार कर आठ बजे तक लंबी तान सो रही, जिसमें सकारे नींद खुलै। रैन से चैन नहीं मिला-नैन प्रान प्रियतम के दर्शन के लिए प्यासे रहे। नींद न लगी ज्यौं त्यौं कर निशा काटी। इस पाटी से उस पाटी करोंटे लेती रही। झपकी भी न ले पाई थी कि रात रहतेई बड़े भोर तमचोर बोला। घर के सब सोए थे। वृंदा को जगाया और तरैयों की छाया रहते स्नान को चली। घाट तो निकट ही था-सूधी वाट धर ली। मेरी एक और परोसिन थी, उससे मैं सब अपने मन का भेद कह देती और वह मेरी तथा वृंदा की भी प्रणोपम सखी थी। मेरी ही जाति होने के कारन और भी घनी प्रीति लग गई थी। जब समय पाती वह मेरे घर और उसके घर बैठने आती जाती। इसका नाम सुलोचना था-सुलोचना क्या यदि इसका दुःखमोचना भी नाम धरते तो भी कुछ सोचना न था, यह मेरे लिये सचमुच दुःखमोचना थी। वृंदा ने इसे भी जगाया और जब हम तीनों नहाने चलीं। हम तीनों पढ़ी थीं-यह और आनंद था-रास्ते में वृंदा ने छेड़ा-'क्यौं गुइयाँ आज हमें अवश्य पेड़ा खाने का मिलेगा न-अचरज नहीं कि भोर ही कलेवा के समय मेवा मिलै।'

सुलोचना ने कहा-'पेड़ा तो नहीं पर भेड़ा अवश्य मिलैगा। भला कहु तौ आज पेड़ा की भोरही को सूझी-क्या पेड़ा ही पेड़ा तो नहीं सपनाती रही?'

वृंदा बोली-'नहीं गुई, इसमें बड़ा भेद है, उसे सुनोगी तो छाती में छेद हो जायेगा पर मैं कुछ नहीं जानती-'यामा से पूछ इसका भेद वही बतावेगी।'

मैं त्यूरी चढ़ाके बोली-'ऐसी हँसी मेरे मन नहीं भाती। भला मैं क्या जानूँ, वृंदा बड़ी ठठोल है।'

सुलोचना बोली-(हँसकर) 'ठठोल है तभी तौ ढोल पीटेगी। मैं क्या जानूँ-वृंदा से पूछ वही आज सवेरे से 'पेड़ा पेड़ा' बक रही है।'

वृंदा हँस पड़ी, कहने लगी-'यह कलजुग का तो पहरा है-जिसके हित की करै वही उलटा चिढ़ती है। भला गियाँ! तू ही सोच मैंने 'श्यामा के विषय में कुछ बुरा कहा'-मैं जी मैं जान गई कि इन दोनों ने जान लिया-क्या करूँ कुछ कहा नहीं गया। कहा कैसे जाय-सच्ची बात को झूठी करने में बीस और झूठ मिलानी पड़ती है और सखियाँ जान भी गई तो क्या हानि, लोक जानता है और जानैगा तो इससे भला यही है कि सखीं जान जायँ। भला ए तो बने बिगरे में काम आवैंगीं और लोग क्या साथ देंगे-ऐसा सोच विचार मन में कहा, 'कुछ चिंता नहीं।'' मैं बोली, 'राम-राम तुम कभी मेरे लिये बुरा कहोगे करोगी, यह तुम्हारी बड़ी भूल है, जो ऐसा सोचती हो, भला अब तुम्हीं कहो क्या बात है?'

सुलोचना ने कहा-'मैं क्या जानूँ वृंदा पेड़ा पेड़ा चिल्लाती है, उसी से पूछ'

वृंदा हँसी-बड़े जोर से खामार के हँसी और बोली-'बुरा न मान तो अब कही डारूँ, कहने में क्यौं रुकूँ।'' मैंने कहा-'भला तुझ से कभी बुरा माना है कि आज ही मानूँगी-कह न जो कहना हो'' छाती धरक उठी-करेजा कँप उठा-साहस कर सुनने लगी।

'उस दिन अटारी का ब्यौरा अब तूही कह डार-क्या हुआ। मैंने क्या नहीं देखा। पर तू मुझसे आज तक छिपाये गई-क्या मैं मिट्टी पत्थर की थोड़ ही बनी हूँ जो इतना देख सुन के भी न जानूँ-मैंने तुझसे कुछ नहीं कहा-आज तक चुप रही पर सुलोचना से सब कुछ कह दिया था-विश्वास न हो तो पूछ ले। फिर जब तेरे चितचोर ने तुझे जाते समय बुलाया और विलाप किया-क्या वह सब मैं नहीं जानती, मैं तो तेरे अनजाने में इसी छेद (छेद को उँगली से दिखाकर) से सब कुछ देख लिया था। कुछ चिंता की बात न थी। मुझसे कहती तो क्या मैं दगा देती, पर तेरा सुझाव सदा का कपटी है। जनम भर एक साथ रही तौ भी जी की मुझसे न कही। भला कुछ हानि नहीं-आज तुम मुझै न खिलावोगी। मैंने कल्ह संध्या को टोले में 'श्यामसुंदर के आने की चर्चा सुनी-सो क्या तू नहीं जानती। कैसी अज्ञान बन गई है-देख तो सुलोचना तू इसकी चतुराई नहीं परखती क्या? तो आज तेरा इतना सवेरे स्नान करने का क्या प्रयोजन था। और दिन तो

ऐसा नहीं होता था। आज यह नवीन ठाठ। वाह री भोरी! क्यौं न हो! इतना कह आगे बढ़ी।

मैंने कहा, 'क्या तूने मुझसे कभी पूछा भी था कि वृथा कपट का कलंक लगाती है?'

वृंदा ने कहा-'ठीक है री 'श्यामा ठीक है-क्यौं न हो, तू ऐसी न पढ़ी होती तो ऐसी बातैं क्यौं बनाती। भला जो कुछ हुआ सो हुआ। अब यह बताव कि यदि आज 'श्यामसुंदर आवै तो मेरा मुख मीठा करैगी वा नहीं-सत्य ही कह दे। आज मैं क्या इनाम पाऊँगी। सत्य ही कहना। तिल भर भेद न रखना' -

सुलोचना बोली-'मेरा भी उस इनाम में भाग रहैगा कि नहीं-फिर तेरा सब काम तो हमीं लोग सुधारैंगे' मैंने कहा-'जो चाहो तुम लोग कह लो अब तो फँस ही गई। तुम लोगों से कुछ असत्य थोड़ ही कहना है, सब तो जान ही गई अब मेरे ही मुख से सुनने में क्या बात लगी है। क्या तुम्हारे ऊपर कभी नहीं बीती"

वृंदा और सुलोचना बोलीं-'नहीं थोड़ ही कहते हैं-सभी पर बीतती है, पर हम तो तेरे कपट पर इतना कहा नहीं तो जैसा चाहती वैसा ही होता-'

मैंने कहा-'तो अब क्षमा करना-'श्यामसुंदर आज आते होंगे। मुझे उनके दरसन का बड़ा चाव है। सखी सुलोचना कैसा करूँ रहा नहीं जाता -

सखी हम कहा करैं उनके बिन।
वह मोहिनि मूरति छिन छिन में झूलति नैनन निसिदिन-1-
उठत बैठत निसिवासर डोलत बोलत जितवत।
घर के काज अकाज किए सब जग सुख दुःखमय बितवत-2-
कुछ न सुहात बात सुनु एरी मात-पिता परिवार।
हिए में बसत एक उनकी छबि वे पवि हृदय विचार-3-
हँसनि कहँनि बतरानि माधुरी खटकत जिय दिन रैन।
पै उनके बिनु कल न परै पल अलि औरौ निशि चैन-4-
सोवत जगत डगत मनमोहन लोचन चित्र मझार।
आधी रात सुरति जब आवति हूलै विरह कटार-5-
कैसी करौं सुलोचनि वृंदा-कटै न 'श्यामा रात।
कही सुनी जो 'श्यामसुंदर ने सो खटकत दिन जात-6-

यदि आज आ गए तो अच्छा होगा-नहीं तो मेरा दुःख फिर दूना हो जायेगा-पर देख अभी मेरी बाईं आँख और भुजा दोनों फरके, सगुन हुआ अब

चिंता गई-तो चल शीघ्र ही स्नान करके घर चलैं नहीं तो माँ खीझैगी, इतने में काक का बोल सुन 'श्यामा (मैं) ने कहा -

'सुनि बोल सुहावने तेरे अटा यह टेक हिए में धरों पै धरों।

मढ़ि कंचन चोंच पखौवन ते मुकता लरें गूथि भरों पै भरों। तुहि पाल प्रवाल के पींजरा में अरु औगुन कोटि हरों पै हरों।

बिछुरे पिय मोहि महेश मिलैं तुहि काक ते हंस करों पै करों।'

सुलोचना ने कहा-'आज 'श्यामसुंदर का आना ध्रुव है टोले में तो कल्ह से उनके आने की चर्चा हो रही है।'' वृंदा सुलोचना और मैं नहा धो घर आईं-गृह के कृत्य किए-और ऊपर की खिरकी से उनकी अवाई की प्रतीक्षा करने लगीं-भोर हुआ, चिरैयाँ चहचहाने लगीं, गाय और बछरू का शब्द सुनाने लगा। अहीर लोग गैयाँ दुहने लगे। अरुणोदय हुआ। मारतंड का मंडल दिखने लगा। लोग भैरवी गाने लगे। सब लोग अपने अपने इष्टदेवता की मूर्ति पूजते थे पर मैं 'श्यामसुंदर की समाधि लगाकर उन्हैं ध्यान मैं पूजती थी। इस प्रकार की पूजा सबसे उत्तम होती है, एक घंटा दिन चढ़ा, दो घंटा बीता, तीसरी घड़ी में नदी के उस पार कुछ मनुष्य दिख पड़े-फिर कुछ घोड़े दिखाने-मेरे जी में तो धक्का सा लगा। मैं हक्का-बक्का हो गई, जी कूद उठा। छिन भर डिरा सी गई, फिर खड़ी होकर देखने लगी। मेरे घर की अटारी बहुत ऊँची थी, उस पर से बहुत दूर का दिखाता था, उसी पर से देखने लगी। घोड़ा ज्योंहीं निकट आता था मुझे यही जान पड़ता था कि वे ही हैं। अंत को नदी के उस तीर पर आया। पानी टिहुँनी तक रहने के कारन नाव की अपेक्षा कुछ न थी। घोड़ा पानी में हिला, पानी पीने लगा। फिर साँस लेने को सिर उठाया, फिर ग्रीवा झुकाई और कुछ पीपा के आगे चला। वह आया-वह आया-जी में इतना हर्ष हुआ कि वृंदा न होती तो मैं कब की नीचे दिखाती। वे इस पार आए, अचानक आ गए। किसी प्रतिष्ठित को यहाँ से आगे जाने का अवकाश न मिला कि आगू चल के ल्यावै-वे कदाचित् यही चाहते थे-घाट पर आए, घाट से उनके कुटीर की दो राहैं फूटी थीं-एक तो सूधी वंशीवट के तरे से होकर, दूसरी सूधी मेरे घर के तरे से होकर उनके घर को जाती थी। यह दूसरी राह टेढ़ी थी-पर उन्हें इसकी क्या चिंता जो सोचते। यह तो राह ही टेढ़ी थी जो उनने धरी। सूधी वाट छोड़ मेरी ही गली से निकले।

'जहाँ तल्वार चलती है उसी कूचे से जाना है'

यहाँ पहुँचते ही उनकी आँखैं कोने कोने दौंड़ीं मानौ मुझे ही ढूँढ़ती थीं-मैं तो ऊपर की खिरकी से उन्हैं निहारती थी। वे तो घोड़े पर थे। खोर में इधर उधर

देखा –कोई न दिखा तब अपने कलेजे से पलाश की डार मय गुच्छे के मुझै हाथ से चौंका दिया–बोले कुछ नहीं पर चार आँखें हो गईं–हिये से हिया, दूर ही से मिल गया, ललाट खुजाने के मिस मुझै प्रणाम किया, वृंदा को देख हँस पड़े। सुलोचना की ओर टेढ़ी दृष्टि कर चले गए। घर के सन्मुख घोड़ा खड़ा कर दिया उतरे और कई भले आदमियों से कुछ सूक्ष्म वार्तालाप कर भीतर चले गए। वह दिन तो किसी प्रकार से कट गया पर होनहार न जाने क्या थी। 'यामसुंदर कई दिन तक मुझसे न मिले–मैं एक दिन सोचने लगी–'हाय मुझसे क्या कोई अपराध हो गया है, जो 'श्यामसुंदर सुधि तक नहीं लेते'–ऐसे सोच विचार करते करते कई घड़ी व्यतीत हो गईं। मैं नहीं जानती थी कि 'श्यामसुंदर भी उधर विरह अगिन में पच रहे हैं और केवल मेरे प्रेम की परीक्षा लेने की कोई युक्ति विचारते हैं। थोड़ी देर के उपरांत उन्ने मेरा स्मरण किया, पूर्ववत् सत्यवती को बुलाके मुझै बुलवाया और मैं उसी कविताकुटीर में गई। 'श्यामसुंदर मुझै देख उठ खड़े हुए–मेरा हाथ धर लिया और बड़े प्रेम से अपने कुरसी के निकट मुझे भी कुरसी दी, पर मेरी देह झुरसी सी देख, खेद करने लगे और बार बार मेरा कुशल प्रश्न पूछा। नैन सजल हो गए–मैं भी सिसकने लगी। कुछ समय तक यही लीला रही। अंत को उनने कहा–'क्यौं अब मैं प्यारी कह सकता हूँ न–हाँ–तो प्यारी तुम्हारा अंत का पत्र मुझै दो दिन हुए मिला था'–इस पत्र को खीसे से निकाल पढ़ने लगे –

इस जगह को किताब से स्कैन करके भरना है।.. पेज–69

इसको बाँच कर कहा–'क्यौं यह तुम्हारी ही लिखी है न?'

मैंने उत्तर दिया–'श्हाँ–है तो' –

'श्यामसुंदर ने कहा–'फिर अब क्या मरजी है?'

मैंने कहा–'क्या मरजी–मरजी तो सब आप ही की चाहिए मैं तो तुम्हारी दासी के तुल्य हूँ' –

उन्होंने कहा–'मुझै इस बार यात्र में बड़ा दु:ख हुआ–प्राणयात्र केवल प्राण बचाने को होती थी, नहीं तो सचमुच आज तक प्राण की यात्रा हो जाती, तब तुम्हारे मुखचंद्र का कौन दरसन लेता।

नाम पाहरू रात दिन ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद यंत्रित जांहि प्रान केहि बाट।
'यामा 'यामा सामरी 'यामा सुंदर 'याम।
'यामा 'यामा रट लगी 'यामा प्यारो नाम।
बस इतने ही से सब समझ जाना।'

मैं कुछ विलंब तक सोचती रही कि क्या उत्तर दीजिए, पर 'श्यामसुंदर ने उठकर मेरा चुंबन लिया और बोले, 'अब क्या विलंब करती हो–कुछ तो कहो–

हौं अधीर तुअ सामरी तुम बिनु जी अकुलात।
देह दसा तेरे सुमुख क्यौं न पसीजत जात–।'

मुझे तो कविता बनाना ज्ञात न था–उत्तर में पुराने दोहे कहे –

'प्रीति सीखिए ईख सौं जहँ जो रस की खान।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं यही प्रीति की बान।'
श्यामसुदंर झटपट बोले –
'प्रीति सीखिए ईख पै गाँठहिं भरी मिठास।
कपट गाँठ नहिं राखिए प्रीति गाँठ दै गाँस।
और भी प्यारी देखो विहारी ने कहा है –
दृग अरुझत टूटत जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हिए दई नई यह रीति।'

मैं हाथ जोर के बोली–'तुमसे कौन बराबरी करै–तुम पंडित और सर्वज्ञ हौ–जो चाहो सो कहो–पर कुछ लोक लाज, वेद तो समझो तुम्हैं कौन सिखावे'–'श्यामसुंदर खड़े कँपते थे, बदन का थरथराना मैंने लखा। लिलार, कपोल और हाथों में पसीना आ गया, स्वर भंग और प्रलय के लक्षण लक्षित थे–पलकों में आँसू झलके –बैन सतराने लगे–रोमांच हो आया, मुख विवर्ण को प्राप्त हुआ, गात्र भी स्तंभ हो गया। 'श्यामसुंदर गिरने लगा–मैंने सम्हारने को किया पर तब तक वह भूमि पर आ गया मेरे चरण के नीचे गिर पड़ा, मैं अपने को ऐसी भूल गई कि मंच से न उठी, मेरा भी वही हाल हो गया था, पर शरीर में बुद्धि बनी रही। 'श्यामसुंदर को हूँत कराया–पर वे न बोले, मैंने फिर बुलाया, वे बड़े कातर हो गए थे, गद्‌गद स्वर से कुछ बोले पर मैं कुछ समझी भी नहीं, कातर नैनों से मेरी देखने लगे। मैंने अपने तन की ओर देखा फिर उनको देख, लज्जित हो गई। मुख नीचे कर लिया, एक पोथी के पत्र गिनने लगी, भूमि को पद के अँगूठे से खोदने लगी। आँख में आँसू की धार चलने लगी, ऊपर देखा न जाता था–साहस कर ऊपर निहारी, फिर मुख नीचा कर लिया। लंबी साँस ली, नैनों का जल आँचर से पोंछ डाला और 'श्यामसुंदर के मुख की ओर एक बार और साहस कर बोली–'मान्यवर! प्यारे! यह क्या व्यापार है? यह किस वेद का मार्ग है, यह किस न्याय की फक्किका है–किस वेदांत शास्त्र का मूल है–वा मोक्ष का उपाय हैं–कै

तप का नियम है–वा स्वर्ग जाने की नसेनी है–मैं तुम्हारी दशा भली भाँति समझती हूँ पर इसी से तुम जान लोगे जब मैं कहोंगी कि 'ईश्वर की ओर ध्यान लगावो'–कि मैं स्त्री जाति और बाला भी होकर निर्बुद्धि नहीं हूँ–मुझे भी तो किसी का डर भय है कि नहीं–अकेली तो नहीं हूँ–माता पिता सुनके क्या कहैंगे–तुम तो निर्भय हो–पर मैं तो परवश हूँ–क्या ए सब तुम नहीं जानते–और भी धर्म अधर्म कुछ विचार है कि नहीं–कहाँ तुम और कहाँ मैं वर्णों में कुछ भेद है कि नहीं, भला इन सबों को तो सोचो–कहो क्या कहना है?'

श्यामसुंदर आँसू भरकर बोले–यदि शास्त्र तुमने बाँचा हो तो मैं कहूँ–न्याय वेदांत और वेदों का भेद यदि तुम जानती हो तो कहो? मेरी बात का प्रमाण करोगी वा नहीं? मेरी दशा देखती हौ कि नहीं? धर्म अधर्म की सूक्ष्मगति चीन्हती हो तो कहो? सुनो–धन्य है तुम्हारे वज्रमय हृदय को जो तनिक नहीं पिघलता मेरी ओर देखो और अपनी ओर देखो। मेरी करुणा और अपनी वीरता देखो। वेद शास्त्र की बात का यह उत्तर है–जो मेरे प्रवीन मित्र ने कहा है –

लोक लाज की गाठरी पहिले देहु डुबाय।
प्रेम सरोवर पंथ में पाछे राखो पाय।
प्रेम सरोवर की यहै तीरथ गैल प्रमान।
लोकलाज की गैल को देहु तिलंजुलि दान।

सो यह तो तुम कर ही चुकी हो। न मानो तो अपने पत्रों ही को देख लो। भला अपने लिखे का प्रमाण मानोगी कि नहीं? (संदूक से निकाल कर) भला देखो तो ये किसके हस्ताक्षर हैं? तो बस तुम्हारे मौन ने मेरे वचन को पुष्ट कर दिया–अब रहा धर्म अधर्म, उसका भी एक प्रकार से उत्तर हो चुका–नलदमयंती–दुष्यंतशकुंतला–राधाकृष्ण–विद्यासुंदर–इत्यादि गांधर्व विवाह के अनेक उदाहरण मिलैंगे–द्वापर में विशेष करके–और यह भी तो द्वापरयुग है न जहाँ भगवान् यदुनाथ स्वयं यादवों के सहित विराजमान हैं तो फिर अब क्या रहा–जब कहोगी यदुकुलचंद्र से स्वयं पुछवा देंगे।

यह ग्राम का नाम भी तो 'यामापुर किसी भले पुरुष ने धरा है–यहाँ की गली और खोरों में–यहाँ के वनों में–यहाँ के आराम अभिराम में–यहाँ के शेल पर्वतों में–यहाँ के नवग्राम और पुरातन ग्राम में–यहाँ के विलासी और विलासिनियों के सहेट निकुंज में–यहाँ के नदी नालों और निर्झरों के वाट में–जब तक सूर्य चंद्र हैं 'श्यामा 'श्याम सुंदर के प्रीति की कहानी चलैंगी, तौ प्यारी इतनी दूर चढ़ा के अब क्यौं हटती हौ! वर्णों के संबंध में कुछ दोष नहीं, देवयानी और ययाति

के पावन चरित अद्यापि भूमंडल को पवित्र करते हैं। बस यह सब समझ लो–मुझ दीन के अनुराग और भक्ति को क्यौं तुच्छ करती हौय यदि हमारी सेवा तुम्हैं भली न लगी हो तो उसकी बात ही निराली है–नहीं तो–बस अब आज्ञा दो'–इतना कह मेरे चरणों पर लोट गया। मैंने उसका सिर उठा कर दोनों जाँघों के बीच में रख लिया। बहुत प्रबोध दिया उन्हैं उठाय छाती से लगाया और बोली–'सुनो प्रान–तुम हमारे जीवन धन हौ, इनमें संदेह नहीं–मेरे तुम और मैं तुम्हारी हो चुकी। तुम्हारी प्रीति की परीक्षा हो चुकी–पर शीघ्रता मत करो–मैं तुम्हैं अवसर लिख भेजूँगी–सुलोचना और वृंदा सहाय करैंगी। सत्यवती न जानै–तब तक न जानै जब तक कार्य की सिद्धि न हो। तो मुझे विदा दो, सोचने का अवसर दो–और मेरे सुंदर उत्तर का पंथ जोहते रहो –अब मैं जाती हूँ –' इतना कह चलने को उद्यत हुई कि 'श्यामसुंदर ने मेरे हाथ धर एक बाहु मेरे गले में डाल दिया, अधरों को मेरे अधरों के पास ला बोला–'यदि आज्ञा हो तो एक बार सुधारस पीलें'–मैं चुप रही। 'श्यामसुंदर मेरा चुंबन ले बोले–'लो प्यारी हमारी तुम्हारी शुद्ध प्रीति का अंतिम चुंबन है–लो–बार बार लो।'

मैंने बड़े प्रेम से चूमा लिया पर लाज के मारे फिर सिर न उठा सकी–और चादर ओढ़ नैनों को छिपा घर के ओर चली।

श्यामसुंदर तब तक देखते थे जब तक मैं उनके नैनों के ओट न हुई। अंत को मोड़ के पास पहुँचते ही एक बार हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और वे ललचौंही नजर से मुझै देखते रहे। अब तो संध्या हो गयी थी। गली चलती थी–दीप प्रज्वलित थे–मुझै नाहक 'श्यामसुंदर इतनी देर विलमाए रहे थे–पर यह तो प्रेम का झोंका था–प्रेम कथा की धारा कभी रुक सकी है–ज्यौंही मैं मोड़ से अपने घर की ओर मुड़ी विष्णुशर्मा आ पहुँचा, लाल बनात का कानों को ढकने वाला टोपा दिये रंगीन कौपेय का दोगा पहिने हाथ में कमंडलु लटकाए–'वेत धोती पहिने–गटर माला गले में–पनाती बस्ते में पाठ की पोथी काँख में दबाए–नंगे पैर त्रिपुंड धारन किए–भस्म चढ़ाए–लंबी लंबी छाती को छूने वाली 'वेत डाढ़ी फटकारे तांत्रिक का रूप बनाए आ पहुँचा–इसे देख मैं ऐसी डरी जैसे बाज की झपेट में लवा लुक जाता है वा सिंह को देख हरिनी सूख जाती है–बलिपशु जैसे यजमान को देखै–सर्प के सन्मुख छछूँदर–सिंचान के आगे मुनैया इनकी ऐसी गति मेरी भी उस समय हुई। आगे पाँव न उठे –कँपने लगी–करेजा धड़क उठा–पीली हरदी के गाँठ सी सूख गई–यद्यपि उन्होंने अभी तक कुछ भी नहीं कहा था तौ भी भयभीत हो काँपती थी–सच पूछो तो चोर का जी

कितना-विष्णुशर्मा मुझे देख ठठके गृध्र दृष्टि से मुझे देखा और चीन्ह लिया, इनने मुझे 'श्यामसुंदर के कुटीर से निकलते देख लिया था या धनेश नाम के महाजन के द्वारे से देखा यह नहीं कह सकती पर जैसा मैं अभी कह चुकी मैं सूख तो गई थी। विष्णुशर्मा से और मुझसे कुछ नाता भी लगता था पर संबंध बहुत दिन पहले से टूट गया था। यही तो और भी भय का कारण था-विष्णुशर्मा बोला-'श्बाई कहाँ गई थी?'

मैंने कहा-'दर्शन के लिए।'

विष्णु-'अकेली रात को क्यौं गई?'

'अकेली तो नहीं थी वृंदा, सत्यवती, सुलोचना इत्यादि सभी तो रहीं-वे अगुआ गईं मैं पीछे रह गई थी'-इतना कहकर मैं शीघ्र चली और फिर उसको और पूछने के लिए अवसर न दिया। विष्णुशर्मा कुछ हकलाता था, इसी से दूसरा प्रश्न करने में विलंब लगा। इतने में तो मैं घर पहुँची और माँ के पास बैठी। माँ ने उस दिन कुछ पपची इत्यादि पक्वान्न बनाए थे। मुझसे खाने को कहा और मैं उधर सुमुख हुई। विष्णुशर्मा अपने घर गया पर मन में ये सब बातें गुनता गया। उसके मन में भरम पड़ गया था, पर कोई प्रमाण न होने के कारण मौन रह गया तब भी जब अवसर पाता आपुस के लोगों में निंदा कर बैठता। 'श्यामसुंदर के भय से सभी काँपता था। जानबूझकर भी सभी अनजान सा बन जाता। यहाँ के एक और ग्रामाधीश महाशय थे। उनका नाम वज्रांग था। जैसा नाम वैसा ही गुण भी था, उनका नाम सुनते ही सब दुष्ट थर्रा जाते। प्रजा तो उनके हाथ की चकरी थी। भले और दुष्ट सभी मैन के नाक थे, जैसा कहते वैसा करते, उनके डर से शत्रुओं की अबला सदा रोया करतीं, शत्रु लोग स्वयं इधर निःशंक भ्रमन करने में शंकित रहते थे। इनका कुल सदा से उद्दंडता में विख्यात चला आया है। इनके पिता द्विजेंद्रकेसरी की कहानियाँ अद्यापि कही और गाई जाती हैं-जिस सुबली की संधि के निमित्त विदित शूरवीर कंचनपूराधीश ने भी पयान किया। बहुत कहाँ तक कहूँ -

'इंद्र काल हू सरिस जो आयसु लाँघै कोय।
यह प्रचंड भुजदंड मम प्रतिभट ताको होय।'

ये महाशय 'श्यामसुंदर के परम मित्र और सहायक थे। सब विद्या लौकिक इन्हैं आती थी। सब बातों में कुशल-मुशल से उद्दंड भुजा-सदा कुशलपूर्वक सकुटुंब यहीं रहते थे। विष्णुशर्मा ने वज्रांग से सब कुछ कह दिया। वज्रांग ने हँस कर इन्हें डाटा और कहा, 'तुम मौन रहो-तुमसे कुछ संबंध

नहीं–अपनी सूधी राह आया जाया करो –' उस दिन से विष्णुशर्मा ने अपना मुँह सी लिया। पर चार कान होते ही बात बिजुली की चिनगारी की भाँति चारों ओर विथर जाती हैं। मेरे पिता ने भी किसी भाँति सुन लिया। इधर उधर अपने सखों से पूछताछ की पर कुछ जीव न पाया इसी से चुप रहे–पर मुझै संदेह है कि क्या वे हमारा और 'श्यामसुंदर का प्रेम नहीं जानते थे। क्यों नहीं? अवश्य, पर क्या प्रेम रखना बुरा है? प्रेम न रक्खै तो क्या द्वेष? अब उस बात से कुछ प्रयोजन नहीं। जिसके जी की वही जानैं–मुझै क्या पड़ी थी जो खुचुर करती। किंचित् काल में सब भूल गए–मैं तो यही जानती थी कि किसी को कुछ ज्ञात नहीं, इसी में भूली रही। क्या करूँ ऐसे समय में ऐसा ही होता है। इसी से सब कहते हैं प्रीति अंधी होती है। इसमें उपहास और निंदा सभी होती हैं पर जो मनुष्य इसमें फँसता है उसै कुछ भी नहीं सूझता। सूझै कैसे–आँख हों तब तो सूझै –

नेकु अवलोकँ जाके लोक उपहास होत
ताही के विलोकिबे को दीठि ललचात है।
जाही विरहागि से दमार सी लगी है देह
गेह सुधि भूली नेह नयो दिन रात है।
कैसे धरो धीर सिंह विकल शरीर भयो
पीर कहा जानै री अहीर बाकी जात है
मन समुझाय कीन्हौ केतिक उपाय तऊ
हाय कथा एते पर वाही की सुहात है।

गतागत कई दिन बीते, 'श्यामसुंदर मेरे उत्तर का मग जोह रहे थे। मैं ऐसी निठुर हो गई कि कुछ नहीं लिखा। कारन इसका कुछ कपट या दगा नहीं था–केवल सकुच और लाज थी और ए दोनों स्वाभाविक थीं–अंत को 'श्यामसुंदर ने मुझै एक पत्र लिखा –

प्रानप्यारी,

दोहा

'बरखि परुख पयद पंख करी टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहिं चूक।

मग जोहते एक कल्प बीत गया। मन का मनोरथ सब मन ही में रीत गया। यह अनरीत कहाँ सीखी। परतीत देकर यह विश्वासघात! बलिहारी है! धन्य है।

लाज नहीं लगती है? 'शचिरी को मरन बालकन को खेल है'–क्यों–ऐसा ही है न? हम इस पाती में तुम्हारी उस दिन की बात कुछ भी नहीं लिखते, वह तो सब तुम्हारे स्मृति के फलक पर लिखी ही होगी। तो सब विलंब क्यौं करती हौ। मैं अपनी दशा क्या लिखूँ–जो न जानती हो तो लिखूँ। प्रेम का हमारा तुम्हारा तत्व एक तो है, मन मेरा तुम्हारे पास है। सो प्यारी तुम मेरे मन को जानती हो, उसी पूछोगी तो सब खुल जायेगा। बस पर इस दोहे को समझ के उत्तर शीघ्र देना–नहीं तो इधर कूच है,

दुखित धरनि लखि बरसि जल
घनउ पसीजे आय –
द्रवत न तुम घनश्याम क्यौं,
नाम दयानिधि पाय –
तुम्हारा
तृपित,'

इस पत्र का मेरे पर बड़ा असर हुआ। मेरे हृदय में सब बातैं व्याप गई। मैं हाथ पर हाथ धरे रह गई। मन शोच–सरोवर में पड़ गया क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ, यही जी में समानी। समय और अवसर के ओर विचार किया। मन कोई भाँति नहीं मानता था और मैं ये दोहे एक बेर 'श्यामसुंदर के पास कह चुकी थी –

मन बहलावत दिन गए महा कठिन भइ रैन।
कहा करौ कैसी करौ बिनु देखे नहिं चैन।
छिन बैठे छिन उठि चलै छिन छिन ठाढ़ी होय।
घायल सी घूमत फिरे मरम न जानत कोय।

और सत्य भी था। अब क्या उत्तर देवँ यही सोचती थी। यह तो जान गई कि जो उत्तर मैंने अपने जी में विचारा है वह कदापि उन्हैं भला न लगेगा पर जो काज रह के होता है वह अच्छा होता है। मैंने यह पत्र अंत में लिखा।

'प्राणधन! जीवन आधार! मेरी रात राम अंत:करण से लेव तुम शीघ्रता बहुत करते हो। अवसर को नहीं परखते, यहाँ के भी वृत्तांत पर कुछ ध्यान धरो। मैं सब भाँति तुम्हारी ही हौं, लेव–अब प्रसन्न हुए? मैं तुमसे अवश्य मिलूँगी। बस बात दे चुकी हार दिया। 'प्राण जायेगा पर प्रन नहीं जायेगा' दो बेर थोड़े ही जन्म होगा कि बात बदलैं। पर मेरी विनय यही है, जो आप मानिए।

दोहा

कारज धीरे होत है काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फरै केतिक सींचो नीर।
क्यों कीजे ऐसो जतन जाते काज न होय।
परवत पर खोदै कुओं कैसे निकसै तोय।
सुधरी विगरे वेगही विगरी फिर सुधरै न।
दूध फटे कांजी परैं सो फिर दूध बनै न।
मैं फिर लिखूँगी। क्षमा करना।
तुम्हारी नेह देह तरुवर की
श्यामालता।

इसपत्र को बाँचते ही 'श्यामसुंदर को हर्ष विषाद दोनों एक संग ही उपजे। हँसे और आँसू गिराए। सुलोचना से कहा जाव मेरी दशा कह देना और क्या कहूँ-इतना कह मौन हो गए। पत्र को फिर-फिर बाँचा। हृदय में लगाकर कहा -

'श्लिष्यति चुंबति जलधर कल्पम
हरिरूपगत इति तिमिरमनल्पम्।

निराश से हो गए। मुख से कुछ नहीं कहा भीतर चले गए। फिर बाहर आये। वसन धारन कर निकल पड़े, अकेले थे कोई अनुचर को भी साथ में न लिया। नदी के तीर घूमने लगे। चक्रवाक के जोड़े देखकर रोने लगे। फिर आँसू पोंछ आगे बढ़े, दूर ही से मुझै घाट में नहाते देख ठठुके। मैंने भी उन्हैं देख लिया, विलंब किया अंत को जब सब घाटवारी नहा धो के चली गई-'श्यामसुंदर आगे बढ़े, जहाँ मैं थी वहाँ तो कोई न था पर यदि दूसरे ओर कोई रहा भी हो तो मैंने देखा, उन्होंने भी नहीं देखा, बस मेरे पास आ गए, ऐसे दीन हो बोले कि मेरा जी नवनीत सा पिघल गया। मैं उन वचनों को क्या कहूँ-कहे नहीं जाते-छाती फटी जाती है, सुधि करते ही जी टूक-टूक होता है मुझै स्मरण मत करावो -' इतना कह 'श्यामा की बुद्धि भ्रंश हो गई-पुरातन वृत्तांत मन नेत्रों के सन्मुख नाचने लगा-मैंने कहा, श्यामा-तुम्हारी संज्ञा कहाँ गई-इस विचारे 'श्यामसुंदर अभागे की कथा पूरी कर- इतना कह प्रबोध किया।

श्यामा बोली-'मैं उनका विलाप नहीं कर सकती-अपने को अभागिनी तो कही दिया है। 'श्यामसुंदर मूर्छित होकर गिर पड़े-मैंने सोचा यह क्या अनर्थ हुआ। घाट की बाट-कोई न कोई आ ही जावै तो मेरी कितनी भारी दुर्दशा हो, और

इधर इन्हैं छोड़ चली जाऊँ तो भी तो नहीं बनता। मैंने मन में कुछ ठान उनका हाथ पकड़ बोली-'उठो तो सही। मैं क्या भगी जाती हूँ जो तुम इतने अधीर हो गए। वाह-तुम तो पुरुष और मैं स्त्री हूँ-पर तुम में मुझसा भी धीरज नहीं है-उठो यह क्या करते हो -श' ऐसा कह के उठाया। 'श्यामसुंदर उठे और मेरे कंधे के आसरे से खड़े हो गए। मैंने कहा, 'यह क्या करते हो-मुझै घाट पर मत छुवो कोई दुष्ट देख लेगा तो वही विष्णुशर्मा-याद है न-उसी दिन सा हाल होगा।'

श्यामसुंदर ने उत्तर दिया-'मैं तो जानता हूँ-पर सुनो अब मुझै अधिक न सतावो। धीर नहीं धरा जाता।'' इतना कह मुझै छाती से लगाया-मेरे कटि को बाँह में ले भली-भाँति चुंबन कर अति गाढ़ आलिंगन किया। मैं तो जल का कलस माथे पर धरने लगी थी न तो इसे उतार सकी और न धर सकी। 'श्यामसुंदर ढीठ तो थे ही-मुझै एक परग भी आगे बढ़ने न दिया-मैं उनसे हार गई थी। कितना समझाया पर उनके मुख से यही निकला।

अधर कुसुम कोमल ललित तृषित मधुप रस लीन।
पिय न वाहि दै मधुर मधु गुनि ता कहँ अति दीन -।

मैं हैरान हो गई इनसे, इनके मारे घाट भी छूटा सा जान पड़ैगा, मैंने चिरोरी किया 'यह क्या करते हो।'' इतना ज्यौंही कहा कोई दूर से ठुमरी की धुनि में यह कवत्ति गा उठा। हम लोग ठठक गए और एक दूसरे की ओर निहारने लगे-मुख से बात भी न निकली। ओठों पर हम दोनों के लखौटा लग गया और गीत सुनने लगे।

'छूटो गृह काज लोक लाज मनमोहिनी को
भूलो मनमोहन को मुरली बजायबो
देखि दिन द्वै में रसखान बात फैल जैहैं
सजनी कहाँ लौं चंद हाथन दुरायबो
काल ही कलिंदी तीर चितयो अचानक हू
दोहन को दोऊ मुरि मृदु मुसिक्यायबो
दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ उन्हैं
भूलि गई गैयाँ इन्हैं गागरि उठायबो।'

मैंने धीरे से कहा, 'मैं तो कहती थी कि कोई देख लेगा भला अब कहो क्या होगा यह तो दुष्ट मरकंद की सी भाँख लगती है। जो वह हुआ तो बड़ा अनर्थ हुआ पर तुम अब ऐसा करो कि आगे हो जाव और मुझै अपने पीछे कर लेव, गली में मेरे ओर न देखना और न मकरंद की ओर जिसमें जान पड़ै कि

तुम्हारा ध्यान किसी ओर नहीं है। वह छोटी सी पुस्तक जो तुम्हारे खीसे में है निकालकर बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ते चलो, नैन वहीं गड़ा दो। यदि कोई मिलै भी तो बुलाने पर भी मत बोलना। जुहारै तो सिर भर हिला देना, ऊपर कदापि न देखना नहीं तो नैन अंतरंग भाव के सदा साक्षी रहते हैं छिपते नहीं और समय पर जैसी बनै वैसी चतुराई करना, तो चलो मेरे तुम्हारे साथ चलने में कोई दोष नहीं, ऐसा तो कई बार हुआ है और मेरे पिता ने भी कई बार देख लिया है पर कुछ नहीं बोले।'

इतना सुन वे भी यथोपदिष्ट रीति से चले। मकरंद मिला। बड़ी देर तक इस जुगल झाँकी के दरसन किए, पर 'श्यामसुंदर ने देखा भी नहीं, ऊँचे चढ़कर गली ही के पास नारद मिले, वे मुझसे कहने लगे-'क्यौं इतनी देर लगाई चल भौजी बुलाती है उसके ओषधि का समय है न-'श्यामसुंदर नारद की ओर तनिक न देखे और मैंने भी नारद को उत्तर न दिया। मैं नारद को सदा घृणा करती। उसका मुख मुझे नहीं सुहाता केवल दाद की आन से कुछ नहीं बोलती। किंचित् आगे बढ़कर 'श्यामसुंदर पढ़ते पढ़ते खड़े हो गए गली रुक गई। मैंने कहा, 'श्चलिए मुझै जाने दो', यह सुनकर चिहुँक से पड़े बोले, 'कौन है? (ऊपर देखकर) 'श्यामा मैं पुस्तक पढ़ रहा था, तू कहाँ से आ गई प्रसंग टूट गया।'' इतना कह हट गए, मैंने कुछ भी उत्तर न दिया और सूधी घर को चली गई। 'श्यामसुंदर ने भी अपने घर का मग लिया। भगवान् का दर्शन किया और उधर से सब मंदिरों की झाँकी झाँक फिर लौट आए। इतने में आठ बज गए। रात सापिन सी आई। बिना साथिन के काटना था पर उलटा वही इन्हैं काटने लगी, सेज बिछी थी। मैं थी कुछ व्यारी करके चिंता में मग्न-गरमी के दिन तो थे ही अटारी पर वृंदा और सत्यवती के साथ सोने के लिए बिछौने बिछाकर लेटी। चाँदनी छिटकी थी, मैं भी चाँदनी की शोभा आपनी चाँदनी पर से देखती थी, वृंदा और सत्यवती दोनों मेरे पास बैठीं थीं और कुछ बात चीत कर रहीं थीं। नीचे सुलोचना अपने आँगन में सोई सोई वृंदा से और कभी कभी मुझसे बातैं करती। जहाँ मैं सोई थी वहाँ से 'श्यामसुंदर के बिछौने स्पष्ट दिखाते थे। 'श्यामसुंदर ने उस दिन कुछ भी भोजन नहीं किया और चुप आकर सूनी सेज पर सो रहे। थोड़ी देर में रामचेरा और उद्धव दोनों पहुँचे, एक पंखा करने लगा और दूसरा पाँव मीजने लगा। 'श्यामसुंदर ने ऊपर देखकर कहा, 'कुछ मत करो-न हमैं पंखा चाहिए न संवाहन तुम लोग जावो,' यह सुन रामचेरा और ऊधो दोनों सूधो

मग धरे बाहर आ बैठे, झरप पड़ी थी। 'श्यामसुंदर अकेले लेटे थे, इतने में ऊधो ने जा हाथ जोड़ कर कहा।

'महाराज एक सितारिया आया है और चाहता है कि महाराज को अपना गुन दिखावै यहीं बाहर खड़ा है जैसी आज्ञा हो।'

श्यामसुंदर ने सुन लिया, कुछ सोच कर कहा, 'आने दो पर मकरंद को भी बुला लेना।'' ऊधो बोला, 'जो हुकुम' यह कह मकरंद और सितारिया को साथ ले फिर जा उनके सन्मुख बोला, 'श्महाराज, ए लोग सब आ गए।'' परदा उठाई और वे सब कविता कुटीर में घुस गए मकरंद उनके उसीसे के निकट बैठा और सितारिया भी सन्मुख अपना वाद्य आगे धर सलाम कर बैठ गया।

श्यामसुंदर ने सितारिये की ओर देखा और मकरंद से कहा, 'ए गुनी कहाँ से आए हैं और इनका गुन जस कैसा है?'

मकरंद ने कहा, 'सौम्य-मुझसे इनसे प्राचीन परिचय है। ये एक बड़े भारी गुनी के पुत्र हैं जिनका नाम गान और वाद्य में इस देश में चिरकाल से विख्यात है, उनकी विद्या ऐसी उत्कृष्ट थी मानी गंधर्वों से गान नारद मुनि से बीना और तुंबुर से तंबुरा सीखा हो। मलार का जब कभी अलाप करते कुऋतु में भी बादल छा जाते। दीपक राग के टेरते ही आपसे आप दीप भी प्रज्वलित हो जाते थे। इनने बहुत कुछ राज दरबारों से कमाया था। उनका नाम रागसागर था। ये उन्हीं के पुत्र प्रेम लालित वीणाकंठ हैं। उनका निवास पहले क्षीरसागर के द्वीपांतर में था अब इसी 'श्यामापुर में अपने दिन काटते हैं। मैंने भी एक दो चीजें इनसे ले ली हैं। आपका नाम और यश सुन चले आये हैं, आज्ञा हो तो अपना गुन सुनावैं।'

श्यामसुंदर बोला, 'यह तो अच्छी बात है मेरा भी मन बहलेगा। तो अब होने दो पर तुम तबला ले लो।'

मकरंद तबला के बजाने में क्षिप्रकर था और सम विषम तालों का ज्ञान भी था। उधर वीनाकंठ ने भी सितार ठीक किया और 'श्यामसुंदर के आज्ञानुसार यह गजल गाई और बजाई।

ऐ तबीबो मेरे जीने के कुछ आसार नहीं
मत करो फिक्रो दवा
उस मसीहा को दिखा दो तो कुछ आजार नहीं
अभी हो जाए शिफा
कितना चाहा कि तेरे इश्क में मर जाएँ हम
पर निकलता नहीं दम

सच तो यों है कि हमैं इश्क सजावार नहीं
तेरी तकसीर है क्या
ऐ सनम तू ही मेरी शक्ल से रहता है रुका (रुसा)
है अजल भी तो खफा
बेवफा तुझसा जहाँ में कोई दिलदार नहीं
कीजिए किससे गिला
फस्ले गुल की न कफस में मुझे दे खुशखबरी
यां है बे बालो परी
लायके सैरे चमन अब ए दिलफगार नहीं
क्यौं रुलाती है सबा
सब वजादार तेरे आके कदम चूमते हैं
मैं तो आशिक हूँ तेरा
अपनी नजरों में कौन तुझसा तरहदार नहीं
है कसम खाने की जा
शमारुख का तेरे ऐ गुल! कोई परवाना नहीं
और अगर हूँ तो महीं
दामे काकुल का तेरे कोई गिरफ्तार नहीं
पेंच हम पर ए पड़ा
कतल ही गर मेरा मंजूर है ऐ उरविदा साज
खैर हाजिर है गुलू
कोई अरमाँ मुझै बुज हसरते दीदार नहीं
रुख से परदा तो उठा
देख पछतायगा मूनिस न तू दे मुफ्त में जाँ
तर्क कर इश्के बुताँ
फायदा इस्में सिवा रंज के ऐ यार नहीं
रख नजर सू ए खुदा -

इसको बड़े ध्यानपूर्वक सुना, लंबी साँस ली और उन्हैं किसी प्रकार विदा दे आप अकेले ही लेट गए, अब दस बज गया था। गीत सुनते सुनते मेरी आँख नहीं लगी थी। अंत को जब सब उठ गए 'श्यामसुंदर विलाप करने लगा -

'आज की रात कैसे कटेगी इस गीत ने तो और मुझै बेकाम कर दिया-रह रह के मुझै प्रानप्यारी की सुधि आती है। यह रात मुझै साँपिन सी हो गयी मुझै

कुछ भी नहीं सुहाता है। हाय रे ईश्वर! क्या करूँ कहाँ जाऊँ। मैं अब जी नहीं सकता। प्यारी! प्रानप्यारी! हाय! क्या तुम्हैं दया नहीं आती बस हो चुका, इतना व्यर्थ क्यों सताती हौ। हाय री पापिन! मैं कुछ भी न कर सका। तूने मेरी कुछ दया न देखी उस दिन की करुणा भूल गई? ठीक है इष्ट देवता का मन पाषाण से भी कठोर होता है। अब मेरे लिए कौन सी दिशा रह गई है जिधर जाऊँ।'' इतना रोकर हाथ में तलवार उठाकर कहने लगा, 'हाय रे निर्दई काम! तूने मुझै क्या-का-क्या कर डाला। देवी! अब तू ही मेरे कंठ में लग जा और मेरे दु:ख का अंत कर। तू भी आज लौं ऐसे कोमल कंठ में न लगी होगी। आज इस विरही की गलबाहीं दे विरह को हटा, तेरी धार न बिगड़ैगी मैं फिर सान धरा दूँगा। पर मेरी कही तो कर-चांडालिन चंडिके! क्या तू भी मेरी वैरिन हो गई? लोग तो देवी की स्तुति और पूजा करके अपने सब दोष छुड़ाते हैं-मैंने इतनी तेरी स्तुति की, तू तनिक भी न पिघलीय ठीक है-'दुर्बले देवघातक:।'-मैं आज दुर्बल हूँ न।'' इतना कह तलवार की धार ज्यौं ही गले से लगाया विचारा ऊधो पहुँच कर हाथ रोक लिया। 'श्यामसुंदर चिहुँक पड़े कि यह आधी रात को और कौन आपत्ति आई, ऊधो को देख बोले-'तू इतनी रात को कहाँ आ गया मैं तो अब'-ऊधो ने बात काटी और कहने लगा-'इसलिए तो आया-देखिए 'श्यामा वह अटारी पर चढ़ी चढ़ी आपकी सब व्यवस्था देखती थी सो उसने मुझै सुलोचना के द्वारा कह कर शीघ्र पठाया-वह आपका तरवार उठाना देखती थी -'

श्यामसुंदर ने बड़ी प्रीति से पूछा-'कहो क्या 'श्यामा का संदेसा है? वह काहे को कुछ कही होगी। मैंने उसे चीन्ह लिया-वह बड़ी पापिन और कपटिन हो गई है। न जाने उसके मन में क्या सूझा है, जो मेरे से दीन की तनिक सुधि नहीं करती -'

ऊधो ने कहा-'महाराज आप ऐसे शीघ्र ही अधीर हो जाते हैं तो फिर कैसे काम होगा। उस दिन क्षण भर 'यामा के पत्र के आने में विलंब हुआ तो आपने निर्जन स्थान में मकरंद के गले से लग कितना विलाप किया -'

'हाँ किया तो सही था पर इसका कौन देखने वाला है-'वन में मोर नाचा किसने देखा' इतने पर भी तो उस कोमल चित्तवाली को दया न आई,' यह 'यामसुंदर ने उत्तर दिया।

ऊधो बोला-'महाराज सुनिए 'यामा ने यह कहा है कि तुम जाकर उन्हैं समझा देव मैं अवश्य उन्हैं मिलूँगी और धीरज धरैं कल्ह कोई-न-कोई उपाय निकाल ही लूँगी।'

श्यामसुंदर ने कहा, 'कह दे कि यदि कल्ह तक उत्तर न आया तो मेरी तिलांजुलि ही देनी पड़ेगी। तू जा मैं अब जैसी नींद लूँगा रात और सेज दोनों साक्षी रहैंगी।'

ऊधो चला आया। 'श्यामसुंदर मुख ढाँक बड़ी देर तक सोचते रहे, राम राम कर रात काटी इस पाटी से उस पाटी कराह कराह समय बिताया। मैं उनकी दशा कहाँ तक लिखूँ। उन्हैं मेरे बिना एक छिन दिन की भाँति और एक दिन कल्प के समान बीतता था। भोर हुआ। सब लोग अपने अपने काम में लगे पर वे अभी तक सेज ही पर पढ़े हैं। रामचेरा ने बरबस उठाया, मुख हाथ धुलाया, कुछ दुग्ध पान करके फिर भी लेट रहे राजकाज सब छूटा। ध्यान मेरा लगा के हृदय का कपाट बंद कर लिया। मुझे भी चिंता हुई। आज जो कुछ बात नहीं होती तो वे अवश्य आत्मघात कर लेंगे। इतना सोच भोजनोत्तर सुलोचना के घर गई और एक पत्र 'श्यामसुंदर को लिखकर उसी के द्वारा भिजवा दिया। यह पत्र कुछ विचित्र नहीं था, केवल सहेट का सूचक था। प्रकाश करने का प्रयोजन कुछ नहीं, समय तो साँझ का ठहरा था-स्थान 'धीर समीर'-वंशीवट के उस पार। ग्रीष्म के दिनों की साँझ कैसी मनोहर होती है, यही समागम का उत्तम समय था। चित्रोत्पला मंद मंद बहती थी। तरल तरंगों में सफरी उछलतीं थीं, हँसी की श्रेणी-चक्रवाक के जोड़े, कुररियों की कतार पार पार पर बैठी शोभित होती थी।

सुभल सलिल अवगाहन पाटल संगम सुरभि वन की पौन।
सुखद छहारे निदिया दिवस अंत रमनीय न भौन।
तनिक तनिक करि चुंबन केसर सुकुमार डारन पै भौंर
सदय दलित मधु मंजरि सिरिसा सुमन पर रहैं झौर।

ऐसे समय में 'श्यामसुंदर का और मेरा समागम विधि ने रचा था। दिनकर-कर ने पश्चिम दिशा के मुख में गुलाल लगा दिया। संध्या समय के पश्चिम दिशावलंबी मेघ नाना प्रकार के वर्ण दिखलाने लगे। सूर्य के रथ का पिछला भाग ही केवल दृष्टि पड़ता था। पूर्वाशा को छोड़ सूर्य नायक ने पश्चिमदिगंगना को सनाथ किया, वह भी इस नायक को पाकर रजनीपट मंडप में जा छिपी मानो मुझै समागम की पाटी सिखा दीय मैं अपने जी में डरी कि प्रथम समागम का आगम कैसे होता है-हँसी-मुसकिरानी-संध्या के समान जाप के सदृश लाल वसन धारन किए, सुलोचना आगे और वृंदा पीछे बीच में दोनों के मैं हो गई, जैसे दिन और रात्रि के बीच में संध्या हो। 'श्यामसुंदर ने दूर ही से देखा-उठे बैठे इधर उधर देखा, फिर मेरी ओर देख कर खड़े हो गए, मैं अब

निकट पहुँची जाती थी। मेरा भी सकुच के मारे मुँह नीचा होता जाता था–पर 'श्यामसुंदर को बिन देखे लोचन कल नहीं लेते थे। सखियों के बीच में बार बार किसी न किसी मिस से देख लेती थी। अब बहुत ही निकट गई। उनकी मेरे तन को देख चिरकाल की प्यास बुझाई और मुझे झपट कर अंक से लगा लिया–वाह रे दिन–धन्य है वह घरी जिसमें इस आनंद की लूट हुई। मैं उनके और वे मेरे बदन को देख देख भी नहीं अघाते थे। मैं चंपकमाल सी उनके हृदय से लपट गई। प्रथम समागम में भी इतनी ढिठाई स्वभाव वश–या केवल चतुराई के कारन होती है, पर मैं इस नवीन संगम के दिन यद्यपि नवोढ़ा रही तौ भी मुझे 'श्यामसुंदर ने पहले से सब कुछ सिखा दिया था। मैंने कहा–'प्यारे अपने जी की पीर मिटा लो' पर उनने कुछ उत्तर न दिया वे अवाक्य हो गए उन्हैं कोई उत्तर न सूझा, केवल ललचोहीं और प्यासी दृष्टि से मेरी दृष्टि पर टकटकी लगाए रहे। जुगल त्रिलोचनों पर जुगल कमल सनाल समर्पण किए अथवा तन सरोवर में पैठ चक्रवाक के दो बच्चों को हाथ से पुचकारते। चुंबन किया आलिंगन किया–मेरा तो बस अब वही हाल हो गया था जैसा पजनेस ने कहा है।

'बैठी विधुवदनी कृशोदरी दरीची बीच
खीच पी निसंक परजंक पर लै गयो।
पजन सुजान कवि लपटी लला के गरे
झपटी सुनीवी कर जंघन सबे गयो।
गोरो गोरो भोरो मुख सोहै रति भीत पीत
रति क्रम रक्त ह्वै अंत सो रजै गयो।
मानो पोखराज ते पिरोजा भयो मानिक भो
मानिक भए पै नील मनि नग ह्वै गयो।'

अधिक क्या कहूँ 'यामसुंदर ने मनभाई कर लिया। मुझै भी उनका इतना मोह लगा था कि रात दिन समागम की कथा मुख से नहीं छूटती थी।

श्यामसुंदर ने मुझै अपनी अंक से वियुक्त नहीं किया। वे तो मुझै अपने हृदय से चपकाए रहे–बार–बार चुंबन का लेना देना होता था मानौ जोबन की हाट आज सेंत में लुटी जाती हो। वे मुझे गले से लगा बोले–'सुनो प्यारी –

जियतें सो छबि टरत न टारी
मुसकिराय मो तन गलबाहीं दै चूम्यौ जब प्यारी। ध्रुव।
करि इक ठौर बैठि रस बातें भुजा भुजा सो मेली
मुख में मुख उरसो उरझान्यो उरज गेंद अलबेली।

ताहीं समैं निसंक अंक मधि भरि भुज जबै लगाई
ह्वै ससंक करि बंक नैन मनु डक मारि लपिटाई।
अधर अधर धर धरकत हियरो कच धर जबै बटोप्यौ
कदली चाँपि चारु रस सुंदर सिसकी भरति निहोप्यौ।
लाय लंक कर कंपित छतियन मुतियन माल गिरानी
बाल बेलि मदनासव छाकी सुरत सीच तन पानी।
श्यामा हू तन पुलकित पल्लव अगुरिन मुख निज ढाँपी
चूमत मोहि निवाप्यौ ता छन मनौ प्रेम रस नापी
जलकन कलित सरीर सरोरुह झलकत बुंद सुहाते
विलुलित अलकन लपटि ललाटहिं पौनहु सुखद बहाते।
तीर नीर ग्रीषम के वासर सिकता सेज सुहाई
मनौ मदन निज काम जानि कै मुक्त कूर बगराई।
ता पर बहत वयार सुपावन सुरत परिश्रम टारी
जगमोहन सो दुर्लभ सपने सुख संगम बलिहारी।'

इसका मेरे सामने एक चित्र सा लिख गया। 'यामा के विराम लेती ही वह प्रचंडा देवी जिसका वर्णन कर चुके हैं और जो हमें स्वप्न में मंत्र बता गई थी प्रकट हुई, बड़े बड़े स्वेत दाँत चमके 'दुर्दर्शदशनोज्ज्वला'-विटप की शाखा से लंबे लंबे बाहु पसार जादू की छड़ी ज्यौंही निकाल 'यामा की चोटी से छुवाया बादल छा गए अंधकार छा गया और वह मनमोहिनी प्रानप्यारी जीवन अवलंब की शाखा 'यामसुंदरी 'यामा लोप हो गई-तिमिर ने सब लोप कर दिया। जिधर देखो उधर अंधकार।

इति द्वितीय स्वप्नः।

अथ तृतीय प्रहर का स्वप्न

'जिनके हित त्यागी कै लोक की लाजहिं संगही संग में फेरो कियो।
हरिचंद जू त्यों मग आवत जात में साथ घरी घरी घेरो कियो।
जिनके हित मैं बदनाम भई तिन नेकु कह्यौ नहिं मेरो कियो।
हमैं व्याकुल छोड़ि कै हाय सखी कोउ और के जाय बसेरो कियो।'

हा ईश्वर! क्या यह स्वप्न था कि प्रत्यक्ष 'श्हमैं व्याकुल छोड़ि के हाय सखी कोउ और के जाय बसेरो कियोश'-इसके क्या अर्थ थे। यह कौन सा मंत्र था किसने कहा, कब कहा, दिन में कहा कि रात में, सामने कहा कि पीठ पीछे, कान में कहा कि और कहीं, मुझै कुछ स्मरण नहीं। सोचते सोचते ध्यान सागर

में एक सीप हाथ लगी उसको खोलते ही बड़े-बड़े मोती निकले-इतने बड़े थे कि दो दो आँख रहते भी न सूख पड़े। अब क्या करूँ पाना और न पाना बराबर था, पाई के क्या किया जो किसी काम न आए। इच्छा हुई कि किसी 'वेतद्वीपवाले की दुकान से एक जोड़ी चश्मा मोल लाते तब तो यह करिश्मा भी दिखता।

दुकान कहाँ थी जो ऐसे शीघ्र मिलती। पर रेल तो थी ही। उसी पर बैठ के चलने की इच्छा हुई-इतने में कलकत्ते के स्टेशन पर मनोरथ पर बैठ पहुँचे। स्टेशन के कपाट बंद थे, ये लोहे के बने थे ऐसे पुष्ट थे कि नष्ट के भी दुष्ट बाप से न खुल सकैं। इन्हीं कपाटों में कई बार माथा फोड़ा-हथियार लेकर तोड़ा, पर यह जोड़ा ऐसा था कि तनिक न टसका। मन में सोचा कि सूर्य का सतमुँहा घोड़ा आवैं तब तो यह दुमुँहा द्वार खुलै पर आवै कैसे। यही सोच में तो एक चौकड़ी की कड़ी बीत गई। वह बूढ़ी ने तो हमैं अनेक प्रकार के जादू सिखा ही दिए थे-सिखाना क्या बरन सब कामरूप कामाक्षा को झोली में भरकर मुझै दे गई थी। मैंने उसी का स्मरण किया झोली तो ओली ही में धरी थी। वीर बजरंग और 'यामा देवी का नाम-स्मरण कर ज्यों ही हाथ डाला मंत्र की एक पुड़िया हाथ लगी, पुड़िया को खोलते ही उस्में से मंत्र की धुनि होने लगी। इस समय तो सतमुहा घोड़ा बुलाना था, यह मंत्र याद कर लिया।

'उच्चौ:श्रवाय नम: एहि एहि फाटकं खोलय झोलय स्वाहा'

इसका जप गोमुखी में हाथ डार के करने लगा। अष्टोत्तर शत भी न पूरने पाया कि एक सहस्र किरनवाले भगवान मरीचिमाली अपने घोड़े को कोड़े फटकारते पहुँच ही गये, हाथ जोड़कर बोले, 'श्क्या आज्ञा हैश'-मैंने कहा, 'श्इस स्टेशन के निगढ़ कपाट तो खोला।'' उनने सुनते ही रथ हाँका-घोड़ा तो बड़ा बाँका था-खोलते खोलते हार गया, टापैं मारी-लत्ती फेंकी-बचा को ऐसी चोट लगी कि फिर लौट कर हल्दी अजवाइन से सेंकी-छठी का दूध याद किया होगा। घोड़ा का बल निकल गया बचा से कुछ भी हो सका। मैंने कहा, 'श्यदि तुम में यही बल था तो आए क्यौं-वहीं बैठ रहते व्यर्थ हमैं कष्ट दिया अब अपना सा मुख ले जाइए।'

इतना सुनते ही सूर्य भगवान भागे। क्या करैं बिचारे मुँह तो विलायती अनार सा सूख गया था, ऐसा रथ भगाया कि फिर पश्चिम समुद्र में जा डूबे-लाज ऐसी होती है-पराभव की लाज के मारे मुँह सदा नीचे ही रहता है। अब रेल के खुलने का खेल निकट था, इसी से जी में और चटपटी समानी दूसरा मंत्र याद पड़ा

'गंगजराजायनमः'-इसे भी पूर्व रीति पर जपा पर ज्यौंही गोमुखी में इसके जपने की जुगल की गौमुखी सौमुखी हो गई सब पाँजर झाँझर हो गए, माला नीचे लटक पड़ी, मुझै यह ज्ञान न रहा कि यह गोमुखी साक्षात् ब्रह्मा के झोली से निकली थी। मुझै क्या पड़ी थी जो उसमें हाथ डाल कोई मंत्र जंत्र जपते, मेरा तो अपवित्र हाथ था डालने के साथ ही जल भुन जाता। पर यदि ऐसा साहस न करता तो 'श्यामारहस्य की थाह भी न मिलती। रुद्रयामल और कालिकातंत्र तो अभी हरितालिका के दिन के बने थे मैं बड़े घनचक्कर में पड़ गया। पर इसकी क्या चिंता फक्कर तो होना ही था, जप न हो सकी, क्यौंकि उस गोमुखी में अनेक छिद्र हो गए थे। वाह रे विष्णुशर्मा! क्यौं न हो! तू ही तो एक मेरा नवखंड पृथ्वी में मित्र था। लक्ष्मी जी की पूजा करते करते स्वयं नारायण को भी राजी कर लिया अब क्या बचा था जिस्के पीछे तू दौड़ता। मैं तो आम की फुनगी में लटक गया भौरों के साथ उड़ने लगा-काले काले कपोत पोत में बैठ कर उड़ते थे। मंदिर के कंगूरे में बैठ कर अंगूर खाने लगा। हाथ जोड़ कर कपोतों को बुलाया-कपोत कब विश्वास करते थे? वे दूर ही से देख कर उड़ जाते। मैंने बहुतेरा अपना सा बल किया। बड़े बड़े रस्से मद्रास और माड़वार से डाक पर मँगवा कर बाँधे पर फंदा न लगा। जिस चिड़िया को फाँस लगाई वही चिड़िया निबुक गई। मानौ उन्होंने महाबीर से निबुकना सीख हो।

'निबुक चढ्यौ कपि कनक अटारी।
भई सभीत निशाचर नारी।'

इस ब्रह्मफाँस से निबुकने के लिए सिवाय बजरंगबली के और कौन समर्थ था-हाँ-सो भी 'यामा और 'श्यामसुंदर की आर्शीवाद से। अंत में एक कपोत को पोंछ पुचकार के विश्वास दिया। संदेशा भेजने के लिए इनसे बढ़के और कोई विहंगगणों में नहीं है। यह चतुरता की कला इनकी रूम रूस के युद्ध में भली भाँति लखी गई थी। एक कपोत से कहा, 'तू जाकर किसी बड़े भारी ऋषि को बुला ला कि जरा मेरी गोमुखी को टाँक तो दे।' कपोत उड़ा उड़ते-उड़ते कैलास पहुँचा वहाँ महादेव से कहा, 'कोई ऐसा मुनि बताइए जी गोमुखी सी दे। वे जप करने को ज्यौंही बैठे उनकी माला नीचे लटक पड़ी अब वे जप बिना समाप्त किए भोजन नहीं करते।'

महादेव जी ध्यान धरके कहने लगे, 'इसका सीनेवाला तुम्हैं तुंडदंष्ट्रा नामक देश में मिलैगा वह यहाँ से सौ कोस पर दक्षिण दिशा में रहता है।'' कपोत पलभर में उड़ कर पहुँच गया। दंष्ट्राकराल का राजा विरागचंद्र गौतममुनि का चेला

था वात्स्यायन का भाई–वसिष्ठ का बाप–नारद का बहनोई और विश्वनाथ का गुरुभाई। विरागचंद्र से भी यही कहने लगा। विरागचंद्र ने अपने एक पूर्वोक्त जातिबंधुओं को बटोरा मंत्र किया। सूचीकार के ढूँढ़ने को ए सब बहुत इधर उधर दौड़े, पर हार मान कर घर बैठे। जब ऐसे ऐसे मुनियों का बल विफल हो गया तो मनुष्यों की क्या गणना थी! अब क्या करता? गोमुखी से हाथ निकाला उक्त मंत्र का जप करते करते 10 वर्ष बीत गए। एक वर्ष होम करते बीता। बारहें बरस मंत्र सिद्ध हो गया। इंद्र अखाड़े का ऐरावत गजराज झूमता हुआ आया। पर पलकदंता हाथी मत्त था। धर्म का ध्वजा बाहर के दाँतों के नाई निकाले पर भीतर के दसनों के तुल्य कपट और विश्वासघात तथा अधर्म का पक्ष दबाए उपस्थित हुआ। मैं इसे देख उठ खड़ा हुआ। यह उपेंद्र का गजराज था। भला क्यों इसे देख आसन न देता। नहीं तो कहीं दुर्वासा सा कोई आकर शाप दे देता तो फिर मैं क्या करता। गज के दोष से दुर्वासा मुनि ने इंद्र को शाप दे ही दिया था। भला क्या इंद्र ने दुर्वासा की दी माला भूमि पर फेक दी थी या गज ने जो सामान्य पशु था?–पर बड़ों को कौन कह सकता है चाहै, जो करै, चाहै आकाश में महल बनवावैं उन्हैं तो 'रवि पावक सुरसरि की नाईं' है। बाबा जी नई बालाओं को पूरा भोग भी देते हैं तौ भी बाबा जी ही बजते हैं–कहावत है कि 'माई को माई भई–माई बुलावन जात है' चमारिन, डोमिन, धिररकारिन, धोबिन, तेलिन सभी गंगा के तुल्य हैं –

'आशंखचक्रांकितावाहुदंडा गृहे समालिंगितबालरण्डा।
मुण्डा भविष्यन्ति कलौ प्रचण्डः–'

बस हश! हाँ तो फिर मैंने गजराज को नमस्कार किया और उस फाटक खोलने की प्रार्थना की। लोभी पशु एक पसर धान के लालच में झट दतूसर फाटक पर लगा ही तो दिया (विश्वास न हो तो कर्पूर तिलक का वृत्तांत हितोपदेश में देख लो) फट् से फाटक फट पड़ा खुल गया। दूरबीन लगाने की भी आवश्यकता न पड़ी बिना इस यंत्र के उस पार का सब कुछ उघर गया। फाटक तो खुला ही था–भगवती भागीरथी गंगा की भी धार निकल पड़ी अब तो ऐरावत जी की नानी सी मर गई। कलकत्ता के निकट की तो बात है। भगीरथ कई सहस्र वर्षों तक तप करके पाए इधर केवल 'गं' बीज के जप मात्र से शीघ्र ही निकल पड़ी–ऐरावत लोट गया–स्नान किया हाथियों का मन जल में बहुत रमता है–किनारे की सब कमलिनी क्रम से उखाड़ उखाड़ कौर कर गए ऐसा जान पड़ा मानों

'चित्रद्विपा पद्मवनावतीर्णाः
करेणुभिर्दत्त मृणालभंगाः'

गंगा की धार फाटक के आर पार बह गई। मैंने तो जाना कि बस स्टेशन भी बहा ले जाएगी पर मेरे भाग्य से बच गया। बीच धार में शेष निकला तब तक भूमि के भार सम्हारने की एवजी कूर्म को दे आया था–शेष पर भगवान् जगन्मोहन विष्णु सोए थे। लक्ष्मी जी पाव पलोटती थी–नाभिकमल से मृणाल निकला–फिर कमल का फूल हो गया–कमल का ध्यान करके देखा तो उसी जलज में से जलजासन निकले–चारों वेद पाठ करते–पर मधुकैटभ दैत्यों ने इनके भी दाँत खट्टे किए। ब्रह्मा भागे दैत्यों ने पीछा किया जोतसी लोग सायत विचारने लगे पर ज्योतिष का उनको कुछ बोध थोड़ा ही था। अगहन की सायत सावन भादों ही में धरी। शुक्र का भी उदय नहीं हुआ था, अगस्ति का भी उदय न था–पंथ का जल भी नहीं सूखा था–दैत्यों ने ब्रह्मा का ऐसा पीछा किया जैसे बालि ने मायावी का किया था–न मानो तो वाल्मीकि रामायण पढ़ो–मैं भी पीछे पीछे गया। ब्रह्मा फाल्गुण ऋषि के चेले शाक्य मुनि की कंदरा में जा घुसे–उनके घुसते ही मैंने द्वार पर एक महा शिला लगा फिर उसी स्टेशन पर आ गया। विष्णु से सब हाल कह दिया। विष्णु भी उन्हीं दैत्यों को मारने हेतु गजराज पर सवार हो लक्ष्मी को छोड़ चले गए अब बिचारी लक्ष्मी शेषनाग के पाले पड़ी–यदि मैं न होता तो वह उसे सांगोपांग लील जाता। जैसे दमयंती को अजगर से व्याधे ने बचाया–पर अंत को व्याधा अनाचार करने लगा। दमयंती ने शाप देकर भस्म कर दिया, पर मैं भस्म तो नहीं हुआ केवल कोयला होकर पड़ा रहा। मैंने प्रार्थना की लक्ष्मी प्रसन्न हुई और शेष का विष खींच मुझै सदेह कर फिर सजीव किया। यही तो आश्चर्य था कोई अमृत पीने से जीता है मैं विषपान कर जिया। धन्य है री मायादेवी धन्य है! इतने ही में गंगा की ऐसी लहर आई कि लक्ष्मी उसी तरंग में बह गई–मैंने शोच किया रेल आई टिकट ली चार रुपये नौ आने साढ़े दस पाई देना पड़ा। रेल पानी पर चलने लगी। गंगा बहते बहते ब्रह्मपुत्र से जो मिली और अंत को सहस्र धारा हो सागर में जा गिरी–वहाँ सौतें तो बहुत मिलीं पर गंगा की तृप्ति कब होती है, एक सागर से दूसरे दूसरे से तीसरे इसी तरह सातों सागर घूमी–अंत को फिर क्षीरसागर में पहुँच कर विलास करने लगी। मैं भी गंगासागर के मुहाने तक गया। मुहाने में घुसी–वाह री रेल।

'अग्नि वायु जल पृथ्वी नभ इन तत्वों ही का मेला है
इच्छा कर्म संजोगी इन् जिन गारड आप अकेला है,

जीव लाद सब खींचत डोलत तन इस्टेशन झेला है
जयति अपूरब कारीगर जिन जगत रेल को रेला है।'

दूसरा स्टेशन दिखाने लगा। विचित्र लीला, अब जल से थल हो गया। उस स्टेशन के स्तंभ दिखाने लगे, स्टेशन तो हैमिल्टन साहब की दुकान था। वाह रे ईश्वर! मनोरथ पूरा हुआ। चश्मा मिलने की आस लगी। दुकान पर उतरे। एक गोरी थोरी वैसवाली निकल आई, इस गोरी के पीछे एक पूछ भी थी। मैंने तो ऐसी स्त्री कभी नहीं देखी थी। मुख मनोहर और वदन मदन का सदन था। इस कामिनी के कुचकलशों पर दो बंदर नाचते थे, इनके नाम दंभाधिकारी और पाखंड थे। इन बंदरों के पूछ से कपट और घात नाम के दो बच्चे और लटकते थे। मैंने ऐसी लीला कभी नहीं देखी थी। करम ठोका आश्चर्य किया। साहस कर दुकान के भीतर जा पूछने लगा, 'गोरी तेरी दुकान में एक जोड़ चश्मा मिलैगा?' उसने त्यूरी चढ़ा के उत्तर दिया, 'मूर्ख द्वापर और त्रेता में कभी चश्मा था भी कि तू माँगता है। तब सभी लोगों की दृष्टि अविकार रहती थी। यह तो कलियुग में जब लोग आँख रहते भी अंधे होने लगे तब चश्मा भी किसी महापुरुष ने चला दिया। मुझै नहीं जानता मैं पाखंडप्रिया अभी 'वेत द्वीप से चली आती हूँ, मैं फणीश की बहिन हूँ, देख बिना चश्मा के तू देख लेगा कि मैं कैसी हूँ और मेरा रूप कैसा आश्चर्यमय है। भाग जा नहीं तो-हाँ तमाशा बताऊँगी।'' मैंने कहा, 'हा दैव! किस आपत्ति में तूने मुझै डाला।'' झट 'श्यामा का स्मरण किया और ज्यौंही गंगा सागर संगम में डुबकी लगाई पाप कट गए सब भ्रम नाश हो गया। रेल का खेल विला गया फिर भी वही 'श्यामा और मैं-फिर भी वही पर्वत और नदी-और फिर भी वही चाँदनी की रात-रात के दोपहर बीत चुके थे, तीसरा पहर था।

जिधर देखो उधर सूनसान-पशु पंछी सब योगियों के भाँति समाधि लगाए अपने अपने स्थल में बैठे थे। सच पूछो तो वह समय ऐसा ही था जैसा ही था जैसा हरिश्चंद्र ने नीलदेवी के पंचम दृश्य में कहा है।

राम कलिंगढ़ा, तितला
सोओ सुखनिदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे,
सोओ सुखनिदिया प्यारे ललन।
भई आधी रात वन सनसनात,
पशु-पंछी कोउ आवत न जात,
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात

पातहु नहिं पावत तरुन हलन।
झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,
सतरात अंग आलस जनाय,
सनसन लगी सीरी पवन चलन!
सोए जग के सब नींद घोर,
जागत कामी चिंतित चकोर,
विरहिन विरही पाहरू चोर,
इन कहं छिन रैनहु हाय कल न।

वर्षा के बादरों ने अपना आगम जनाया, विरही लोग कादर हो हो चादर से अपना मुँह छिपा-छिपा लगे रोने, संजोगी अपनी अपनी प्यारियों के साथ सादर हँसने बोलने लगे, मानौ अपना रावचाव दिखा के वियोगियों को लजाते और उनके दुस्सह दुःख पर हँसते थे। जो हो ये दिन भी न रहैंगे। यह तो रथ के चक्र सी मनुष्य के भाग की गति है-कभी सुख कभी दुःख, कभी गाड़ी नाव पर और नाव कभी गाड़ी पर चलती है। हाँ-आषाढ़ के गाढ़े-गाढ़े मेघ गर्जन लगे। वियोगियों के जी लरजने लगे, अवकाश में बक की पाँति उड़ती ऐसी जान पड़ती थी मानौ काली ने कपाल की माला पहिनी हो। बिजुली चमकने लगी-बादर बार बार घहराने लगे। 'श्यामा ने कहा-'भद्र! तुम इतनी देर तक कहाँ गए थे। देखो पावस आ गई। विरहियों के प्रान अब कैसे बचौंगे? सुनो -

लागैगो पावस अमावस सी अंध्यारी जामे
कोकिल कुहुकि कूक अतन तपावैगो।
पावैगो अथोर दुःख मैंन के मरोरन सो
सोरन सो मोरन के जिय हू जलावैगो।
लावैगो कपूरहु की धूर तन पूर घिसि
भार नहि कोऊ हाय चित्त को घटावैगो।
ठावैगो वियोग जगमोहन कुसोग आली
विरह समीर वीर अंग जब लागैगो।

और भी -

को रन पावस जीति सकै लहकारै जबै इत मोरन सोरन।
सोरन सों पपिहा अधरात उठै जिय पीर अधीर करोरन।

रोरन मेष चमंकत बिज्जु गसे अब नैन सनेह के डोरन।
डोरन प्रेम की आय गहो जगमोहन 'श्याम करो दृग कोरन।

मैंने कहा–'देवि! मुझै ज्ञात नहीं मैं कहाँ था और कौन कौन आपत्ति झेल रहा था, तुम तो अंतरजामिन हौ सब जान ही गई होगी। तुम्हारा नाम स्मरण करते सब मोहतिमिर नाश हो गया। फिर तुम्हारा दर्शन पाया जैसे फणी अपना मणी पा जाय, तो ठीक है पावस तो आ गई अब चलो इस गुफा में बैठें, चलते नहीं तो पानी के मारे तुम्हारी कथा भी न सुन सकैंगे।'

यह सुन 'श्यामा अपनी बहिन और वृंदा के साथ उठी और इसी पर्वत के कंदरा में बैठी। यह कंदरा बड़ी विचित्र थी मानौ विश्वकर्मा ने स्वयं 'श्यामा के बैठने को बनाया गया। नाना प्रकार के पक्षी गान करते थे। मत्त हंस सारस पपीहा कोइल इत्यादि पक्षी नीचे बहती हुई चित्रोत्पला में नहाते और कलोल करते। प्रकृति का उद्यान यहीं था।

साल ताल हिंताल तमालन बंजुल धवा पुनागा
चंपक नाग विटप जहँ फूले कर्निकार रस पागा।

कंचन गुच्छ विचित्र सुच्छ जहँ किसलै लाल लखाहीं लता भार सुकुमार चमेलिन पाटल विलग सजाहीं।

तरुण अरुण सम हेम विभूषित दूषित नहिं कोउ भाँती
वेदी लसत विदूर फटिकमय सलिल तीर लस पाँती।
जहँ पुरैन के हरित पात बिच पंकज पाँति सुहाई
मनु पन्नन के पत्र पत्र पै कनक सुमन छबि छाई।
नील पीत जलजात पात पर विहँग मधुर सुर बोलैं
मधुकर माधवि मदन मत्त मन मैंन अछर से डोलैं।
हरिचंदन चंदन ललाम मय पीत नील वन वासै
स्यंदन विविध वदन जगवंदन सुखकंदन दुःख नासै। –

हम लोग सब इसी में बैठ गए। मैंने कहा अब पावस की शोभा देखो–जलनिधि जल गहि जलधर धारन धरनीधर धर आए।

पटल पयोधर नवल सुहावन इत उत नभ घन छाए।
फरफरात चंचल चपला मनु घन अवली दृग राजै
गजरज घूमि भूमि छ्वै बादर धूम धूसरे साजै।
गज कदंब मेचक से अंबुद नव लखि नभ में छाए
को न गई पिय वल्लभ ढिंग निशि करि अभिसार सुहाए।

श्याम जलद नव सुंदर हरिधनु सुखद सरस मधि सोहै
श्याम सरीर 'यामता हर मनु विविध मनिन जुत मोहै।
वारिद वृंद बीच बिजुरी बलि चंचल चारु सुहानी
छिन उघरत छिपि जात छिनक छिन छटा छकित सुखदानी
नव तमाल सावन तरु तरलित धीर समीरहिं मानौ
विटपन छिपि छिपि जात मंजरी छिन छिन उघरत जानौ।
विधुर वधू पथिकन की नीरद नीर नैन सो पेखैं
असुभ दरस वारिद गुनि जीवन अंत आपुनो लेखैं।
मानिनि मान नमन घन मारुत उपवन वनन नचावै
ललित विकच कंदल कुलकलिका जगमोहन अकुलावै।

श्यामा बोली–'आप तो बड़े प्रेमी और कवि जान पड़ते हैं, पावस की अच्छी छटा दिखाई। आप का वर्णन मेरे जी में धस गया। मैं भी कहती हूँ सुनिये–

जलद पाँति धुनि संपति निज लहि कल आलाप सुहाई
किलकि कलाप कलापिन कुहुकत कोकिल काम कसाई।
बाजत मनौ नगारे सुनि धुनि पावसराज बधाई
श्रुति सुखदायक मोर पपीहा बग पंगति नभ छाई।
नव कदंब रज गगन अरुन करि अंबर सुषमा साजै
कंदल सुमन पराग सुरभिजुत जेहि लहि सब दुःख भाजै।
अनुरागिन चित नव नव उपवन पौन प्रेम प्रकटावै
नवल नवेलिन मन मनोज मथि परसि अंग उपजावै।
नीरद प्रथम नीर के बूंदन मही रहित रज कीन्ही
ताप मिटाय सबै विधि धरनी आँगन सुख दै चीन्ही।
केतक चहुँ सोहत वन वागन जापै भृंग गुंजारै
गजरद से अति सेत मनोहर रागिन हृदय विदारै।
घन घन अवलि विघट्टन सों मनु खस्यौ खंड शशिकेरा
कृशित शिखा अति पथिक भृंग सम आवत गिरत घनेरा।
कुटज पराग सुमन कन निर्झर चारु बुंद मनु राजै
चूरन ललित दलित मोती सित अनुपम सोभा भ्राजै।
मनु दधि रेनु सुहात मनोहर पियत भृंग मकरंदा
पावस सुखद समीर डुलावत 'श्यामा तन सुखकंदा।'

मैं 'श्यामा की कविता सुनकर दंग हो गया, मैंने ऐसी अपूर्व कविता कभी किसी ललनागण के मुख से नहीं सुनी थी। मैं 'श्यामा और 'श्यामसुंदर की प्रेम कहानी सुन चुका था–बहुत जी में विचार किया। हाथ कुछ न आया मैंने कहा–'श्यामा, तुम्हारी कविता ने मेरे जी में छेद कर दिया–हाय रे दई! आज 'श्यामसुंदर न हुआ नहीं तो तुम्हारे रूप और गुण दोनों की बलिहारी होता, पर यदि उनके ओर से मैं यह कहूँ तो तुम्हैं कैसा लगै?

प्यारी पावस प्रबल प्रलय सम तुअ बिनु मुहि दुःखदाई
अब हूँ तो सुधि लेहु देत ए बादर विरह बधाई।
नूतन अवलि नीप बन दस दिसि वारिद पट सरि धारे
निज रज वसन समान दियो गुनि सखी भाव दुःख टारे।
गगन गहन गिरि गिरा गभीरन गरजत गरज गयंदा
बीच बीच विचरत बन बिजुरी विगल बक वृंदा।
भीम भयानक भौनहु भासत भांदो भामिनि भोरी
तेरे रहित अतन तरकस तै तीर तान तन तोरी।
मृगनैनी मृगांक मन मंदिर मुद्यौ मधुर मुख मोही
परम प्रीति परतीत पीर पिय प्यारो परवस पोही।
चतुर चलाक चपल चितचोर चोर चलु चीन्हो
छिप्यो छपाकर छितिज छीरनिधि छगुन छंद छल छीन्हो
झन झनात झिल्ली झंपावत झरना झर झर झाड़ी
ठसक ठसकि ठठकी ठसकीली ठाठ ठाठ ठकि ठाड़ी।
डरत डरत डग डगरी डगरहिं डगमगात डहकानी
थरथरात थर थर थिर थाकी थम्हिं थम्हिं थहरि थकानी।
दई दगा दर दर दिल दाह्यौ दाहकि दहन द्रुम दागा
जोहत जगी जगत जमजामिनि जगमोहन जन जाना।'

श्यामा ने कहा–'बस बस–मैं सब जान गई–पर तुम यह तो मुझै कहो कि तुम कौन हौ–मुझै बड़ा संदेह होता है–'।

मैंने कहा–'अभी तुम अपनी कथा पूरी करो–अंत में कहूँगा जो कुछ कहना है–तुम्हारी कथा यद्यपि दुःखदायक है पर सुनने को जी ललचाता है। इससे जब तक पूरी न सुनावोगी मैं कुछ भी न कहूँगा। जैसे इतनी दया कर इतनी कही वैसे ही शेष तक कृपा कर कह ढारो।'

श्यामा बोली–'श्यामसुंदर की प्रीति दिन दिन शुक्ल पक्ष के चंद्रमा सी बढ़ती गई–बार बार मुझसे समागम हुआ, बार बार मैंने उनकी तपन बुझाई। अब तो वे ऐसे विकल हो गये थे कि बिना मेरे एक छिन भी न रहते। जब देखो तब मेरी ही बात–मेरा ही ध्यान–मेरा ही मान–तान में भी मेरा नाम–कविता में भी मैं–'श्यामसुंदर के नैनों की तारा–'यामसुंदर के नैन चकोर की चंद्रिका–उनके हृदय–कमल की भ्रमरी–और कहाँ तक कहूँ उनकी जो कुछ थी सो मैं ही। उन्होंने ऐसा प्रेम लगाया जिश्का पारावार नहीं।

'जागत सोवत सुपनहू सर सरि चैन कुचैन।
सुरति 'श्यामघन की हिए बिसरे हू बिसरैन।'
और मेरी भी यही दशा हो गई थी
'जहाँ जहाँ ठाढ़ो लख्यौ 'याम सुभग सिर मौर
उनहू बिन छिन गहि रहत दृगन अजौं वह ठौर।
सघन कुंज छाया सुखद सीतल धीर समीर
मन ह्वै जात अजौं वहै वह जमुना के तीर।'

एक दिन 'श्यामसुंदर प्रात:काल स्नान को जाते थे, मैं भी नहा के नदी की ओर से आती थी। हम दोनों गली में मिले। दिन निकल चुका था, पर उस समय वहाँ कोई न था। ज्यौंही उनके निकट पहुँची बदन कँप उठा, जाँघें भर आई और पिडुरीं थरथराने लगीं–इतने में मेरी एक सखी सावित्री नाम की पहुँच गई, हाथ भी कँपने लगे और माथे की गघुरी गिर पड़ी। सावित्री ने मुझै थाम्ह लिया नहीं तो मैं भी गिर पड़ती। गघरी तो चूर चूर हो गई। 'श्यामसुंदर हँस के चले गए। यह भेद किसी ने नहीं समझा। 'श्यामसुंदर ने उसी दिन मुझै यह लिखा भेजा–

तन काँपे लोचन भरे अँसुआ झलके आय
मनु कदंब फूल्यौ अली हेम बल्लरी जाय।
हेम वल्लरी जाय कनक कदली लपिटानी
अति गभीर इक कूप निकट जेहि व्यालि विलानी।
निकसि जुगल गिरि तीर जासु पंकज जुग थापे
खेलत खंजन मीन तरल पिय लखि तन काँपे।

यह उन्हीं की रचना थी मैं पढ़ के समझ गयी और मनहीं मन मुसकानी लज्जित हुई। मैंने उनसे कहला भेजा कि इसका अर्थ समझा दो। वे बड़े आनंद से आये मुझै घर में न पाया मैं उस समय सुलोचना और वृंदा के साथ नहाने चली

गई थी। 'श्यामसुंदर घर से फिरे और घाट की ओर चले-वहाँ पहुँचते ही मुझै वहाँ भी न पाया-कारन यह कि मैं तब तक नहा धो अपने घर चली आई। 'श्यामसुंदर निराश हुए घर लौट गए। ऊधो को बुलाके उरहना दिया -

तरसत श्रौन बिना सुने मीठे वैन तेरे
क्यौं न तिन माहिं सुधा वचन सुनाय जाय
तेरे बिनु मिले भई झाझर सी देह प्रान
रखि ले रे मेरो धाय कंठ लपिटाय जाय
हरीचंद बहुत भई न सहि जाय अब
हाहा निरमोही मेरे प्रानन बचाय जाय
प्रीति निरवाहि दया जिय में बसाय आय
एरे निरदई नेकु दरस दिखाय जाय।

ऊधो ने बहुत प्रबोध किया 'श्यामसुंदर रात भर विकल रहे। भोजन और नींद सपने हो गई। सुधि बुधि तन की भूलि गई। दूसरे दिन मैंने सुलोचना द्वारा सब वृत्तांत उनका सुना। बड़े सोच में रही-क्या करती कुछ उपाय नहीं था, पर उनके मन को संतोष करना मेरा मुख्य धर्म था, मैंने लिख भेजा कि वट-सावित्री के पूजन के पीछे भेट होगी। मैं-दिन सखी सहेलियों के साथ वट पूजने जाऊँगी तुम भी वहीं चलना। इतना ही लिख भेजा। मैं अपने जी में प्रसन्न हुई केसर का उपटन वदन में लगाकर केसर वदनी हो गई। शुद्ध स्नान कर पीत कौपेय की सारी पहिन बसंतवधूटी बन गई। वृंदा ने माँग गुह दी, सिंदुर की रेख धर दी। सीसफूल खोंस लिया, नागिन सी चोटी पीठ पर लहराती थी। नेत्रों में काजल की रेख मात्र लगा ली। कानों में कर्णफूल सोने के-कंठ में विद्रुम और हेम की कंठी, सोने की हँसुली-'श्यामसुंदर की दी कांचनी माला-लिलार में टीका-पटियों में बंदनी-हाथों में गुजरियाँ-पैरों में पैजनियाँ-बाजूबंद इत्यादि पहन के पूजा करने को वृंदा, सुलोचना, सावित्री, सत्यवती, सुशीला, मालती, मदनमंजरी, चंपककलिका, सुरतिलतिका इत्यादि सबों के साथ चली। वट वृक्ष निकट ही तो था सब सहेलियाँ मंगलगीत गातीं चलीं। 'श्यामसुंदर ऊधो के साथ दूसरी ही वाट से पहुँचे। सैकड़ों के बीच में से उन्होंने मुझै चीन्ह लिया और उनके नैन किबिलनुमा की भाँति मेरे ही ऊपर छा गए -

'वाही पर ठहराति यह किबिलनुमा लौ डीठि'
और मेरी भी गति चातक चकोर सी हो गई थी -
फिरै काक गोलक भयो देह दुहुन मन एक।

श्यामसुंदर मेरी छवि पर रीझ गए आँख-आँख से मिली और मन-मन से, पर हाय रे समय! हम लोग यद्यपि अति निकट थे बोलचाल न सके। पूजा समाप्त हुई। मैं उसी राह से अपने घर आई और वे भी उसी राह से गए। वर्षा का आरंभ हो आया था-'श्यामसुंदर ने मुझै मिलने को लिख भेजा। मैंने भी यह उत्तर दिया-

तीर है न वीर कोऊ करैना समीर धीर
बाढ़यौ श्रमनीर मेरो रह्यो ना उपाव रे
पंखा है न पास एक आवन की आस तेरे
सावन की रैन मोहि मरत जियाव रे
संगम में खोलि राखी खिरकी तिहारे हेतु
भई हौं अचेत मेरी तपन बुझाव रे
जान जात जानै कौन कीजिए उताल गौन
पौन मीत मेरे भौन मंद मंद आव रे।'-

इसको पढ़ 'श्यामसुंदर आनंदरूप हो गए। बार-बार इस कवित्त को पढ़ छाती से लगाया और 'धन्य भाग' कह किसी प्रकार से साँझ को नियत समय पर 'श्यामसुंदर पहुँच ही तो गए। इस बात के सुख का पारावार नहीं लिखती, मुझै तो मानौ साक्षात् बैकुंठ भी कुंठ जान पड़ता है। 'श्यामसुंदर की बड़ाई मैं कुछ नहीं कर सकी-मेरी रसना उनकी प्रशंसा और सुख कहते कहते थक गई थी। पर हाय मैं ऐसी बेकाज ठहरी कि उनको मुँह बताने की भी न रही। उनकी भलाई और मेरी बुराई-उनकी सौजन्यता और मेरी दुष्टता-उनकी दया और मेरी निर्दयता-उनकी कृपा और मेरी निठुरता-उनकी सचाई और मेरी झुठाई-उनकी दीनता और मेरी क्रूरता-उनकी हाय और मेरी हँसी-उनकी बड़ाई और मेरी नीचता-उनके दिल की स्वच्छता और मेरी कपटता-उनका तलफना और मेरा हँसना-इन दोनों पाटियों का सेतु हम दोनों की जीवन नदी में बाँधा जायेगा और आचंद्रार्क दोनों की कहानी लोक में प्रसिद्ध रहैंगी। बस अब अधिक कहने का क्या होगा-संसार इसको जान बैठा। तो मैं अपनी कथा कहती हूँ, सुनो। इस विषय में 'श्यामसुंदर ने जो कविता की वह तुम्हैं बताती हूँ।

सोरठा

दूती वीजुरि रैन, सहचरि चिर सहचारिनी।
जलद जोतिषी वैन, सायत धरत पयान की।
तिमिर सुमंगल वैन, तोम सदा झिल्ली रवै।
मुग्धे लहि मिलि चैन, छोड़ि लाज पियकंठ लगि।

कुंडलिया

पैयां परि करि विनय बहु लाई वाहि मिलाय
जमुना पुलिन सुबालुका रही हिये लपिटाय
रही हिये लपिटाय मिटावत तनकी पीरा
मदनमंजरी चंपमालती अति रतिधीरा
सजनी राखे प्रान सींचि अधरामृत सैयाँ
मुरझत नव तन बेलि विरह तप सों परि पैंयाँ।

बरवै

सुभल सलिल अवगाहन पाटल पौन
सुखद छाहरे निदिया सुरभित भौन।
रजनीमुख सजनी सो अति रमनीक।
रमनी कमनी चुंबन बिनु सब फीक।
तनिक तनिक लै चूमा बकुलन भौंर।
अति सुकुमार डार पै मौंरन झौंर।
सदय दलित मधु मंजरि सिरिस रसाल
आलबाल नव जोबन द्रुमहु विशाल।
लैकर बीन बसंतहिं गीत बसंत
कोइ परबीन लीन ह्वै बाग लसंत।
कुंज चमेली बेली फैली जाय
श्यामालता नवेली फूली धाय।
एला बेला लपटी बकुल तमाल
मनु पिय सों आलिंगन करती बाल।
अमराई में कोकिल कुहकै दूर
धीर नीर के तीरहिं जीवन मूर।
वार ना लगाई सखी लाई सो मिलाई कुंज
जेठ सुदी सातैं परदोष की घरी घरी,
घेरि घेरि छहरि हिये व्यौम आनंदघटा
छाई छिन प्यासी छिति वरस भरी भरी।
थाह ना हरष को प्रवाह जगमोहन जू
गंगा औ कलिंदी कूल तीरथ तरी तरी।

हरी हरी दूब खूब खुलत कछारन पै
डारन पै कोइल रसालन कुहू करी।
अली शुभ तीरथ तीर लसै मलमांस पवित्र नदी जुग संग,
अनंग के घाट नहाय नसैं भलै पालक केंचुरी मानो भुजंग,
मनोरथ पूरन पुन्य उदै अपनावै रमा गहि हाथ उमंग,
गिरीश के सीस पयोज चढ़ैं जगमोहन पावन तौ सब अंग।
सातैं जेठ अधिक सुदी बुधवासर परदोष
सुरसरिं औ कालिंदिका कूल फूलमय कोष
कूल फूलमय कोष पुन्यतीरथ जो आवै
ताकि रमा गहि आपु दया करिकै अपनावै
बड़े भाग जो पाव परब मज्जन करि ह्यातैं
पातक विनसै मिलै सुपद जगमोहन सातैं।

यह कविता उन्होंने बाँचकर मुझै सुनाया और प्रत्यक्षरों का मनोहर अर्थ भी बताया। मैं उनकी कौन कौन सी कथा कहूँ यदि एक दिन का समाचार एकत्र करके लिखूँ तो महाभारत से भी बड़ा ग्रंथ बन जाय। पर वे सदा वियोगे के शंकी थे। नाना प्रकार के भाव और दाव जी में करते रहे-मुझै बड़ी दयापूर्वक एक अमोल वज्र की अँगूठी केवल स्मरणार्थ दे गए थे। पर मेरा वज्र हृदय न पसीजा, एक मन आवै कि लोक लाज छोड़कर अनन्य भाव से 'श्यामसुंदर को भजै, एक मन आवै कहीं निकल जाऊँ, एक मन आवै कि जोगिन बन वन वन धूनी रमाती रहूँ-पर थोरी वैस में ए बातैं असंभव थीं-हाँ प्रेमजोगिन बन 'श्यामसुंदर के वन में मदन अनल की धूनी रमाना संभव था-इतने में वज्र गिरा। हाय रे दई! मुझै गर्भ की शंका हुई, वह शंका काल के बीतने से रोज रोज पुष्ट हुई। आज और कल्ह कुछ और था। मैं घबड़ानी, चिहुँकी-जकी सी रह गई। 'भइ गति साँप छछूँदर केरी' न किसी से कहने की और न सुनने की बात थी। कहती किस्से, कहती तो केवल 'यामसुंदर से और उनसे कहना ही पड़ा। पर वृंदा और सुलोचना दोनों जान गई थीं। त्रिजटा भी जानती थी, फैलते फैलते बात ऐसी फैली कि वज्रांग विष्णुशर्मा और मकरंद सभी जान गए। मुझै नहीं मालूम कि मेरे माता पिता भी इसे जानते थे। पर पिताजी जो घर में थे ही नहीं। उन दिनों कार्यवशात् पहले ही से पाताल को चले गए थे। उन्हैं मंत्र अच्छे अच्छे आते थे इसी से नागलोक में जाने में कभी शंकित नहीं हुए। और ब्राह्मणों की कहाँ अगति है। आकाश पाताल और मृत्युलोक तीनों में विचरते रहते हैं। मेरे पिता के परम हितैषी और

संबंधी पंडित वज्रमणि थे। मेरे पिता पाताल जाने के पूर्व ही अपना कुटुंब उनके और 'श्यामसुंदर के भरोसे छोड़ गए थे। पर सच्चा हितैषी और कृपालु केवल 'श्यामसुंदर ही था जिसने कभी वंक दृष्टि से हम लोगों को नहीं देखा। दयाछत्र की छाया सदा हमारे दी मस्तकों पर किए रहे, शत्रुओं ने जब जब क्रोधाग्नि से हमारा दीन परिवार-वन जलाना चाहा वे सदा कवच से ही सहायता का शीतल जल बरसाते रहे। संसार में ऐसा कौन पदार्थ था, जो उन्होंने मेरे माँगे और बिना माँगे नहीं दिया। कच ने भी इतनी सेवा देवयानी की न की होगी। राम और नल को भी सीता और दमयंती के विषय में इतने दु:ख न झेलने पड़े होंगे। दुष्यंत भी शकुंतला के लोप हो जाने पर इतने विकल न भए होंगे। लोप! हाय लोप-यह क्या भविष्यबानी निकली। लोप और कोप दोनों।'' इतना कह 'श्यामा रोने लगी। मैं इस विचित्र लीला को देख चकित हो गया।

मुझसे कुछ कहा नहीं गया मन चिंता के झूले में झूलने और कुछ और वृत्तांत सुनने को फूलने लगा। पर अब सुनना कैसा अब तो प्रत्यक्ष देखना रह गया था। एक तो स्वप्न में भी प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष पर भी परोक्ष, परोक्ष पर शब्द-और शब्द भी कैसा कि आप्त, सर्वथा विश्वास योग्य। रथयात्रा का मेला आया। प्राणयात्र खूब हुई हाँ-तो रथयात्रा की बात-यह जगन्नाथपुरी के मेला का अनुकरण है। 'श्यामापुर में सभी रंग तो होते हैं। 'यामा और 'यामसुंदर इसी वज्र की खोरों में खेलते खाते रहे, पर कच्चे गऊ का मांस कभी नहीं खाया। यह तो बड़ी कहानी है। कोई विश्वासपात्र और मित्र किसी राजा के पास अपने अंगरखे के भीतर दाती के निकट एक लवा को लपेट गया और युद्ध का समय आया बोला, 'महाराज जो इस जीव को होगा सो आपको होगा।'' यह कह वह अपने घर आया और उस लवे की ग्रीवा मरोर डारी। बिचारा छोटा सा पक्षी मर गया और उन लोगों ने मिलकर उस राजा का भी वही हाल कर दिया। बस, स्वप्न में सभी देखा, होनी अनहोनी सभी हस्तामलकी के समान जान पड़ी। यात्रा का सैर हुई, जगन्नाथ जी की पावन झाँकी हुई, पर मैं नास्तिक हूँ यदि नहीं भी हूँ तो लोग तो ऐसा ही समझते हैं। मैं तो शपथपूर्वक इस कोरे कागद पर लिखे देता हूँ कि आज लौं मेरे हृदय को किसी ने नहीं पाया। किसके माँ बाप और किसके पुत्र कलत्र, कोई किसी का नहीं, 'जग दरसन का मेला है' मिल लो, बोल लो, हँस लो, खेल लो। 'चार दिन की चाँदनी फेर अँधेरा पाख'-अंत को सब एक राह से निकलेंगे, राजा रंक फकीर सभी की एक सी गति होगी, जो पहले सरागी नहीं हुआ वह विरागी कैसे होगा। सच तो यही है -

नारि मुई घर संपति नासी
मूँड मुड़ाय भए संन्यासी।
संन्यासी नहीं सत्यानाशी हैं।
जपमाला छापा तिलक सरे न एको काम।
मन काँचे नाचे वृथा साचे राँचे राम।
विषय-भोगतृष्णा-विषय करो, झंडा गाड़ के रो, पर तृप्ति न होगी।
'हविषा कृष्णावर्त्मेव भूय एवाधिवर्द्धते'-

संसार तुच्छ है, असार है इसमें संदेह नहीं-मैं कहता हूँ-यह मेरा पुत्र और वह मेरी पुत्री है-तो भला यह कहो-तुम कौन हो? तुम कहाँ से आए-कहाँ रहे -कहाँ-कहाँ हो-और फिर कहाँ चल बसोगे? कुछ जानते हो कि बिना कान टटोले कौव्वे के पीछे दौड़ चले? संज्ञा तुम्हारी कहाँ चली गई। ज्ञान तो तुम्हारा अपना कर वह देखो तुम्हैं छोड़ भागा जाता है-दौड़ो-दौड़ो पकड़ो जाने न पावै। भला, यह तो हुआ। तुम्हारा बल अपने शरीर पर है या नहीं? यदि कहो नहीं-तो बस तुम हार गए। फिर तुम्हारा बल और किस पर होगा? कर्म बंधन हैं-कर्म से मुक्ति नहीं होती-यज्ञ, जप, तप, वेद, पाठ, पूजा, फूल, चंदन, चावर, पाषाण मूर्ति, देवालय, तीर्थ-इन सभों से मुक्ति नहीं-'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'-यही सर्वोपरि समझो-किसका ईश्वर और किसका फीश्वर-'ईश्वरासिद्धेः' ईश्वर मुक्त है या बद्ध? मुक्त है-तो उसे सृष्टि बनाने का प्रयोजन क्या था-नहीं जी कदाचित् बद्ध है-तो बद्ध होने में मूढ़ है-फिर सृष्टि बनाने को सर्वथा असमर्थ है-क्यों क्या कुछ और बोलोगे। आत्मा का ध्यान करो 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः' असंगोयं पुरुषः' इत्यादि देखो। शुभाशुभ कर्मो से कुछ प्रयोजन नहीं जब पुरुष प्रकृति से विलग होता है तभी मुक्ति है और पुनर्जन्म तभी बंद होगा-अब अधिक सुनोगे तो पूरे योगी ही हो जावोगे।

ज्ञान सूझ रहा है, क्यौं न हो मेरे मित्र क्यौं न हो मैं तुम्हारा दास हूँ-चलो अब कुछ तीर्थ सेवन करैं-बहुत हो गया। जाने दो-जाने दो जो चाहै सो करै करने दो, हमैं क्या पड़ी जो दूसरों के बीच में बोलैं। परमार्थ करो। हमको तो सदा गौतम जी का न्याय कंठ करना है, फक्किका फाँक के बैठ रहो वा चलो रथयात्रा का मेला देखैं, या गंगा जी चलो प्रयागराज चलैं, त्रिवेनी में बुड़की लगावैं, कुंभ का मेला देखो, कुंभज मुनि का दर्शन कर अपनी आत्मा शुद्ध करैं नहीं नहीं 'श्यामा न छूटे। 'श्यामा कहाँ गई-तो अब 'श्यामा रोने लगी-मैं बड़े घनचक्कर में पड़ा यह नहीं जानता था कि 'श्यामसुंदर भी यह कहानी निकट

ही लतामंडप मैं छिपा छिपा सुन रहा था। मैं देखने लगा यह कौन आता है? 'श्यामसुंदर? 'श्यामसुंदर ही था। दौड़कर 'श्यामा के अभिमुख हुआ। 'श्यामा ने कहा, 'श्हाय रे मनमोहन प्यारे-हाय-हाय कहाँ था प्यारे' ऐसा कह 'श्यामसुंदर की ओर दौड़ी कि उसे धाय के कंठ में लगा ले त्यौंही आँसुओं का सागर उमड़ा जिधर देखो उधर जल ही जल दिखाने लगा। पानी बढ़ने लगा। पानी 'श्यामसुंदर के कमर तक था, 'श्यामा उसी शिखर पर खड़ी थी चिल्लानी 'चलो चलो तैर आवो।

प्रेम समुद्र अथाह है पास न खेवनहार।
पास न नाव लखात गहि आस शिला लगु पार।'

समुद्र में पाला पड़ने लगा उत्तर की हवा बही क्षण में 'श्यामा की मूर्ति देखते ही देखते बिला गई। उधर 'श्यामा ने सहारा देने को हाथ फैलाया इधर 'श्यामसुंदर ने पर भावी प्रबल है। सब श्रम निष्फल हो गया। बस वही दोहा हाथ रह गया। 'श्यामसुंदर रोने लगा भूमि पर गिर पड़ा मैंने उसे उठाया प्रबोध किया आँखैं पोछीं और धीरज धराया पर सच्चे नेही कब मानते हैं।

'डरन डरैं नींद न परै हरै न काल विपाक।
छिन छनदा छाकी रहति छुटत न छिन छबिछाक'

श्यामसुंदर मुझै अपना प्राचीन मित्र जान कहने लगा। संबंध, बस, जैसे-देह और देही का-स्थूल और लिंग शरीर का हम लोगों में भेद नहीं था। इस मित्रता की कथा का स्वप्न नहीं हुआ इसी से इस स्थल पर नहीं लिखी। 'श्यामसुंदर का अनंत विलाप सुनो सुनने के लिए महाराज पृथु हो जावो ब्रह्मा से प्रार्थना कर उनसे उनका एक दिन भी उधार ले लेवो, वह बोला, 'प्रिय पहले तो वह पत्र सुनो जो मेरे प्रियतम प्रेमपात्र ने लिखा था तब आगे कुछ कहूँगा।

प्रियतम-! तुम्हारा पत्र बहुत दिनों पर आया जिसके विलंब का कारण तुमने किसी 'श्यामालता को बतलाया जो आज कल्ह तुम्हारे प्रेमतरु पर नित नव पल्लवित होगी। खैर-तुम्हारे प्रेम समुद्र की नौका तुमको आधार है-तुम्हारे आनंद के पाल उड़ैं पर ईश्वर तुमको उन निराश की चट्टानों और वियोग के तूफानों से बचावैं जिनने प्रायः प्रेम के सौदागरों की आशा भंग करके विध्वस्त किया है। तुम्हारे मनोरथ मंदिर की नवीनमूर्ति जिस्की पूजा तुमने प्रेम से की होगी-जिस्के चरणों पर सुमन समर्पित किये होगे-और जिस्के वरदानों से तुमको तृप्ति नहीं होती कृपा करके तुमको फिर-फिर कृतार्थ करै!'

तुम्हारा

प्रेम

सुनो इस पत्र के प्रत्येक अक्षरों का कैसा बल है-वाह रे प्रेम-पात्र तेरी बड़ाई क्या करूँ-तू तो मेरा परम सुहृद और आँखों का तारा है। तूने यह कैसी भविष्यवाणी भाषी। मैं तो इस विचित्र आत्मा के संयोग का उदाहरण देख चकित हो गया, आहा! इसी को सिद्धि कहते हैं। जीव एक है। देखो हजार कोस पर बैठा प्रेमपात्र हमारा भविष्य जान गया-जान ही नहीं गया वरंच लिख भी दिया। यही सच्चे प्रेम का प्रमाण है। ध्यान भी लगाना इसी का नाम है। समाधि भी इसे कहते हैं। मैं प्रेमपात्र का बड़ा भरोसा रखता हूँ। वे मेरे अद्वितीय मित्र और इस जगतीतल में मेरे मानस से एक ही हंस हैं। जैसे-चकोर अद्वितीय भाव से चंद्र को-मयूर मेघ को-कोमल रवि को और कोइल रसाल को भजते हैं उसी प्रकार मैं साक्षात् मंगल मूर्ति प्रेमपात्र को भजता हूँ -

जिमि मंदर मथि सागरहिं पायो लोकानंद
चंद्र सरिस मंगल मिल्यौ जगमोहन सुखकंद।
जिमि अशेष जग को तिमिर नासत एक मयंक
मंगल मणि शशि हिय तिमिर जगमोहन जिय अंक।
उत फणि मणि वासुकि सिरहिं अहिपुर करहिं प्रकास
इत मंगल मणि मोर हिय पुर लहि दिपत अकास।

उनकी मूर्ति मेरे हृदय पर लिखी है-बस कहाँ तक लिखूँ उनकी हमारी प्रीति निबह गई। ईश्वर सभी की ऐसी ही निबाहै। मैं तो निराश हो गया। 'श्यामा ने क्या कहा-स्वप्न तो नहीं था। प्रत्यक्ष था कि स्वप्न मुझै कुछ भी नहीं मालूम -

सुख ना लखात नहीं दुःख हू जनात हमैं,
जागत कै सोवत बतात तुम सो दई।,
बैठयौ कै चलत चित्यौर में लिख्यौ कैधों चित्र,
देह सो विदेह कैधों अगति दई दई।
मातौ कै वियौग विषघूँट घूँटयौ मीत मैंने,
मोह सब इंद्रिन विचारत कहा नई।
जीवत कै मरत विकार भरमात अहो,

श्यामा बस कौन जगमोहन दशा भई –'
इतना कह 'श्यामसुंदर ने आँसू भर लिये। मैंने कहा –
'यही तेरे आँसू गिरत धरनी जर्जर कना
कहौं बातैं कासूँ विखर मनु मोती मन धना
भयो भारी तेरो विरह जिय घेरो घहरि कै
कहै चेतौ मेरो अधर तुअ नासा थहरि कै।'
श्यामसुंदर ने कहा–'भाई मैं क्या कहूँ मुझसे कुछ कहा नहीं जाता –
विरह अगिन तन बेदना छेद होत सुधि आय।
जियते नहिं टारी टरै चाह चुरैलिन हाय। –
बस अब मेरी कहानी, विनय और विलाप सुनना होय तो विनय पढ़ो
–

कुंडलिया

दुसह विरह की आँच सों कैसे बचिहैं प्रान
बिनु संजोग रस के सिंचे 'श्यामा दरस सुजान
श्यामा दरस सुजान परस तन पाप नसावन
दरद दरल सुख करन अधर मधुपान सुपावन
श्री मंगल परसाद लजावत शरद इंदु कह
मुखमयंक तुअ बंक अलंक अरु भाल विदुंसह'
श्यामा 'यामा नाम को जीह रटत दिन रैन
श्यामा की मूरति अजो टरत न पलभर नैन
'टरत न पलभर नैन हियो निज धाम बनायो
बहुरि छुड़ायो खान पान प्रानन अपनायो
श्री मंगल परसाद तुही जग में सुखधामा
और सकल जंजाल तोहि बलि जाऊँ 'श्यामा'
पावस गइ झलकी शरद खंजन आगम कीन्ह
खजन गंजन लोचनी 'श्यामा दरस न दीन्ह
'श्यामा दरस न दीन्ह चंद वा मुख सम भायो
गए बहुत दिन बीत शरद पूनो चलि आयो
श्री मंगल परसाद जरै जियरा विरहा बस
नीर नैन ते झरत झरै झरना जिमि पावस।

लावनी

मिलैंगे प्यारी तुमसे कभी यह आस लगाए रहते हैं।
यहाँ वहाँ या और कहीं बस तलफ तलफ दु:ख सहते हैं।
किए करार अपार सार कुछ मिला न फल तुझसे प्यारी।
हार मान कर बैठे बस अब भई रैन मुझको भारी।
कही बहुत कुछ सही पीर हम हाय धीर अब ना आवै।
सिसक सिसक कै आह आह कर सजल नैन दु:ख तन तावै।
कल न पैर पल एक कलपते आह आह करते बीते।
रैन द्यौसहू चैन छिना नहिं सकल मोद मन ते रीते।
मारो वा राखो मुहि प्यारी बार बार यह कहते हैं।
यहाँ वहाँ था और कहीं बस तलफ तलफ दु:ख सहते हैं।
बहुत कहा समुझाया मुझको कही न मानी सो तूने।
याद करो बस बात पुरानी, भए नए दु:ख ए दूने।
घाट वाट की सुरति न आवति कहा कहौं तेरी बतियाँ।
रीझि खीझि कै कंठ लगी तब दरक जात सुधि कै छतियाँ।
रोय रोय हम नदी बहाई आँसुन की तहँ बहते हैं।
यहाँ वहाँ या और कहीं बस तलफ तलफ दु:ख सहते हैं।
पैंया परौं गुसैंया जाने जी में जो मेरे आती।
कहे से क्या अब लिख लिख भेजी सब कुछ हम तुमको पाती।
हाथ धरो या साथ तरक कर मैं न आह करने वाला।
है कपोतवत गरदन तेरी कभी न हूँ टरने वाला।
प्रान जाय पै प्रन न नसावै कही तेरी हम करते हैं।
यहाँ वहाँ या और कहीं बस तलफ तलफ दु:ख सहते हैं।
छोड्यौ तू मझधार हमैं कहु कौन पार करने वाला।
तेरे सिवा नहिं धीर हमारी पीर कौन हरने वाला।
जौ तेरे सनमुख मर जाते तौ न सोच जी में करते।
एक नजर भर देख भला हम मौतहु से नाही डरते।
श्यामा बिनै सुनो जगमोहन हियो प्रान तन दहते हैं।
यहाँ वहाँ या और कहीं बस तलफ तलफ दु:ख सहते हैं।

सवैया

दूर बसे बस भागन आँगन तौहू भज्यौ इक आस समीरन।
प्रीति की डोर न टूटै कबौं वरु बाढ़ै मनी सुनु द्रोपदी चीरन।
वैरि ये कैसे कटै दु:ख द्यौस दु:खी जिय होत हमैं कहुँ धीर न।
भोगत प्रान परे केहि पातक सो जगमोहन को हरै पीर न।
आएँ सुधि धीरज बिलात विललात हियो
मीन जलहीन लौ तलफ तलफावतो।
कोंचत करेजन कजाकी कमजात काम
कानन कमान तान कानन दिखावतोघ
चंदहू चकोरपिय मंद गहि बानि हाय,
चोंच ना चकोर सुधा बंदून चुवावतो।
होती इक आस ना प्रबल जगमोहन जू,
तौ तौ पौन पावक ह्वै बन मुरझावतोघ'

मैं 'श्यामसुंदर का विलाप और अकथ कहानी सुन बोला, 'भाई तुमने तो ऐसा वृत्त सुनाया जिसे मैं आजीवन नहीं भूलने का। तुम्हारे प्रेम के साखे चलैंगे, तुम्हारी प्रीति की अकथ कहानी इस लोक और परलोक तक कही और सुनी जायगी, मेरा हृदय पिघल के नवनीत हो गया, मेरे नेत्र सजल हो गए। मैं तुम्हारे दु:ख में दु:खी हो गया। जो आज्ञा हो वह करूँ। कौन उपाय तुम्हारे फिर समागम के लिये जायँ। किस उपाय से 'यामा प्यारी के दर्शन हों। किस रीति से उसकी उपलब्धि होगी, हाय रे करुणावरुणालय! तुझै हमारे प्रिय 'श्यामसुंदर की दशा पर तनिक दया नहीं आई। हा दैव! तूने क्या करके क्या कर दिया। क्या तुझे किसी का समागम नहीं भाता? तभी तो कोई ने कहा है –

'मेल उन्हैं भावै नहीं हैं सबसे प्रतिकूल।
घूणन्याय सों मेल हू करत होत हिय सूल।'

हाय रे विधना! क्या तेरे ऐसे ही गुण हैं? तुझै ऐसी ऐसी बातैं कह किसने किसने न कोसा होगा–पर तुझै लाज नहीं–सकुच नहीं–कपटी, कुटिल और दूसरों के दु:खों में सुखी होने वाला है। मुँह छिपाकर उसी सागर में क्यौं नहीं बिला जाता जहाँ से निकला था। ऐसे ऐसे कर्म और तिस्पर भी लोगों के बीच में चार चार मुख खोल कर दिखलाना। तुम सा भी निर्लज्ज कम होगा। इस लोक में तो कोई बोध न हुआ पर उस लोक में सिवा तेरे कोई नहीं है। दुष्ट! दु:शील! शील दावानल। दुश्शासन! पापी! पापात्मन! पापकर्मा! अधर्मी! निर्लज्ज! निर्दयी कपटी!

संयोग-कपाट! वियोगशाली! विपत्ति कल्पतरु! संपत्तिकाननकुठार! क्यों इतने दुर्वचन सहते हो? अपना स्वभाव क्यौं नहीं छोड़ते क्या तुम्हें यश लेना अच्छा नहीं लगता? क्या सदा कलंक प्रिय ही बनना भाता है-'।

श्यामसुंदर कपोल पर हाथ रख कराहने लगा, मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ा। ज्ञान आँसुओं के साथ बह गया, विज्ञान का प्रदीप जो हृदय में जलता था बुझकर वाष्प हो आह के साथ निकल गया। केवल आह की बतास मात्र भर गई।

'साँसन ही सो समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि
तेज गयो गुन लै अपनो पुनि भूमि गई तन की तनुता करि।
देव जिये मिलबे ही की आस सु आसहूपास अकास रह्यौ भरि।
जा दिन तै मुख फेरि हरैं हँसि हेरि हियौ जु लियौ हरिजु हरि।'
'पटी एको न जाकी कही जितनी जेहि नेह निबाह्यौ न एको घटी,
घटी लाज सबै कुल कान भटू कहिए अब कासो कहे से लटी
लटी रीति सखी मनमोहन की कवि देव कहैं व्रज में झगटी
गटी ग्वालिन की लटी बाँधे फिरै बसिए ना भटू कपटी की पटी।'

अधिक कौन कह सक्ता है। केवल मन में मसूसि रह जाना पड़ता है। मैं सोचने लगा कि देखो 'यामसुंदर नदी के इस पार खड़ा रहा-इस ईश्वर 'श्यामा कहाँ लोप हो गई। अंतर भी दोनों के बीच में कुछ ऐसा न था कि जिसके कारण 'श्यामसुंदर को 'श्यामा के निकट पहुँचना असंभव होता। पर विधाता की अनीति कही नहीं जाती। मैंने 'श्यामसुंदर से कहा, 'भाई धीरज धर-देख यह आशानदी मनोरथ के, जल से भरी तृष्णारूपी तरंगों से आकुल है, इस में राग के अनंत ग्राह कलोल करते हैं, इसके किनारे वितर्क के विहंगम उड़ रहे हैं और यह स्वयं धर्म के द्रुम को ध्वंस करती है। इसमें मोह की दुस्तर भौंरी पड़ती है और यह चिंता की अति गहन और ऊँची तटी के बीच से बह रही है। इसके पार जाना काम रखता है-'' इसको सुन 'श्यामसुंदर उठ खड़ा हुआ। आगे देखा तो वही नदी बहती दिखी जिसने मनमोहिनी प्रानधन 'श्यामा को तरंग हाथों के बीच छिपा लिया था और इससे वियोग कराया था। उस नदी के बीच में वही शिखर मात्र दिखाता था, जिस पर 'श्यामा का सिंहासन धरा था। 'श्यामसुंदर मुझसे बिना पूछे और उत्तर दिए कूद पड़ा, सैकड़ों गोते खाए। मेरा करेजा उछलने लगा।

मैं उसे थाम्ह कर गया। एक तो 'श्यामा गई दूसरे 'श्यामसुंदर भी उसी के पीछे चला-मैंने सोचा कि जीना मेरा भी व्यर्थ है-यही जान विमान को छोड़ कूदा-आँखैं बंद हो गई कानों में पानी समा गया। अब तो नदी में मग्न हो गए-क्या

जाने कहाँ गए–कुछ सुधि न रही–विवश थे–सुधि वुधि भूल गई–पाताल गए कि आकाश–बस, आँख मूँद के रह गए।

श्यामसुंदर की दूर से धुनि सुन पड़ी और वह यही कहता गया –
प्यारी जीवन मूरि हमारी। दीन मोहि तजि कहाँ सिधारी।
तुअ बिनु लगत जगत मुहि फीको। गेह देह सर्वस नहिं नीको
कह तो वह गुलाब सो आनन। तेरे बिना गेइ भी कानन।
हाय–हाय लोचन की तारा। हा मम जीवन जीवनधारा।
हाय–हाय रति रंग नसेनी। हा मृगनैनी नागिनीवेनी।
हा मम जीवन प्रान अधारा। हा मम हृदय कमल मधुवारा।
हा मम मानस मान सरोवर। पंकज विहँग शरीर तरोवर।
हा मम दृग चकोर शशि चांदनि। हा विधुवदनि सुकोइल नांदनि।

दोहा

हा मम लोचन चंद्रिका, हा मम नैन चकोर।
हा मम जीवन प्रानधन, कहा गई मुख मोर।
बाँह गहे की लाज तो, करियो तनिक विचारि।
तिन सी तोरी प्रीति क्यौं, काहे दियो बिसारि।
'तलफत प्रान तुम सामरे सुजान बिना
कानन को बंसी फेर आयकै सुनाय जाहु,
चाहत चलन जीय तासो हौं कहत पीय
दया करि कैहूँ फेरि मुख दिखराय जाहु,
रहि नहिं जाय हाय हिय हरिचंद्र हौस
विनवत तासौ ब्रज और नेकु आप जाहु,
कसक मिटाय निज नेहहिं निभाय हा हा
एक बेर प्यारे आय कंठ लपिटाय जाहु।
इति तीसरे याम का स्वप्न।
अथ चौथे याम का स्वप्न
'थाकी गति अंगन की मति पर गई मंद
सूख झाँझरी सी है कै देह लागी पियरान,
बावरी सी बुद्धि भई हँसी काहू छीन लई

सुख के समाज जित तित लागे दूर जान,
हरीचंद् रावरे विरह जग दु:खमयो
भयो कछू और होनहार लागे दिखरान,
नैन कुम्हिलान लागे बैनहु अथान लागे
आओ प्राननाथ अब प्रान लागे मुरझान।'

चौथा प्रहर रात्रि का लगा, यह धर्म का पहरा था। स्वप्न की डोर अभी तक नहीं टूटी तौ भी क्या का क्या हो गया। अब भोर होने लगा। तमचोर बोल उठा, मोर भी रोर करने लगा। मंद मंद वायु चलता था मैं तो घोर निद्रा में मग्न था। भैरवी रागिनी सज के आ गई। गैवैयों की छेड़-छाड़ मची। धर्म की बेल फिर भी लहलहानी। चकई की कहानी पूरी भई। प्यारे चकवा से पंख फटकार और परो को चोंच से निरुवार चली मिलने। संयोगियों को काल सी प्राची दिशा दिखानी लगी।

वा चकई को भयो चित चीतो चीतोति चहू दिसि चाव सों नाची,
ह्वै गई छीन कलाधर की कला जामिनि जोति मनों जम जाँची,
बोलत बैरी बिहंगम देव संजोगिन की भई संपति काची,
लोहू पियो जो वियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिन प्राची,

खंडिता भी अपने अपने चिर बिछुरे प्रियतमों से मिल प्रसन्न हुई, लगीं लाल लाल आँखैं दिखा दिखा झिड़कने और छिपे प्रेम से उरहने देने और बात कहने।

यथा सवैया

द्वारिका छाप लगै भुजमूल कह्यौ फल वेद पुरानन तौन है,
कागद ऊपर छाप सुनी जिहि कौ सिगरे जग जाहिर गौन है,
आप लगाई जो कुंकुम की सो सुहाई लगै छबि सों उर भौन है
छाती की छाव कौ प्यारे पिया कहियै बलि याकौ महातम कौन है।

कोई उत्कंठित होकर यह कहने लगी -

'छपाकर जोति मलीन महा दुति छीन त्यौं तारन की दरसात,
न आए गुपाल कहाँ धौ रहे यह कासो कहों हियरा हहरात,
कहै ललिते तिमि लाज और काम पुरी दुऔ बीच बनै न बतात
कछू तिय बैन जुबान पै आप भलैं नट कैसे बटा फिर जात।'

और कोई तो।

देखि ढुरी पिय की पगिया अलसानि भरीं अखियाँ जब जोई,
त्यौं ललिते पग के डग डोलत बोलत औरई भाँति बनोई
कैसी बनी छबि आज की या मन भाई करो बरजै नहिं कोई
खोइए सोय सबै श्रम यौं कहि रूसि कै बल मसूसि कै रोई।'

जैसे सुर लोगों ने सागर को मथि चंद्रमा रत्न निकाला था वैसे ही भोर ही अहीर लोग दधि को मथानी से मथि नवनीत के गोले को निकालने लगे।

रात भर दंपतियों का नव निधुवन प्रसंग देखते देखते अनिमिष नैनों से जब दीपक थक गया जब अपने नैनों की जोत मिल मिलाने लगा।

चिरैयाँ अपने बसेरे से उठ लगी च्यों च्यों करने स्वप्नावस्था में ही 'श्यामा का पता न लगा। 'श्यामसुंदर वही कवित्त कहता कहता वहाँ चला जाता था बिचारे को थाह न लगी। न जाने कब तक और कहाँ तक बहैगा। मैं भी तो विमान सिमान सब छोड़ उसी के खोज में तत्पर था। उसके राग की तान नदी की तरंगों पर लहरा कर वायु से ठक्कर खाती और उसकी प्रत्येक आह की आह ब्रह्मांड से समा कर समस्त लोक में व्याप्त हो स्वयं ब्रह्मा के सिंहासन को भी हिला देती थी। ऐसे अवसर पर 'श्यामा न जाने किस पर्वत के कंदराओं में जा बची थी कुछ ज्ञात नहीं। उसको 'श्यामसुंदर का हाल कहने वाला कोई न था। ऊधो का पता न था सेवक लोग सब सेवकाई में लगे थे, और किसकी गणना थी। भावी प्रबल होती है पर मैंने पीछा न छोड़ा। 'श्यामा का खोज लगाने के लिए आगे बढ़ा। जल के अनेक प्रकार के जंतुओं के फंदे में गिरता पड़ता चला। थाह न लगी एक भी नौका न थी–तीर लगना कठिन था। अभी तो अनेक भ्रम, आवर्त, नाद, ह्रद, शिला और चट्टानों से ठोकर खानी थी। तीर तो देख भी नहीं पड़ता था। पार करना केवल ईश्वर के हाथ रह गया। मुझे सिवाय बहने के और कुछ नहीं सूझता था–बस फिर क्या पूछिए बह चला। बह गया बह गया। पता नहीं–ठीक नहीं, तरंगों ने अपने हाथों में उपगूहन कर लिया। मैं तो चाहता था कि या तो पार लगै या बही जाऊँ। एक बार जोर मारा–दस बीस हाथ बहकर उस शिखर की ओर मुड़ा फिर बीस हाथ तैरा–तीस हाथ गया–चालीस हाथ जाकर पचास हाथ पर शिखर हाथ लगा। साँस लेने का स्थान तो मिला। शिखर पर चढ़ते ही छींक हुई पर इसकी क्या चिंता सन्मुख की छींक लाभदायक होती हैं। इस शिखर पर अशोक के वृक्ष तरे सिंहासन मात्रा था। मैंने इसे भली भाँति देखा भाला, यहाँ वही 'श्यामा का सिंहासन था। पर दैवयोग से 'श्यामा न थी। अभी तक न तो 'श्यामा और न 'श्यामसुंदर कापता था। नदी के बीचो बीच का

शिखर–पहले थल था पर अब जल हो जाने के हेतु कोई जंतु भी नहीं है। भयंकर बन साँय साँय बोलता था। केवल झिल्ली की झनकार सुना पड़ती थी। मैं इसी अशोक के नीचे बैठ गया और सोचने लगा कि हाय रे ईश्वर! तू मुझ हतभागे को किस विजन वन में लाया। अब क्या करूँगा–कहाँ जाऊँगा। भगवान्! तू भी बड़ा विचित्र है, मेरी दशा इस समय तो ऐसी ही गई थी 'श्जैसे काक जहाज को सूझत और न ठौर' यह सब मुझै अपने मित्र 'श्यामसुंदर के काज सहना पड़ा–पर 'श्यामसुंदर अद्यापि कहीं दिखाई नहीं दिया। मैं इधर–उधर बहुत दूर तक दृष्टि फेक देखने लगा पर कुछ भी पता न लगा। मैं अब मौन होकर आसन जमा के बैठ गया। अशोक से शोक मिटाने की प्रार्थना की, वह जड़ कब बोलने का था? 'जब तक स्वासा तब तक शाखा'–यह कहावत प्रसिद्ध है। प्राणयात्र की कुछ आशा न थी–प्राण बचना दुर्लभ जान पड़ा। थका माँदा अपने करम को ठोक बैठा।

रात ही को मुझै भगवान् दिवाकर ने दर्शन दिये। यह भी आश्चर्य की बात है –सूयीदय से मुझै कुछ भी हर्ष न हुआ–क्यौंकि फिर तो संध्या की चिंता आई–जब संध्या होगी तब रात्रि तो अवश्य ही होगी। यह बड़ी गाढ़ी चिंता उपस्थित हुई, क्योंकि इस निर्जन शिखर पर ही बिना अन्न पानी बितानी पड़ैंगी। आश्चर्य नहीं कोई वन का हिंसक जंतु आ टूटे–तो बस कथा समाप्त हो जाय। जो होना था सो तो होईगा अब बहुत सोच विचार से क्या हाथ आना है–चलो–'जब ओखली में सिर दिया तो मूसरों की क्या गिनती रही'–यही निदान सोच शिव सी अखंड समाधि लगाय आसन मार बैठ रहे। ज्यौंही समाधि लगाई अनेक कौतुक देख पडे। शरत्काल प्रगट हुआ। आकाश निर्मल शंख सा दिखाने लगा। सारस हंस चकोर सब के सब पूनो को शोभा निरखने लगे। जल विमल हो गया। नदियाँ स्वच्छ धारा से बहने लगीं। चंद्र का प्रतिबिंब जल के अंतर्गत छबि करने लगा। दुष्ट काले मेघ चंद्रमा के प्रकाश को देख बिला गए–ईश्वर वैरियों का इसी भाँति पराभव करै। हंसों का रोर सुनते ही मोर भागे और अपने पक्ष गिराने लगे, क्यौंकि अब उनका पक्षकार कोई भी न रहा।

फूले कास सकल महि छाई। जनु वरषाकृत प्रकट बुढ़ाई।
उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखै संतोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।
रस रस सूखि सरिस सर पानी। ममता त्यागि करहिं जिमि ज्ञानी।
जानि शरद रितु खंजन आए। पाय समय जिमि सुकृत सुहाए।

पंक न रेणु सोइ अस धरनी। नीति निपुण नृप कै जस करनी।
जल संकोच विकल मए मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना।
बिनु धन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा।
कहुँ कहुँ वृष्टि शारदी थोरी। कोई इक पाव भक्ति जिमि मोरी।
चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भक्ति पाइ जन तजहिं आश्रमी चारि।
सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि शरण न एको बाधा।
फूले कमल सोइ सर कैसे। निरगुन ब्रह्म सगुन भए जैसे।
गुंजत मधुकर निकर अनूपा। सुंदर खग रप नाना रूपा।
चक्रवाक मन दु:ख निशि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपत्ति देखी।
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही।
शरदातप निशि निशि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई।
देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहि जिमि हरिजन हरि पाई।
मसक दंस बीते हिम त्रसा। जिमि द्विज द्रोह किए कुलनासा।'

ऐसी शरत् ऋतु आई इसकी शोभा निहार रहा था कि शिखर पर और भी कौतुक देख पड़े। क्या देखता हूँ कि एक बड़ी भारी विचित्र सभा लगी है। ऐसी सभा मैंने कभी नहीं देखी थी। भगवान् रामचंद्र, सीता और लक्ष्मण के सहित एक चंद्रकांत के सिंहासन पर जो शिखर के ऊपर धरा था विराजमान हैं। उनके सामने हनुमान जी हाथ जोड़े खड़े हैं, गरुड़ भी सेवा में तत्पर अड़े हैं।

बाईं ओर एक बजूबली भोग लगाने वाला पार्श्वद ब्राह्मण खड़ा है। महावीर की पूछ पकड़े एक बड़ी सुपेत डाढ़ी वाले वृद्ध महामुनि थे। इनके पीछे हाथ जोड़े बड़े गुरियों की माला लिए दोगा पहरे लाल बनात का कनटोप दिए-त्रिपुंड्र के ऊपर रामफटाका फटकाए उपनहे पावन-एक आँख से हँसता और दूसरी से रोता-लंबा साठिया-बूढ़ा-गाढ़ा और मुनिजी के सुख में सुखी और उनके दु:ख में बना उन्हीं के पीछे खड़ा था। इसके ललार की खाल सिकुड़ गई थी। दाँत और ओंठ दोनों बदरंग पड़ गए थे। आश्चर्य नहीं कि तांबूल और चूर्ण दोनों अपना काम दसनों पर आरंभ कर चुके थे। मुख विवर ऐसा जनाता था मानो किसी पर्वत की गुफा हो। दाँत की पाँति ऐसी थी मानो कंदरा के मुख पर चट्टाने लगी हो-बुढ़ापा झलक आया था आधे से अधिक यौवन का कुठार बन चुका था। इसके बगल में एक भैरववाहन पाहन से भी दुष्ट लुलखरी करता बैठा था। भैरववाहन का रंग गोहुआँ माथे पर रामानंदी तिलक-बाहु और हृदय पर राम नाम

छापे-पूछ हिलाते, उदर और दिखाते-कभी कभी भोंकता हुआ देख पड़ा। आगे के दाँतों में गीता की पोथी दबाए पर भीतर हड्डी चबाते बैठा था। इसके दहिनी ओर इसका प्राणोपम मित्र और अनुचर साक्षात् वाराह भगवान् अपने दंष्ट्रकराल पर लवेद की पुस्तक धरे मानो अभी महासागर से उसे उद्धार कर लाया हो बैठा था। इसके गलमुच्छे और कान तक लंबे बाल शोभा देते थे। माथे पर रोरी था चंदन की रेख इसके मत को पुष्ट करती चमकती थी। इसी के पार्श्व में महाशय शीतलावाहन भी डटे थे। ए वाराह भगवान् के भाई थे इनको शीतलाअष्टक गप्पाष्टक से भी बढ़ के कंठ था और यद्यपि ए अपने खर शब्दों के हेतु कल कंठ न थे तथापि भगवती दुर्गा को लपेट सपेट के दो तीन घंटों में सायंकाल को दुर्गा पाठ करके संतुष्ट ही कर लेते थे। इन दोनों के मध्य में एक जंबुक अपने पैरों से भूमि खोदता-इधर उधर देखता-सभों के कानों में फुसफसाता-धान की रोटी दाँतों में दबाए रामायन बाँचते बैठा था, इसके पीठ पर एक महाधर्मी निष्कपट बक 'प्राणिनाम्बधशंकया'-एक चरण उठाए भटकता था, यह वही जुंबुक था, जिसने कर्पूरतिलक को राज का लालच दे बड़े भारी पंक में फँसाकर उसी का मांस नोच खा लिया पर दुनिया वेष को पूजती है। अंत में सभी अपने किए को पाते हैं। एक ओर सुषेण

वैद्य-चित्रगुप्त-काकभुसुंडि-धृतराष्ट्र-शिवशंकर-बिलाईमाता-तालूफोड़-खिलात के खाँ-तुंबुरगंधर्व-और स्वयंप्रभा बैठी थी।

मेरी आँख झट इस मनोहर और विचित्र झाँकी की ओर फिर गई। मैं खड़ा हो गया। बड़ी देर तक विचारता रहा। मन में आया कि निकट बढ़ के देखैं, आगे पाँव बढ़ाया, बस चल दिया। भगवान् रामचंद्र के सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हो गया और मन ही मन नमस्कार दंड-प्रणाम कर वंदना की। चाहा कि कुछ कहैं पर इससे भी एक विचित्र दृश्य ने मेरा मन अपनी ओर आकर्षण कर लिया। क्षणभर में आँख उठाते ही इसी सभा को एक विस्तृत मंदिर में बैठे देखा। यह मंदिर माया के बल से विश्वकर्मा ने बात की बात से बना दिया था। वही सभा बाहर लगी देखी-अर्थात् मंदिर के जगमोहन में। कान बंद करके सुना तो ढोल और सहनाई के शब्द सुने। आँख बंद करते ही यही विकराल वदना चंडी पूर्वोक्त साज से मंदिर के भीतर से निकल पड़ी। मैं एक बार चिहुँक पड़ा, पर इसे भली भाँति चीन्हता था। (इसका वर्णन प्रथम जाम के स्वप्न में हो चुका है) मैंने प्रणाम किया, चंडी हँसी। उसके दुर्दर्श उज्ज्वल दशनों से मंदिर का अंधकार फट गया। यह उसी रूप में निकली जिस रूप

में मैंने इसे पहले देखा था-अर्थात् दो बालिकाओं को काँख में दबाए-इत्यादि रूप में फिर भी दर्शन दिये। सिंह पर सवार हाथ में मद्यभाजन और नरकपाल लिए पहुँची। मैं इन्हें देख प्रार्थना करने लगा। मैं तो 'श्यामसुंदर के खोज में चला था और वह बिचारा श्यामा के। मैंने सोचा इससे कुछ अपना काम निकलैगा-क्यौंकि पहले इसी ने हमैं मंत्र बताया और झोली दी थी। मुझै गन अगन का कुछ ज्ञान न रहा। जी जलता था, मित्र का दु:ख असह्य था। चित्त की उमंग में कह डारा अब चाहै फलो वा मत फलो। मित्र की सहायता क्यौं न करता? जब जिसकी बाँह पकड़ी तब फिर उसके निमित्त क्या न करना-देखो रामचंद्र ने सुग्रीव के हेतु बाली को मार ही डाला।

सोरठा

ध्यान तोर निसि द्यौस चरन जलज सेवत सदा।
जिमि वासो मिलि हौस बीतै रैन सुचैन सो।10
याहि वांचि रिपुनास होहु जाहिं सुमिरौं जियहिं
पुरवहु सब मम आस दुर्गा दुर्गति नाशिनी।11
द्वादश बंध सुछंद अधिक जेठ सुदि नैन तिथि।
वासर रोहिनि मंद विरचि विनय बल बाँचिए।12

भगवती कपालिनी प्रसन्न हुई, बोली-'मैं तुम्हारी वंदना से प्रसन्न भई, वर माँग-'।

मैं कहा-'यदि तू सचमुच प्रसन्न है तो मेरी वंदना की विनय पूरी कर -श्यामसुंदर का पता बता दे और अंत में 'श्यामसुंदर को 'यामा से मिला दे बस यह माँगता हूँ। देख मैं भी उन्हीं को खोजता खोजता इस विजन वन में आया हूँ।'' इसको सुन चंडी ने अपनी झोली से जादू की काली छड़ी निकाली, निकालकर अपने सिर के चारों ओर घुमाया-फिर सामने लाकर फूँक दिया। फूँक कर ज्यौंही उसने भगवान् चिंतामणि के ओर वह छड़ी दिखाई राम, लक्ष्मण और सीता सब शिलामयी मूर्ति मात्र हो गए-दूसरे बार जो उसने फूँक कर वही छड़ी दहिनी और बायीं ओर घुमाई तो सभा की सभा सब पाषाण की हो गई। जितने पशु पक्षी जीवधारी थे, सबके सब केवल पाषाण के आकार मात्र रह गए। चंडिका कहने लगी, 'तुमने अभी इसका संपूर्ण ब्यौरा नहीं सुना और न देखा-क्यौं व्यर्थ भ्रम में पड़े हो-'।

मैंने कहा-'देवि! यदि कुछ न कहती तो अज्ञान ही रहना भला होता पर अब इतने कहने पर अधिक शंका हो गई तो दया करके कही डारो और मेरे मनोरथ पूरे करो।'

चंडी बोली-'वत्स! देखो मैं तुमको अपना प्रभाव दिखाती हूँ। देखो,।' इतना कह उस वृद्धा ने कुछ पढ़कर पूरब ओर उरदा फेके। फेकते ही मंदिर का द्वार बंद हो गया। सभा मात्र पाषाण की जगमोहन में बैठी रही, ठाकुर की झाँकी लोप हो गई-पर उसी द्वार के पास ही एक सुरूपवान् पुरुष-गौरांग-लाल किनारे की धोती पहने-दुपाहिया अद्धी की टोपी लगाए-सुकेशधारी-अलफी पहने लँगड़ाता हुवा चिल्लाने लगा मुझै आश्चर्य लगा कि यह क्या हुवा। सुषेण वैद्य जो जादू से प्रस्तर हो गया था उसकी चिल्लाहट सुन उछल पड़ा, ऐसी फलांग मारी जैसी ऊँट। कूद ही तो पड़ा हात में एक छुरा लिए-'जाने न पावै-जाने न पावै' यह कहता उस उक्त पुरुष की जाँघ ही काटने को उद्यत हुआ। उधर से वज्रांग और चित्रगुप्त भी पहुँचे-उसी सुरूपवान् को सबल जकड़ लिया और वैद्य जी ने छुरा जाँघ पर रेतना आरंभ किया, वह कितना चिल्लाया तड़का और फड़फड़ाया पर सुषेण जी कब मानते हैं अब तो यह पुरुष खंज होकर निःसंज्ञ वहीं पड़ गया। चंडिका ने अपने हाथ बढ़ाए और वज्रांग, सुषेण, चित्रगुप्त और उस दुःखी पुरुष को अपने पेट में धर लिया, मैं दाँत तरे उँगली दबा के रह गया-स्तब्ध हो गया-यह तो साक्षात् नरबिल था। मैंने पहले कभी नहीं देखा था, भोजनानंतर ज्यौंही चंडी ने ऊपर दृष्टि की एक अंडा मंदिर के छत से गिरा, गिरते ही फूट गया। उस अंडे में से दो गौर बदन वाले पुरुष जिनके नाम फणीश और लुप्तलोचन थे त्यूरी चढ़ाए पहुँच गए-इन दोनों का आकर बंदर सा था, पर पूछहीन रहने के हेतु मनुष्य जान पड़े। वे दोनों अपना-अपना नाम लेते आए। किस देश के थे कौन कह सक्ता था। पर इन दोनों ने 'श्यामसुंदर को जकड़ कर बाँधा था, विचारा हिल चल नहीं सकता था। मैं सजीव हुआ, आसरा हुआ कि मित्र के दर्शन तो हुए अब न जाने दूँगा। पर मुझे क्या ज्ञान था कि वह बिचारा किस यमयातना में पड़ा है, तौ भी साहस कर-'भाई-भाई' कह कर दौड़ा कि कंठ से तो एक बार मिल लो, पर ज्यौंही निकट गया उन दोनों विकट पुरुषों ने रोष (रुष्ट हो ऐसी हुँकारी मारी कि) मैं रुक गया। ज्यौंही मेरे नेत्र मुँदे वे लोग लोप हो गए-'श्यामसुंदर को एक बार और खो दिया-बस-कर्मगति बड़ी कुटिल होती है-और तिस पर मेरी मेरी तो सदा की खोटी थी-मैं 'श्यामसुंदर की दुर्दशा सोचने लगा। चंडी भवानी ने बड़ी दया करके कहा-'इतने ही में तेरी मति चकरा गई-अभी तो देख क्या

देखता है–लै–आज तू दिन भरे का भूखा होगा–दूसरे विरहकातर–ले थोड़ी सी सुरा पी ले–बल होगा, इंद्रियों को सहारा मिलैगा और मेरे कौतुक देखने में सामर्थ्य होगी। तू वैष्णव है तो मैं भी तो वैष्णवी हूँ–मेरा रूप देख।

तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुड़ोपरि संस्थिता।
शङ्खचक्रगदाशार्गखंगहस्ताभ्युपाययौ।

मैंने कहा–'श्देवि तेरी अनंत माया है–तेरा रूप कौन देख सकता है–मैं तेरा आज्ञाकारी हूँ–जो कृपा कर देगी अवश्य ग्रहण करूँगा।'

इतना सुन देवी ने अपना सोने का कंकन मेरे सामने फेंक दिया। ज्यौंही उस कंकन को उठाया वह सुंदर मनोहर चषक हो गया। इस माया को भी देख मैं चकित हुआ। देवी ने कहा, 'बाएँ हाथ में चषक को धर दक्षिण हाथ से उसे ढाको।'' मैंने वैसा ही किया और यह सुंदर सुगंधित चंपक पुष्प के रंग सी मद्य कल्पवृक्ष की निकली उस चषक में भर गई–'मधुवाता ऋतायते'–यही मंत्र देवी पढ़ती रही–मैं 'श्यामसुंदर और उसकी प्रानप्यारी 'यामा को अपूर्ण कर चढ़ा गया। पीते के साथ ही मुझै अपूर्व हर्ष हुआ। मन और बदन प्रफुल्लित हो गए। नेत्र चमकने लगे। स्वाद उसका खटमधुर था। हृदयाब्जकोश को आसव से स्नान कराया। शरीर कुछ और हो गया–गई बुद्धि फिर हाथ आ गई–वेद वेदांग सब आँखों के सामने नाचने लगे। 'श्यामापुर की शोभा दिखाने लगी–'श्यामा की खोरों में अब केवल 'श्यामा के नाम की झांई सुनाने लगी। एक बेर दृष्टि उठा कर देखा तो 'श्यामापुर में आग लग गई–पहले तो काबुल में लगी। उसके अनंतर ब्राह्मणों के घर जले। मेरा घर तो पहले ही जल चुका था–अपने वंश में आँख उगरिया मैं ही बचा था। पुरुष लो सब भस्मसात् हो गए थे। बंदर कूदने लगे–सब के सब मुंछदर लाल मुखी थे। बंदरियों को संग में लिए बगल में दबाए इस घर से उस घर कूदते फाँदते फिरते थे। एक तो लोगों के घर आप ही आग लगी थी, दूसरे ये सभों की चूल्हा चक्की ले चले। सब हाय–हाय करते रह गए। कौन सुनता है–बंदर की जात कब मानती है। शाखामृग तो ठहरे–पेट भरने से काम–चाहै कोई बसै चाहै उजरै–ए बंदर सब कृष्णचंद्र के भक्त थे–इसी से तो मथुरा में अभी तक असंख्य बंदर घूमते रहते हैं–अपने ईश्वर की पुरी को नहीं छोड़ते–इन सभों में बड़ी चतुर सुग्रीव की स्त्री रुमा भी दिखानी–वह आग लगने पर प्रसन्न सी जान पड़ी क्यौंकि उसने अपनी सेना की इस दैवी उपद्रव के ऊपर उपद्रव करने से नहीं रोका। फणीस और लुप्तलोचन सेनापति थे–बालि के मरने पर सुग्रीव ने पुराने सेनापतियों को निकाल इन्हीं श्रेष्ठों को उस उच्च पद का

अधिकारी किया था–सुग्रीव को कार्यभार से नेत्रों से कम सूझने लगा–विभीषण के पास जलवायु सेवन के लिए लंका चले गए थे–हाँ, आग लगी–तो लगने दो–बुझावो –लोग बुझाने लगे–आग न बुझी–नारदजी अपना बीना ही बजाते रहे–उधर मकरंद गोमती चक्र पूजते पूजते लील गया। वशिष्ठ शांतिकारक वैदिक मंत्र पढ़ते रहे–अग्नि देवता न प्रसन्न हुई तो–कोई क्या करै–पुरवासी विकल इधर उधर पानी पानी पुकारते दिखाई पड़ते हैं–भैरववाहन पर कपटनाग के शिष्य बैठे और शीतलावाहन पर स्वयं शीतला जी सवार होकर ग्राम की रक्षा करने लगीं–नाकों नाकों पर पहरे बैठ गए–किसकी सामर्थ जो निकलै। मनुष्यों का ठट्ठ इकट्ठा हो गया, अग्नि की ज्वाला प्रज्वलित हुई–बढ़ के आकाश की राह ली–लड़केवाले चिल्लाने लगे –

तात मात का करिय पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उबारा।
खोजत पंथ मिलै नहीं धूरी। भए भरम सब रहिन अधूरी।

वशिष्ट के घर से वह देखो एक छछुंदर निकली पड़ी। पर बोध न हुआ कि किधर गई–सब पहरे चौकी लगे ही रहे–यह छछुंदर बड़ी पुंश्चली थी–चक्रधर का चक्र फिरा धर्म का पहरा आया। रमा ने जोवन दान किये–वज्रमणि का आत्मज सुरलोक को सिधारा। अब फाल्गुन ऋषि का बुलौवा हुआ है, वे भी परम धाम सिधारे, आज्ञा कैसे टारते। म्याद थोड़ी है। शाक्य मुनि को गद्दी होगी–बौधमत फैलेगा। पुरवाई चली। फणीस की बहिन लटोरे डोरिया ने ब्याही, लुप्तलोचन की स्त्री ने द्वितीय विवाह किया। पर देखते हैं तो आगी नहीं बुझी–मैंने सोचा कि अब बिना मेरे दया के कुछ शांति नहीं होगी–व्यर्थ लोग जले जाते हैं उठकर हाथ में नदी और समुद्र का जल ले मंत्र पढ़ने लगा –

'ऊँ ठं ठं ठं बाराह के दाँत की तेलिन–वशिष्ठ की बेटी, नारद की भतीजी –तीजी–भीजी–भांजी–कड़ी–कठोर–बिनालोम–संकीर्ण–रोती धोती–कनफटा देव का प्रताप–भैरव की सराप–गंगा की लहर–लक्ष्मी का पहर–भागीरथी की नहर–बुझ–बुझ–सुझ–फुः फाः फीः बाबा की चेली–बाई की अधेली–फुलाने की बहू आराम आराम ऊँ फट् स्वाहा। फुरोमंत्र ईश्वरो वाचा–दुहाई देवी बड़े दाँत वाली की बुझजा–बुझजा–नहीं तो गाड़ दैंगे।' –

पानी फेंक दिया–आग बुझ गई–कौव्वे उड़ने लगे–तुम्हारी भी पारी आती है–नशा खूब चढ़ा खूब जोर किया।

वह देखो अटारी पर मोर ने बाँग दी। मुरगा पी पी करने लगा–मैना काँव काँव करने लगी। विष्णु की स्त्री चमगिदड़ी हो गई–मालती चाँदनी सी छिटक

गई जो चाहे सो आवागमन करैं। फीस दो टके रात। कच्चे गऊ का मांस लटकने लगा –इसी के बंदनवारे बँध गए–'श्यामापुर यवनपुर हो गया–पर अंग्रेजी राज में यह अनर्थ कैसा–ईशान कोन पर सूर्योदय हुआ दक्षिण से चंद्रमा का रथ चला–लगे तारे टूटने हाथी बोल उठे–कछुए की पीठ गरम हो गई–शुक्र और मंगल भी टूटे –गाज गिरी–अर्राटा बीता आकाश फट पड़ा–सब कलई खुल गई–बादल छा गए –ऐसे काले जैसे अफीम–बीच में चंद्रमा निकल आए–क्या विचित्र लीला थी! नदी में एक भारी मछली तैरती थी–तैरते तैरते तट पर आई। ज्यौंही बूँद लेने को मुँह खोला एक बाला जो घाट पर नहा रही थी फिसल पड़ी और उसका पाँव उसके मुख में समा गया। मछली उसे लील गई, मुँह बंद हो गया–फिर नदी में बुड़की लगा गई। संध्या हुई घर के लोग बाग टोला परोस में पूछ पाछ करने लगे। पता कहीं नहीं लगा, लगै कैसे उसे तो एक मच्छ महाराज भच्छ गए थे–कच्छ राज अपने परों पैरों की छाया करते थे–जिस्में कोई वंशी डालके कहीं मच्छ समेत न बझा ले। मैंने देखा कि मच्छ बड़ी दहार में उसे ले गया। न जाने वहाँ क्या करेगा। मैंने जाना कि कहीं काली दह में शेषनाग न कच्चा चबा जाए–फिर मच्छ कच्छ कुछ भी न कर सकैंगे–गरुड़ महाराज को हुक्म दिया कि तुम जाव उसका पता लगावो–देखना कालीनाग न खा जाय–वह तो केवल गरुड़ से डरते थे–गरुड़ उन्हैं भी सर्व स्वाहा कर डालते–उनके सन्मुख वे भी चें पों नहीं कर सकते। पूछ दबा के छू हो जाते हैं। गरुड़ जी उड़े। मच्छ का पीछा किया पर कच्छ तो अब थल में रेंगता था–और बाला भी बिचारी अधमरी सी उसी के पीछे घिसलती जाती थी। दुष्ट ने तनिक भी दया न देखी। दइमारा पाव पियादे ले गया। इधर उधर सहाय के लिए देखती जाती थी–जैसे कसाई के हाथ की गिरवाँ से गसी गैय्या कातर नैनों से पीछे देखती जाती हो। बहुत दूर तक ऐसे ही ले गए किसी ने जाना भी नहीं–चूँ भी किसी ने न किया–चलते चलते आँखैं मिल मिलाने लगीं–मच्छ तो अपने काम में तत्पर था। झट एक की डोली में घुस गया–नील सागर के पार जाकर एक नवीन नगर देखा–वहाँ पहुँच कर तीर में डोली धरी गई। मच्छ कूद पड़ा और बाला को उगल दिया। फिर तो गुफा में सब लोग समा गए। मच्छ लोप हो गया–लीला समाप्त हो गई–दूर से गाना सुन पड़ा–कोई न कोई तो गा ही रहा होगा –

'काले परे कोस चलि चलि थक गए पाँय
सुख के कसाले परे ताले पर नसके।
रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे

मदन के पाले परे प्रान पर बस के।
हरीचंद अंगहु हवाले परे रोगन के
सोगन के भाले परे तन बल खसके।
पगन में छाले परे नांधिबे को नाले परे
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के।'' -

मेरा ध्यान उचट गया। मैंने आकाश की ओर देखा, चारों ओर देखा पर कोई भी न दिखा। सिर में पीड़ा हो आई, बदन सनसनाने लगा। आँखैं सिकुड़ गईं। बुद्धि आनंद सागर में मग्न हो गई। जिस वस्तु का ध्यान करता अनंत कल्पना की तरंगें उठतीं। 'यामा की मूरति दीप की टेम में दिखाने लगी। नसैं सिकुड़ने लगीं। शरीर स्थिर और साहसी हो गया। देवी के लिए चषक ने क्या तमाशे दिखाए। 'यामा का नाम जपने लगा। मैंने उसे बैठे देखा-नहाते देखा-गृह कृत्य करते देखा-सोये देखा-पर 'श्यामसुंदर का दर्शन न हुआ। मन तो वहीं था-जहाँ जीव तहाँ तन, जहाँ जन तहाँ प्राण। दृष्टि विभ्रम होने लगा। लेवनी लहराती थी। स्थिर है तो स्थिर, चली तो चली फिर क्या पूछना है, घुड़दौड़ होने लगी, तीर्थ का ऐसा पुण्य प्रताप होता है। भृकुटी चढ़ी है। प्रेम की आसव में छके हैं। होश नहीं-जिधर पैर धरा उधर ही चल निकले। सुर्रक तो उठरी इस्में कुछ पूछना तो नहीं है। आग में जलने लगा। आँखों ने पानी बरसाना आरंभ किया, पर वह आग न बुझी। यदि सहाय की तो केवल मकरंद और वज्रांग ने-देवी ने आसव दे अद्‌भुत रंग छा दिया। क्या जाने क्या बक चले क्या बक गए-वाक्यों का अभी तक अंत न हुआ। पर संत भी तो पूरे बसंत ही थे। डब्बे ही थे। डब्बे के आदमी की भाँति कुटी में रहा करते थे। जहाँ एक बंदर ने छेड़ा तो इनकी नानी ही मर जाती थी। यह देखो आकाश में पैर लगने लगे-एक नया ग्राम ही बस गया-भगवान् विराट ने समस्त पृथ्वी दिखाई-मैं तो अर्जुन था न। मुखारविंद-नहीं-नही मुख गह्वर खोलते ही विचित्र झाँकी रस में छाकी दिखाई देने लगी-गलियों में गैया चलतीं थीं।

मुझै भी नहीं मालूम कि मैं क्या क्या कह गया पर मेरे सब वाक्य चंडी ने ध्यान धर के सुने और हँस के बोली-'श्ठीक है बेटा-ठीक है तेरा कहा सब आगे आता है और धीरे धीरे आगे आवैगा। मैं तेरी भक्ति पर प्रसन्न हुई-बर माँग'-

मैंने फिर वही कहा, 'यदि तू प्रसन्न है तो मेरी वंदना की विनय पूरी कर -श्यामसुंदर का पता बता दे और 'श्यामसुंदर को 'श्यामा से मिला दे।'' चंडी

हँसी और बोली, 'आँख बंद कर मैं तुझै क्षण भरे के लिए 'श्यामसुंदर को दिखा दूँगी, पर चिंता न कर, 'श्यामसुंदर कुशलपूर्वक द्वीपांतर में है। 'श्यामा के पीछे उसने कोटि क्लेश सहे और आश्चर्य नहीं कि कुछ और सहै पर यह तू विश्वास कर कि –

'सुख अंत दु:ख दु:ख अंत सुख दिन एक दिन से कबहुँ न रहैं
गति जगत जनके भाग की रथ चक्र सी एहि हित कहैं।'

एक दिन 'श्यामसुंदर के दिन फिरैंगे, वह 'श्यामा को अवश्य पावैगा, क्योंकि तुलसीदास से सिद्ध पुरुषों के वाक्य क्या निष्फल हो जाएँगे?

'जा पर जाको सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु संदेहू।'

मैंने कहा–'ठीक है पर
श्यामा के कपट छल छिद्रम छछंद मंद
निर्दय निरास कुल कानि की निदानिया।
सुंदर सनेह सब बिधि सो सकोच भरो
साँची सी पिरीति 'श्यामसुंदर लुभानिया।
एक की हँसी फाँसी मौत एक दूसरे ही की
कहत कहत जीभ थकित थकानिया।
अंत एक सबको बिचारि जगमोहन जू
'श्यामा 'श्यामसुंदर की चलैगी कहानिया।'

चंडी बोली, 'देखो 'श्यामसुंदर के कष्ट दूर हुए। एक दिन न एक दिन 'यामा भी मिलेगी इसको गाँठ से बाँधे रहना। पर अब आँख बंद कर 'श्यामसुंदर को देखना चाहता है तो देख ले।'

मैंने अपने नैन ज्यौंही बंद किए वही शिखर वही सभा सब नृत्य हर्ष में लगी है। फिर भी एक बार भगवान् के दर्शन हुए। अहोभाग्य! क्या अपूर्व झाँकी थी। रामचंद्र के सामने, 'श्यामसुंदर दीन मलीन बना खाकी कुरती पहने सिर खोले बकुल माला की सेल्ही डाले बाघबंर ओढ़े हाथ जोड़े बिरही बना भगवान् की स्तुति जन्माष्टमी के उत्सव में कर रहा था। वह दीन की स्तुति यह थी।

दोहा

कृष्ण जनम आठैं करी विनती सुंदर 'याम –
हरहु पीर तन हीर की मन की जानत राम–8–

इसी स्तुति को सुन चाहा कि 'श्यामसुंदर को पकड़ लें, और दो बातैं तो कर लेंय पर ज्यौंही हाथ बढ़ाया आँख खुल गई, सब बिला गया, सबेरा हो गया-देखता हूँ तो कोई कहीं नहीं-बस वहीं घर और वही खाट-वही दीवट।

'वितान तने जहँ फूलन के द्युति चाँदनी शारद जोति अमंद।
मिली सपने में तिया कविदेव मिटे सबही जियके दुःख दंद।
सुगंध सुमंजु सनेह सनी सुतौलौ कोई कूकि उठ्यौ मति मंद।
खुलै अँखियाँ तो न चंदमुखी न चंदोबा न चाँदनी चंद न चंद।'

चकित हो आँखैं मीजता ही रह गया। वाह रे विचित्र स्वप्न! क्या क्या देखा क्या क्या तमाशे दिखे-बस देखते ही बन आता है। 'श्यामा और 'श्यामसुंदर की प्रीति कैसी विचित्र हुई। इसका अंत कैसा हुआ। कहाँ से स्वप्न में 'श्यामा अपना सब हाल कहती थी-अब वह कहाँ बिलाय गई क्या क्या कहा-वाह रे समय! वाह रे काल! तू क्या क्या नहीं दिखाता? कहाँ वह घोर यमपुर के तुल्य भुइंहरे का कारागार-कहाँ वह डाइन, राजदूत, जेलर! कहाँ का वैर और कहाँ का वह न्यायाधीश-सबके सब कहाँ लोप हो गए? पर श्रोता सावधान हो। इसे केवल स्वप्न ही मत समझो, इसको सुन इसके सार को ग्रहण करो। इस सागर को मंथन कर इसका सार अमृत ले लो। स्त्री-चरित्रों से बचो। बस इसी शंकराचार्य के कहे को स्मरण रक्खो -

अंबिकादत्त व्यास

इस लेख में सन्दर्भ या स्रोत नहीं दिया गया है।

कृपया विश्वसनीय सन्दर्भ या स्रोत जोड़कर इस लेख में सुधार करें। स्रोतहीन सामग्री ज्ञानकोश के उपयुक्त नहीं है। इसे हटाया जा सकता है। (अप्रैल 2019)

भारतेन्दु मण्डल के प्रसिद्ध कवि अंबिकादत्त व्यास का जन्म सन् 1858 ई. में तथा मृत्यु सन् 1900 ई. में हुई। इन्होंने कवित्त सवैया की प्रचलित शैली में ब्रजभाषा में रचना की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन हिन्दी सेवियों में पंडित अंबिकादत्त व्यास बहुत प्रसिद्ध लेखक और कवि हैं।

प्रकाशित कृतियाँ

बिहारी बिहार (1898 ई.)

पावस पचास,

ललिता (नाटिका)1884 ई.

गोसंकट (1887 ई.)
आश्चर्य वृतान्त 1893 ई.
गद्य काव्य मीमांसा 1897 ई.,
हो हो होरी

राधाचरण गोस्वामी

राधाचरण गोस्वामी (25 फरवरी 1859-12 दिसम्बर 1925) हिन्दी के भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकार जिन्होने ब्रजभाषा-समर्थक कवि, निबन्धकार, नाटककार, पत्रकार, समाजसुधारक, देशप्रेमी आदि भूमिकाओं में भाषा, समाज और देश को अपना महत्वपूर्ण अवदान दिया। आपने अच्छे प्रहसन लिखे हैं।

जीवन परिचय

गोस्वामी जी के पिता गल्लू जी महाराज अर्थात् गुणमंजरी दास जी (1827 ई.-1890 ई.) एक भक्त कवि थे। उनमें किसी प्रकार की धार्मिक कट्टरता और रूढ़िवादिता नहीं थी, प्रगतिशीलता और सामाजिक क्रान्ति की प्रज्ज्वलित चिनगारियाँ थीं। उनमें राष्ट्रवादी राजनीति की प्रखर चेतना थी।

भारतवर्ष की तत्कालीन राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना की नब्ज पर उनकी उँगली थी और नवजागरण की मुख्यधारा में राधाचरण गोस्वामी जी सक्रिय एवं प्रमुख भूमिका थी। उन्होने 1883 ई. में पश्चिमोत्तर और अवध में आत्मशासन की माँग की थी। मासिक पत्र 'भारतेन्दु' (वैशाख शुक्ल 15 विक्रम संवत् 1940 तदनुसार 22 मई 1883 ई.) में उन्होंने 'पश्चिमोत्तर और अवध में आत्मशासन' शीर्षक से सम्पादकीय अग्रलेख लिखा था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बनारस, इलाहाबाद, पटना, कलकत्ता और वृन्दावन नवजागरण के पाँच प्रमुख केन्द्र थे। वृन्दावन केन्द्र के एकमात्र सार्वकालिक प्रतिनिधि राधाचरण गोस्वामी ही थे।

गोस्वामी जी देशवासियों की सहायता से देशभाषा हिन्दी की उन्नति करना चाहते थे। देशभाषा की उन्नति के लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1882 ई. में देशभाषा की उन्नति के लिए अलीगढ़ में भाषावर्धिनी सभा को अपना सक्रिय समर्थन प्रदान करते हुए कहा था, '...यदि हमारे देशवासियों की सहायता मिले, तो इस सभा से भी हमारी देशभाषा की उन्नति होगी।'

गोस्वामी जी सामाजिक रूढ़ियों के उग्र किन्तु अहिंसक विरोधी थे। वे जो कहते थे, उस पर आचरण भी करते थे। अपने आचरण के द्वारा वे गलत सामाजिक परमपराओं का शान्तिपूर्ण विरोध करते थे।

पण्डित राधाचरण 1885 ई. में वृन्दावन नगरपालिका के सदस्य पहली बार निर्वाचित हुए थे। 10 मार्च, 1897 ई. को वे तीसरी बार नगरपालिका के सदस्य निर्वाचित हुए थे। नगरपालिका के माध्यम से वृन्दावन की कुंजगलियों में छः पक्की सड़कों का निर्माण उन्होंने कराया था।

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय का आगमन दो बार वृन्दावन में हुआ था। दोनों बार गोस्वामी जी ने उनका शानदार स्वागत किया था। ब्रज माधव गौड़ीय सम्प्रदाय के श्रेष्ठ आचार्य होने के बावजूद उनकी बग्घी के घोड़ों के स्थान पर स्वयं उनकी बग्घी खींचकर उन्होंने भारत के राष्ट्रनेताओं के प्रति अपनी उदात्त भावना का सार्वजनिक परिचय दिया था।

तत्कालीन महान क्रान्तिकारियों में उनके प्रति आस्था और विश्वास था और उनसे उनके हार्दिक सम्बन्ध भी थे। उदाहरणार्थ- 22 नवम्बर 1911 ई. को महान क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस और योगेश चक्रवर्ती उनसे मिलने उनके घर पर आए थे और उनका प्रेमपूर्ण स्वागत उन्होंने किया था। उक्त अवसर पर गोस्वामीजी की दोनों आँखें प्रेम के भावावेश के कारण अश्रुपूर्ण हो गई थीं।

गोस्वामी जी कांग्रेस के आजीवन सदस्य और प्रमुख कार्यकर्ता थे। 1888 ई. से 1894 तक वे मथुरा की कांग्रेस समिति के सचिव थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में स्वयं कहा है ''देशोन्नति, नेशनल कांग्रेस, समाज संशोधन, स्त्री स्वतन्त्रता यह सब मेरी प्राणप्रिय वस्तुएँ हैं।''

गोस्वामी जी में प्रखर राजनीतिक चेतना थी। वे तत्कालीन प्रमुख राजनीतिक विषयों पर अपने समय की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अखिल भारतीय स्तर पर लेखादि लिखते रहते थे। उन्होंने 'सारसुधानिधि', विक्रम संवत् 1937, वैशाख 29 चन्द्रवार 10 मई 1880 (भाग 2 अंक 5) में प्राप्त 'स्तंभ' के अन्तर्गत 'काबुल का अचिन्त्य भाव' शीर्षक लेख लिखा था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

उन्होंने विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई और नाना प्रकार की तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर तेज प्रहार किए।

गोस्वामी जी के सतत प्रयत्न से मथुरा वृन्दावन रेल का संचालन हुआ।

गोस्वामी राधाचरण के पिता गल्लूजी महाराज का निधन 1890 ई. में हो गया था। उनके निधन का अनुचित लाभ उठाकर उनके ही सम्प्रदाय में एक अप्रिय विवाद उत्पन्न हो गया कि इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु के जन्मदिन पर व्रत रखा जाए या नहीं और चैतन्य महाप्रभु का पूजन श्रीकृष्ण मन्त्र से किया जाए अथवा श्रीमहाप्रभु के ही मन्त्र से किया जाए। इस विवाद ने प्रायः दो वर्षों तक व्यापक रूप धारण कर लिया था। अन्त में गोस्वामी राधाचरण जी ने विभिन्न प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि महाप्रभु चैतन्य के व्रत और मन्त्र सर्वथा स्वतन्त्र हैं। इस गम्भीर विवाद पर विजय प्राप्त करने पर नवद्वीप और वृन्दावन के साम्प्रदायिक आचार्यों ने उन्हें 'विद्यावागीश' की उपाधि ससम्मान प्रदान की थी।

वृन्दावन के राधारमण मन्दिर में अढ़ाई वर्षों के अन्तराल में 17 दिनों की सेवा करने का अधिकार उन्हें प्राप्त था। अपने निधन के चार दिन पूर्व तक श्रीराधारमण जी की मंगला आरती प्रातः चार बजे वे स्वयं करते थे।

गोस्वामीजी के जीवन दर्शन का मूल संदेश धर्म, जाति, वर्ग और साहित्य की विविधता में एकता का समन्वय था, उन्हें संकीर्ण और कुंठित भावनाएँ स्पर्श नहीं करती थीं।

डाक और रेल के टिकटों में भी नागरी लिपि का प्रवेश होना चाहिए था, इसके लिये उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे थे। कलकत्ता से प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'सारसुधानिधि', 12 सितम्बर 1881 ई. में उन्होंने कहा था।

रेल की टिकटों में नागरी नहीं लिखी जाती है जिससे नागरी का प्रचार नहीं हो पाता। क्या रेलवे अध्यक्षों को नागरी से शत्रुता है या हमारे देशवासी नागरी जानते ही नहीं।

इससे पूर्व उन्होंने 'सारसुधानिधि' 7 अगस्त 1881 ई. को यह सवाल उठाया था कि आर्य राजाओं ने अपनी रियासतों में फारसी सिक्का क्यों जारी रखा है? स्वजातीयाभिमान का प्रश्न था।

गोस्वामी जी सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त के प्रतीक थे। श्रीराधारमण जी के अनन्य उपासक और ब्राह्म माध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य होने के बावजूद उनमें किसी भी धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदाय के प्रति दुराव अथवा दुराग्रह नहीं था। अपने जीवन चरित के नौवें पृष्ठ पर उन्होंने स्वयं लिखा है-

''मैं एक कट्टर वैष्णव हिन्दू हूँ। अन्य धर्म अथवा समाज के लोगों से विरोध करना उचित नहीं समझता। बहुत से आर्यसमाजी, ब्रह्म समाजी, मुसलमान, ईसाई मेरे सच्चे मित्र हैं और बहुधा इनके समाजों में जाता हूँ।''

गोस्वामी जी विधवा विवाह के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने अनेक असहाय बाल विधवाओं के पुनर्विवाह स्वयं पिता बनकर कराया थे। उनके विरोधी एतदर्थ उन पर अवांछित आक्षेप भी करते थे। विधवा विवाह के समर्थन में विविध पत्र-पत्रिकाओं में उन्होंने अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे। विधवा विवाह के पक्ष में उन्होंने 'विधवा विपत्ति' और 'बाल विधवा' शीर्षक दो उपन्यास भी लिखे थे।

साहित्य सेवा

गोस्वामी राधाचरण के साहित्यिक जीवन का उल्लेखनीय आरम्भ 1877 ई. में हुआ। इस वर्ष उनकी पुस्तक 'शिक्षामृत' का प्रकाशन हुआ। यह उनकी प्रथम पुस्तकाकार रचना है। तत्पश्चात् मौलिक और अनूदित सब मिलाकर पचहत्तर पुस्तकों की रचना उन्होंने की। इनके अतिरिक्त उनकी प्रायः तीन सौ से ज्यादा विभिन्न कोटियों की रचनाएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में फैली हुई हैं, जिनका संकलन अब तक नहीं किया जा सका।

उनकी साहित्यिक उपलब्धियों की अनेक दिशाएँ हैं। वे कवि थे किन्तु हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं की श्रीवृद्धि भी उन्होंने की। उन्होंने राधाकृष्ण की लीलाओं, प्रकृति-सौन्दर्य और ब्रज संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर काव्य-रचना की। कविता में उनका उपनाम 'मंजु' था।

गोस्वामी राधाचरण ने समस्या प्रधान मौलिक उपन्यास लिखे। 'बाल विधवा' (1883-84 ई.), 'सर्वनाश' (1883-84 ई.), 'अलकचन्द' (अपूर्ण 1884-85 ई.) 'विधवा विपत्ति' (1888 ई.) 'जाविंत्र' (1888 ई.) आदि। वे हिन्दी में प्रथम समस्यामूलक उपन्यासकार थे, प्रेमचन्द नहीं। 'वीरबाला' उनका ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी रचना 1883-84 ई. में उन्होंने की थी। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास का आरम्भ उन्होंने ही किया। ऐतिहासिक उपन्यास 'दीप निर्वाण' (1878-80 ई.) और सामाजिक उपन्यास 'विरजा' (1878 ई.) उनके द्वारा अनूदित उपन्यास है। लघु उपन्यासों को वे 'नवन्यास' कहते थे। 'कल्पलता' (1884-85 ई.) और 'सौदामिनी' (1890-91 ई.) उनके मौलिक सामाजिक नवन्यास हैं।

प्रेमचन्द के पूर्व ही गोस्वामी जी ने समस्यामूलक उपन्यास लिखकर हिन्दी में नई धारा का प्रवर्तन किया।

गोस्वामी जी के नाटकों और प्रहसनों में उनकी सुधारवादी चेतना ही सर्वप्रमुख है। 'बूढ़े मुँह मुँहासे लोग देखें तमाशे' नामक प्रहसन में हिन्दू और मुसलमान किसान एक साथ जमींदार के प्रति सम्मिलित विद्रोह करते हैं और अपनी समस्याओं का निराकरण करते हैं। किसानों की समस्याओं में धर्म का विभेद नहीं होता।

उनका व्यंग्य लेखन भी उत्कृष्ट कोटि का है। उदाहरणार्थ, मासिक पत्र 'हिन्दी प्रदीप' आषाढ़ शुक्ल 15 विक्रम संवत् 1939 तदनुसार 1 जुलाई 1882 ई. (जिल्द 5 संख्या 11) में पृष्ठ संख्या 9 पर गोस्वामी जी द्वारा विरचित 'एक नए कोष की नकल' का प्रकाशन हुआ था जिसमें व्यंग्य की प्रचुरता है। उक्त 'नकल' के कतिपय अंश अधोलिखित है–

मधुर भाषा। अँग्रेजी।

शरीफों की जबान।

उर्दू या राजा शिव प्रसाद जिसे कहैं।

जंगली लोगों की भाषा।

संस्कृत-हिन्दी परम कर्त्तव्य।

खुशामद खुशामद।

अकर्त्तव्य। देश का हित, भारतवासियों की भलाई।

उक्त व्यंग्य में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की भारतीय मानसिकता का दिग्दर्शन होता है।

गोस्वामी जी एक श्रेष्ठ समालोचक भी थे। उनकी प्रतिज्ञा थी ''किसी पुस्तक की समालोचना लिखो तो सत्य-सत्य लिखो।''

निबन्ध लेखन के क्षेत्र में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। उनके निबन्धों का वर्णय विषय अत्यन्त व्यापक था। उन्होंने ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, शिक्षा और यात्रा सम्बन्धी लेख लिखे। तत्कालीन विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में उनके बहुसंख्यक लेख बिखरे हुए हैं, जिनका संकलन अब तक नहीं किया जा सका।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिन्दी गद्य और पद्य की भाषा में एकरूपता का अभाव था। हिन्दी गद्य खड़ी बोली और पद्य ब्रजभाषा में था। संसार

के किसी भी साहित्य में गद्य और पद्य की भाषा विषयक विसंगति नहीं थी। 1887 ई. में अयोध्या प्रसाद खत्री के सम्पादन में खड़ी बोली का पद्य का प्रकाशन हुआ। खत्री जी ने हिन्दी साहित्य की इस भाषा विषयक विसंगति के विरोध में आन्दोलन किया। इस पर व्यापक विवाद हुआ था। खड़ी बोली पद्य आन्दोलन का आरम्भ हिन्दोस्तान (दैनिक पत्र) 11 नवम्बर 1887 ई. से हुआ जब राधाचरण गोस्वामी ने खड़ी बोली पद्य का सक्रिय विरोध किया। गोस्वामी जी का कथन था कि ''यदि खड़ी बोली में कविता की चेष्टा की जाए तो खड़ी बोली के स्थान पर थोड़े दिनों में उर्दू की कविता का प्रचार हो जाएगा।'' (हिन्दोस्तान,11 अप्रैल 1888 ई.)

गोस्वामी जी द्वारा सम्पादित मासिक पत्र 'भारतेन्दु' का पुनर्प्रकाशन 1 अक्टूबर 1890. ई. से हुआ था। 'भारतेन्दु' 1 अक्टूबर 1890 ई. (पुस्तक 5 अंक 1) में पृष्ठ संख्या 2 पर 'भारतेन्दु का प्रेमालाप' शीर्षक सम्पादकीय में सम्पादक राधाचरण गोस्वामी ने कहा था, ''भाषा कविता पर बड़ी विपत्ति आने वाली है। कुछ महाशय खड़ी हिन्दी का मुहम्मदी झण्डा लेकर खड़े हो गए हैं और कविता देवी का गला घोंटकर अकाल वध करना चाहते हैं जिससे कवि नाम ही उड़ जाए...'' अर्थात् खड़ी बोली कविता का विरोध करने के लिए उन्होंने 'भारतेन्दु' का पुनर्प्रकाशन किया था। किन्तु यह पत्र अपने पुनर्प्रकाशन के बावजूद अल्पजीवी ही सिद्ध हुआ। पण्डित श्रीधर पाठक खड़ी बोली गद्य के समर्थक थे। गोस्वामी जी और पाठक जी में खड़ी बोली पद्य आन्दोलन के दौर में इसी बात पर मनोमालिन्य भी हुआ। 4 जनवरी 1905 ई. को खत्री जी का निधन हो गया था। सरस्वती और अन्य पत्रिकाओं में खड़ी बोली कविताओं का प्रकाशन शुरू हो गया था।

18 मई 1906 को गोस्वामी जी को लिखित अपने एक व्यक्तिगत पत्र में पण्डित श्रीधर पाठक ने कहा था- ''पुराने प्रेमियों को भूल जाना गुनाह में दाखिल है।'' पाठक जी की ओर से पारस्परिक मनोमालिन्य दूर करने की यह सार्थक चेष्टा थी। गोस्वामी जी ने अपने जीवनकाल में ही मैथिलीशरण गुप्त और छायावाद का उत्कर्ष देखा। उनका खड़ी बोली पद्य के प्रति विरोध दूर हो गया था। जनवरी 1910 ई. से 1920 ई. तक वृन्दावन से उन्होंने धार्मिक मासिक पत्र 'श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्रिका' का सम्पादन-प्रकाशन किया था। उक्त मासिक पत्र के प्रथमांक (जनवरी 1910 ई.) में स्वयं 'श्री विष्णुप्रिया का विलाप' शीर्षक कविता खड़ी बोली पद्य में लिखी थी।

गोस्वामी जी साहित्यकार ही नहीं, पत्रकार भी थे। उन्होंने वृन्दावन से भारतेन्दु मासिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन किया था, जिसका प्रथमांक चैत्र शुक्ल 15, विक्रम संवत् 1940 तदनुसार 22 अप्रैल 1883 ई. को प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन 3 वर्ष 5 माह तक हुआ, किन्तु व्यय अधिक होने से इसे बन्द कर देना पड़ा। 1910 ई. से 1920 ई. तक वृन्दावन से ही 'श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्रिका' नामक धार्मिक मासिक पत्रिका का सम्पादन-प्रकाशन उन्होंने किया था। गोस्वामी राधाचरण जी ने 'मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय' (1895 ई.) शीर्षक अपनी संक्षिप्त आत्मकथा में लिखा था-

'लिखने के समय किसी ग्रन्थ की छाया लेकर लिखना मुझे पसन्द नहीं। जो कुछ अपने मन का विचार हो वही लिखता हूँ।

पण्डित बालकृष्ण भट्ट और हिन्दी प्रदीप ने पण्डित राधाचरण गोस्वामी को हिन्दी के साढ़े तीन लेखकों में से एक माना था। हिन्दी प्रदीप जनवरी-फरवरी मार्च 1894 ई. (जिल्द 17 संख्या 5, 6 और 7) ने कहा था कि हिन्दी के साढ़े तीन सुलेखक थे- बाबू हरिश्चन्द्र अर्थात् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ब्राह्मण मासिक पत्र के सम्पादक प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी, आधा पीयूष प्रवाह सम्पादक अम्बिकादत्त व्यास।

इस कथन से गोस्वामी जी की महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। देशोपकार उनके सम्पूर्ण लेखन का मूलमन्त्र था। विचारों की उग्रता और प्रगतिशीलता में वे अपने युग के अन्य सभी लेखकों से बहुत आगे थे। वे एक क्रान्तिदर्शी साहित्यकार थे, प्रखर राष्ट्र-चिन्तक, साहित्य और समय की धारा को नया मोड़ देनेवाले युगद्रष्टा कथाकार भी। स्वाधीन चेतना, आत्मनिर्भरता, साहस, निर्भयता और आत्माभिमान उनके विशेष गुण थे। वे वस्तुतः भारतभक्त और हिन्दी साहित्य के एक गौरव स्तम्भ ही थे।

राय कृष्णदास

(जन्म- 7 नवम्बर 1892, वाराणसी, उत्तर प्रदेश य मृत्यु- 21 जुलाई 1980) हिन्दी गद्यगीत के प्रवर्तक थे। इन्होंने भारत कलाभवन की स्थापना की थी, जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का अंग है। कला के क्षेत्र में अप्रतिम योगदान के कारण राय कृष्णदास को भारत सरकार द्वारा 'पद्म विभूषण' की उपाधि प्रदान की गयी।

जीवनवृत्त

राय कृष्णदास का जन्म 7 नवम्बर 1892 को वाराणसी के प्रतिष्ठित राय परिवार में हुआ था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पारिवारिक सम्बन्ध होने के कारण राय साहब का परिवार साहित्य और कलाप्रेमी था, जिसका राय साहब पर गहन प्रभाव पड़ा। राय साहब के पिता राय प्रह्लाददास हिन्दी प्रेमी थे। जयशंकर प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त से निकट सम्पर्क के कारण राय साहब आठ वर्ष की अवस्था से ही कविता रचने लगे थे। राय साहब बारह वर्ष के ही थे, तभी उनके पिता का असमय निधन हो गया, अतः उनकी स्कूली शिक्षा बाधित हो गयी। उन्होंने स्वाध्याय से ही हिन्दी, अंग्रेजी और बंगला भाषा-साहित्य का गहन अध्ययन किया। राय साहब अद्‌भुत स्मरणशक्ति सम्पन्न थे। अज्ञेय जी ने 'स्मृति लेखा' में उन्हें 'स्मरण का स्मृतिकार' कहा है।

महनीय कार्य

भारतीय कला के क्षेत्र में राय साहब का अप्रतिम योगदान है। कला के प्रति राय साहब इतने समर्पित रहे कि जनवरी 1920 में अपने खर्चे से 'भारतीय कला-परिषद्' की स्थापना की, जो 1930 में नागरी प्रचारिणी सभा का अभिन्न अंग हो गया। 1950 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में 'भारत कलाभवन' की स्थापना में राय साहब का ही योगदान रहा।

साहित्यिक अवदान

राय साहब विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। स्मरण शक्ति तो अद्वितीय थी ही, ज्ञान का अक्षय कोष भी उनके पास था। जयशंकर प्रसाद जी अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में उनसे हमेशा सलाह लेते थे। गुप्त जी की 'भारत-भारती' का जो रूप आज है, उसमें राय साहब की महती भूमिका है। 'निराला' के प्रबंध काव्य 'तुलसीदास' की भूमिका राय साहब ने ही लिखी है। अज्ञेय जी की साहित्यिक प्रतिभा के निर्माण में राय साहब का अनुपम योगदान है। अपने सौम्य व्यवहार, अनुपम कला-प्रेम और अद्वितीय स्मरण-शक्ति के कारण राय साहब हिन्दी समाज में 'नेही', 'सरकारजी', 'कला निधि', 'आर्टफुल मैन' और 'आर्ट हिस्टोरियन' के रूप में समादृत हैं।

सम्मान और पुरस्कार

भरतीय कला और संस्कृति के शिखर पुरुषों अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, नंदलाल बसु और काशी प्रसाद जायसवाल से राय साहब की घनिष्ठता रही। इससे राय साहब की कलात्मक अभिरुचि और प्रतिभा में व्यापक संवर्धन हुआ। कला और साहित्य के क्षेत्र में राय साहब के अप्रतिम योगदान के कारण उन्हें मेरठ और काशी विश्वविद्यालयों द्वारा डी0लिट्0 की उपाधि से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने 1963 में उन्हें 'पद्मभूषण' और 1980 में 'पद्मविभूषण' से सम्मानित किया। 'साहित्य वाचस्पति' से सम्मानित होने के साथ ही राय साहब को 'ललित कला अकादमी' का फेलो भी नामित किया गया।

रचनाएँ

काव्य संग्रह- ब्रजरज (ब्रजभाषा), भावुक (खड़ीबोली)।

कला- भारत की चित्रकला, भारत की मूर्तिकला।

गद्यगीत- साधना, छायापथ।

संवादात्मक निबन्ध- संलाप, प्रवाल।

कहानी संग्रह- अनाख्या, सुधांशु, आँखों की थाह।

अनुवाद- खलील जिब्रान के 'दि मैड मैन' का 'पगला' शीर्षक से हिन्दी अनुवाद।

संस्मरण- जवाहर भाई।

संपादन- कलानिधि (हिन्दी त्रैमासिक)।

देवकीनन्दन खत्री

देवकीनन्दन खत्री (जन्म- 29 जून, 1861 ई.य बिहारय मृत्यु- 1 अगस्त, 1913 ई., बनारस) हिन्दी के प्रथम तिलिस्मी लेखक थे। उन्होंने 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति', 'काजर की कोठरी', 'नरेंद्र-मोहिनी', 'कुसुम कुमारी', 'वीरेंद्र वीर', 'गुप्त गोंडा', 'कटोरा भर' और 'भूतनाथ' जैसी रचनाएँ कीं। 'भूतनाथ' को उनके पुत्र 'दुर्गा प्रसाद खत्री' ने पूरा किया था। हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में उनके उपन्यास 'चंद्रकांता' का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस उपन्यास ने सबका मन मोह लिया था। इस किताब का रसास्वादन करने के लिए कई गैर-हिन्दीभाषियों ने हिन्दी भाषा सीखी। बाबू देवकीनंदन खत्री ने 'तिलिस्म', 'ऐय्यार' और 'ऐय्यारी' जैसे शब्दों को हिन्दी भाषियों के बीच लोकप्रिय बना दिया।

'जितने हिन्दी पाठक उन्होंने (बाबू देवकीनन्दन खत्री ने) उत्पन्न किये उतने किसी और ग्रंथकार ने नहीं।

जीवनी

देवकीनन्दन खत्री जी का जन्म 29 जून, 1861 (आषाढ़ कृष्ण पक्ष सप्तमी संवत् 1918) शनिवार को पूसा, मुजफ्फरपुर, बिहार में हुआ था। उनके पिता का नाम 'लाला ईश्वरदास' था। उनके पूर्वज पंजाब के निवासी थे और मुगलों के राज्य काल में ऊँचे पदों पर कार्य करते थे। महाराज रणजीत सिंह के पुत्र शेरसिंह के शासन काल में लाला ईश्वरदास काशी (आधुनिक बनारस) आकर बस गये। देवकीनन्दन खत्री जी की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू-फारसी में हुई थी। बाद में उन्होंने हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी का भी अध्ययन किया।

व्यवसाय की शुरुआत

मुजफ्फरपुर देवकीनन्दन खत्री के नाना-नानी का निवास स्थान था। आपके पिता 'लाला ईश्वरदास' अपनी युवावस्था में लाहौर से काशी आए थे और यहीं रहने लगे थे। देवकीनन्दन खत्री का विवाह मुजफ्फरपुर में हुआ था, और गया जिले के टिकारी राज्य में अच्छा व्यवसाय था। आरंभिक शिक्षा समाप्त कर वे 'टेकारी इस्टेट' पहुँच गये और वहाँ के राजा के यहाँ कार्य करने लगे। बाद में उन्होंने वाराणसी में एक प्रिंटिंस प्रेस की स्थापना की और 1883 में हिन्दी मासिक पत्र 'सुदर्शन' को प्रारम्भ किया।

चन्द्रकान्ता

लेखन की प्रेरणा

कुछ दिनों बाद उन्होंने महाराज बनारस से चकिया और नौगढ़ के जंगलों का ठेका ले लिया था। इस कारण से देवकीनंदन की युवावस्था अधिकतर उक्त जंगलों में ही बीती थी। देवकीनन्दन खत्री बचपन से ही घूमने के बहुत शौकीन थे। इस ठेकेदारी के कार्य से उन्हें पर्याप्त आय होने के साथ-साथ घूमने फिरने का शौक भी पूरा होता रहा। वह लगातार कई-कई दिनों तक चकिया एवं नौगढ़ के बीहड़ जंगलों, पहाड़ियों और प्राचीन ऐतिहासिक इमारतों के खंडहरों की खाक छानते रहते थे। बाद में जब उनसे जंगलों के ठेके वापिस ले लिए गये, तब इन्हीं जंगलों,

पहाड़ियों और प्राचीन ऐतिहासिक इमारतों के खंडहरों की पृष्ठभूमि में अपनी तिलिस्म तथा ऐय्यारी के कारनामों की कल्पनाओं को मिश्रित कर उन्होंने 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास की रचना की। इन्हीं जगंलों और उनके खंडहरों से देवकीनन्दन खत्री को प्रेरणा मिली थी, जिसने 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति', 'भूतनाथ' ऐसे ऐय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों की रचना कराई, जिसने आपको हिन्दी साहित्य में अमर बना दिया। आपके सभी उपन्यासों का सारा रचना तंत्र बिलकुल मौलिक और स्वतंत्र है। इस तिलस्मी तत्त्व में आपने अपने चातुर्य और बुद्धि-कौशल से ऐय्यारी वाला वह तत्त्व भी मिला दिया था, जो बहुत कुछ भारतीय ही है। यह परम प्रसिद्ध बात है कि 19वीं शताब्दी के अंत में लाखों पाठकों ने बहुत ही चाव और रुचि से आपके उपन्यास पढ़े और हजारों आदमियों ने केवल आपके उपन्यास पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। यही कारण है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक श्री वृंदावनलाल वर्मा ने आपको हिन्दी का 'शिराजी' कहा है।

चन्द्रकांता की रचना

बाबू देवकीनन्दन खत्री ने जब उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया, उस समय में अधिकतर हिन्दू लोग भी उर्दू भाषा ही जानते थे। इस प्रकार की परिस्थितियों में खत्री जी ने मुख्य लक्ष्य बनाया, ऐसी रचना करना, जिससे देवनागरी हिन्दी का प्रचार व प्रसार हो। यह इतना सरल कार्य नहीं था। किंतु उन्होंने ऐसा कर दिखाया। 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास इतना लोकप्रिय हुआ कि उस समय जो लोग हिन्दी लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे या केवल उर्दू भाषा ही जानते थे, उन्होंने केवल इस उपन्यास को पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी इसी लोकप्रियता को ध्यान में रख कर उन्होंने इसी कथा को आगे बढ़ाते हुए दूसरा उपन्यास 'चन्द्रकान्ता सन्तति' लिखा, जो 'चन्द्रकान्ता' की अपेक्षा अधिक रोचक था। इन उपन्यासों को पढ़ते समय पाठक खाना-पीना भी भूल जाते थे। इन उपन्यासों की भाषा इतनी सरल है कि पाँचवीं कक्षा के छात्र भी इन पुस्तकों को पढ़ लेते हैं। पहले दो उपन्यासों के 2000 पृष्ठ से अधिक होने पर भी, एक भी क्षण ऐसा नहीं आता, जहाँ पाठक ऊब जाएँ।

प्रमुख रचनाएँ

चन्द्रकान्ता (1888-1892)—चन्द्रकान्ता उपन्यास को पढ़ने के लिये लाखों लोगों ने हिन्दी सीखी। यह उपन्यास चार भागों में विभक्त है। पहला प्रसिद्ध

उपन्यास चंद्रकांता सन् 1888 ई. में काशी में प्रकाशित हुआ था। उसके चारो भागों के कुछ ही दिनों में कई संस्करण हो गए थे।

चन्द्रकान्ता सन्तति (1894-1904): चन्द्रकान्ता की अभूतपूर्व सफलता से प्रेरित हो कर देवकीनन्दन खत्री ने चौबीस भागों वाले विशाल उपन्यास चंद्रकान्ता सन्तति की रचना की। उनका यह उपन्यास भी अत्यधिक लोकप्रिय हुआ।

भूतनाथ (1907-1913) (अपूर्ण): चन्द्रकान्ता सन्तति के एक पात्र को नायक बना कर देवकीनन्दन खत्री जी ने इस उपन्यास की रचना की, किन्तु असामायिक मृत्यु के कारण वह इस उपन्यास के केवल छह भागों ही लिख पाये। आगे के शेष पन्द्रह भाग उनके पुत्र 'दुर्गाप्रसाद खत्री' ने लिख कर पूरे किये। 'भूतनाथ' भी कथावस्तु की अन्तिम कड़ी नहीं है। इसके बाद बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री लिखित 'रोहतास मठ' (दो खंडों में) आता है।

अन्य रचनाएँ

कुसुम कुमारी
वीरेन्द्र वीर उर्फ कटोरा भर खून
काजर की कोठरी
अनूठी बेगम
नरेन्द्र मोहिनी
गुप्त गोदना
लहरी प्रेस
भूतनाथ

चंद्रकांता से उत्साहित होकर आपने चंद्रकांता संतति, लिखना आरंभ कर दिया, जिसके कुल 24 भाग हैं। दस वर्षो में ही बहुत अधिक कीर्ति और यश संपादित कर चुकने पर और अपनी रचनाओं का इतना अधिक प्रचार देखने पर सन् 1898 ई में आपने अपने निजी प्रेस की स्थापना की। आप सदा से स्वभावत: बहुत ही 'लहरी' अर्थात् मनमौजी और विनोदप्रिय थे। इसीलिए देवकीनन्दन खत्री ने अपने प्रेस का नाम भी 'लहरी प्रेस' रखा था। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में कई ऐय्यारों और पात्रों के जो नाम आए हैं वे सब आपने अपनी मित्रमंडली में से ही चुने थे और इस प्रकार उन्होंने अपने अनेक घनिष्ट मित्रों और संगी साथियों को अपनी रचनाओं के द्वारा अमर बना दिया था।

हिन्दी साहित्य में स्थान

देवकीनन्दन खत्री की सभी कृतियों में मनोरंजन की जो इतनी अधिक कौतूहलवर्धक और रोचक सामग्री मिलती है, उसका सारा श्रेय देवकीनन्दन खत्री के अनोखे और अप्रतिम बुद्धिबल का ही है। हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र का आपने आरंभ ही नहीं किया था, उसमें उन्होंने बहुत ही उच्च, उज्ज्वल और बेजोड़ स्थान भी प्राप्त कर लिया था। भारतेंदु के उपरांत आप प्रथम और सर्वाधिक प्रकाशमान तारे के रूप में हिन्दी साहित्य में आए थे।

निधन

खेद है कि देवकीनन्दन खत्री ने अधिक आयु नहीं पाई और प्रायः 52 वर्ष की अवस्था में ही काशी में 1 अगस्त, 1913 को आप परलोकवासी हो गए।

चन्द्रकान्ता (उपन्यास)

चन्द्रकान्ता देवकीनन्दन खत्री द्वारा रचित एक तिलिस्मी हिन्दी उपन्यास है। चन्द्रकान्ता को एक प्रेम कथा कहा जा सकता है। यह शुद्ध लौकिक प्रेम कहानी है, जिसमें तिलिस्मी और ऐय्यारी के अनेक चमत्कार पाठक को चमत्कृत करते हैं। नौगढ़ के राजा सुरेन्द्रसिंह के पुत्र वीरेन्द्रसिंह तथा विजयगढ़ के राजा जय सिंह की पुत्री चन्द्रकान्ता के प्रणय और परिणय की कथा उपन्यास की मुख्य कथा है। इस प्रेम कथा के साथ-साथ तेजसिंह ऐय्यार तथा ऐय्यारा चपला की प्रेम कहानी भी अनेक तत्र झाँकती है।

लौकिक प्रेमकथा

'चन्द्रकान्ता' (सन 1818) को मूलतः और प्रमुखतः एक प्रेम-कथा कहा जा सकता है। चार हिस्सों में विभाजित इस उपन्यास की कथा अनायास ही हमें मध्यकालीन प्रेमाख्यानक काव्यों का स्मरण कराती है। इस प्रेम-कथा में अलौकिक और अतिप्राकृतिक तत्त्वों का प्रायः अभाव है और न ही इसे आध्यात्मिक रंग में रंगने का ही प्रयास किया गया है। यह शुद्ध लौकिक प्रेम-कहानी है, जिसमें तिलिस्मी और एयारी के अनेक चमत्कार पाठक को चमत्कृत करते हैं। नौगढ़ के राजा सुरेन्द्रसिंह के पुत्र वीरेन्द्र सिंह तथा विजयगढ़ के राजा जयसिंह की पुत्री चन्द्रकान्ता के प्रणय और परिणय की कथा उपन्यास की प्रमुख कथा है।

कथानक

नाजिम और अहमद जैसे ऐय्यार उसके सहायक हैं, परन्तु अपने कुकृत्यों के अनुरूप ही उसका अन्त हो जाता है। चुनार का राजा शिवदत्तसिंह भी असत्य अथवा खल पात्रों की श्रेणी में आता है। वह भी 'क्रूरसिंह' से प्रेरित होकर चन्द्रकान्ता की प्राप्ति का विफल प्रयत्न करता है। वह विजयगढ़ पर आक्रमण करता है, परन्तु नौगढ़ एवं विजयगढ़ के शासकों और वीरेन्द्रसिंह की वीरता तथा जीतसिंह, तेजसिंह, देवीसिंह आदि ऐय्यारों के प्रयत्न से परास्त होता है। इन ऐय्यारों की सहायता से वीरेन्द्रसिंह अनेक कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करता हुआ तिलिस्म को तोड़ता है। और चन्द्रकान्ता को मुक्त कराता है। इस तिलिस्म से उसे अपार सम्पदा प्राप्त होती है और वह चन्द्रकान्ता का पाणिग्रहण करता है। चपला तेजसिंह की परिणीता बनती है और चम्पा का देवीसिंह से विवाह होता है।

तिलिस्म शब्द

देवकीनन्दन खत्री ने समसामयिक नीति-प्रधान उपन्यासों से भिन्न कौतूहल प्रधान 'तिलिस्मी ऐय्यारी' उपन्यास रचना की नयी दिशा को उद्घटित करने का सफल प्रयास किया। 'तिलिस्म' अरबी का शब्द है, जिसका अर्थ है- 'ऐन्द्रजालिक रचना, गाड़े हुए धन आदि पर बनायी हुई सर्प आदि की भयावनी आकृति व दवाओं तथा लग्नों के मेल से बँधा हुआ यन्त्र'।' 'चन्द्रकान्ता' के चौथे भाग के बीसवें बयान में ऐय्यार जीतसिंह जरूरत पड़ती थी तो वे बड़े-बड़े ज्योतिषी, नजूमी, वैद्य, कारीगर 'तिलिस्म के सम्बन्ध में कहता है-

'तिलिस्मी वही शखस तैयार करता है, जिसके पास बहुत माल-खजाना हो और वारिस न हो।...पुराने जमाने के राजाओं को जब तिलिस्मी बाँधने की और तांत्रिक लोग इकट्ठे किये जाते थे। उन्हीं लोगों के कहे मुताबिक तिलिस्मी बाँधने के लिए जमीन खोदी जाती थी, उसी जमीन के अन्दर खजाना रखकर ऊपर तिलिस्मी इमारत बनायी जाती थी। उसमें ज्योतिषी, नजूमी, वैद्य, कारीगर और तांत्रिक लोग अपनी ताकत के मुताबिक उसके छिपाने की बंदिश करते थे, मगर इसके साथ ही उस आदमी के नक्षत्र एवं ग्रहों का भी खयाल रखते थे, जिसके लिए वह खजाना रक्खा जाता था।'

ऐय्यार शब्द

'ऐय्यार' शब्द भी अरबी का है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- धूर्त अथवा वेश या रूप बदलकर अनोखे काम करने वाला व्यक्ति। 'ऐयार' उसको कहते हैं, जो हर एक फन जानता हो, शक्ल बदलना और दौड़ना उसके मुख्य काम हैं। एयारों के सम्बन्ध में खत्री जी ने 'चन्द्रकान्ता' की भूमिका में लिखा है- राजदरबारों में ऐयार भी नौकर होते थे, जो कि हरफनमौला, यानि सूरत बदलना, बहुत-सी दवाओं का जानना, गाना-बजाना, दौड़ना, अस्त्र चलाना, जासूसों का काम करना, वगैरह बहुत-सी बातें जाना करते थे। जब राजाओं में लड़ाई होती थी तो ये लोग अपनी चालाकी से बिना खून बहाये व पलटनों की जाने गंवाये लड़ाई खत्म करा देते थे।'चन्द्रकान्ता' में लेखक चुनार के बाहर के खण्डहर के तिलिस्म का वर्णन करता है, जहाँ काले पत्थर के खम्भे पर संगमरमर का बगुला है, जो किसी के पास आते ही मुँह खोल लेता है और उसे उदरस्थ कर लेता है।

तिलिस्म

चन्द्रकान्ता को यही बगुला निगल लेता है तथा वह में कैद हो जाती है। उसकी सखी चपला का भी यही हाल होता है। इस तिलिस्म के विषय में एक सुर्ख पत्थर पर लिखा है-'यह तिलिस्म है, इसमें फंसने वाला कभी बाहर नहीं निकल सकता। हाँ, अगर कोई इसको तोड़े तो सब कैदियों को छुड़ा ले और दौलत भी उसके हाथ लगे। तिलिस्म तोड़ने वाले के बदन में खूब ताकत भी होनी चाहिए, नहीं तो मेहनत व्यर्थ है।' इस तिलिस्म को तोड़ने की विधि भी एक पुस्तक में लिखी मिलती है, जिसका अर्थ तेजसिंह और ज्योतिषीजी रमल की सहायता से ज्ञात करते हैं। इस पुस्तक की प्राप्ति से वीरेन्द्रसिंह अपने एयार साथियों की मदद से अनेक कठिनाइयों, बाधाओं एवं संघर्षों का सामना करता हुआ तिलिस्म को तोड़ने में सफल होता है और चन्द्रकान्ता को मुक्त कराता है। उपन्यास के तीसरे और चौथे हिस्से में मुख्य रूप से इसी तिलिस्मी को तोड़ने की कथा रोचक, कौतूहल पूर्ण और अद्‌भुत वर्णन है। वनकन्या, सूरजमुखी आदि पात्रों का सृजन और उनके कार्य उपन्यास में रोचकता और कौतूहल की वृद्धि करते हैं।

विभिन्न ऐय्यार

ऐय्यारी प्रधान होने के कारण 'चन्द्रकान्ता' में ऐय्यारों की चालों, फनों और घात-प्रतिघातों का बड़ा ही सजीव, रोचक और चमत्कारिक वर्णन मिलता है। उपन्यास में कई ऐय्यार हैं। वीरेन्द्रसिंह के पक्ष के ऐय्यार हैं- जीतसिंह, तेजसिंह, और देवीसिंह। क्रूरसिंह के ऐयार हैं- अहमद और नाजिम। शिवदत्त के छः एयार हैं- पण्डित बद्रीनाथ, चुन्नीलाल, रामनारायण, भगवानदत्त, पन्नालाल और घसीटासिंह। उनके पास रमल का ज्ञाता ज्योतिषी जगन्नाथ भी है। चपला और ऐयारिनें हैं, जो चन्द्रकान्ता के साथ रहती हैं। उपन्यास में इन ऐयारों के कार्य पाठकों को चमत्कृत और विस्मित करते हैं। कहीं ये सुंघनी सुंघाकर किसी को बेहोश कर देते हैं और कहीं लखलखा सुंघाकर होश में ले आते हैं। ऐय्यारी बटुआ इनके पास हमेशा रहता है और इसमें वे सभी आवश्यक सामग्री रखते हैं। जासूसी करने, लड़ने-भिड़ने, गाने-बजाने, नाचने आदि में ये कुशल होते हैं। एयारों के कार्य उपन्यास की कथा को मोड़ देते हैं। कहीं देवीसिंह साधू का वेष बनाकर तेजसिंह को सावधान करता है तो कहीं चपला और चम्पा की नकली लाशें हैं। कहीं वनकन्या और सूरजमुखी के करतब हैं, कहीं नकली चन्द्रकान्ता शिवदत्तसिंह से प्रेम प्रदर्शन करती है तो कहीं जालिमखाँ और आफतखाँ अपने-अपने ढंग से आफत और जुल्म ढाते हैं, जीतसिंह रहस्यमय रूप से साधु बाबा बन जाता है। सारे उपन्यास में इन एयारों के चमत्कारपूर्ण कार्य पाठक को मुग्ध और स्तम्भित करते हैं। इन ऐयारों की अपनी आचार-संहिता भी है, जिसका पालन करना वे अपना कर्त्तव्य मानते हैं। उपन्यास में वर्णित एयारों के घात-प्रतिघात विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' में वर्णित चाणक्य और राक्षस के राजनीतिक दांव-पेचों का स्मरण करा देते हैं।

❐❐❐